इकाई–1

चिकित्सकीय समाज कार्यः एक परिचय

Medical Social Work : an Introduction

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 उद्देश्य

1.3 चिकित्सकीय समाज कार्य का क्षेत्र

1.4 विदेशों में चिकित्सकीय समाज कार्य का क्षेत्र

1.5 भारत में चिकित्सकीय समाज कार्य का क्षेत्र

1.6 सार संक्षेप

1.7 प्रश्नोत्तर

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 परिचय

हमारे समाज में प्राचीन काल से ही पीड़ितों व रोगियों की सहायता व सेवा का प्रचलन रहा है और हर व्यक्ति एक–दूसरे की सेवा करना अपना उत्तरदायायित्व समझता रहा है। परम्परागत समाज सेवी मानवता के आधार पर आश्रम विद्यालय, चिकित्सालय आदि के माध्यम से जनसाधारण की सेवा करते है।

समाज कार्य के वृत्तिक विकास के क्रम में सर्वप्रथम चिकित्सकीय समाज कार्य का अवलोकन किया जा सकता है। स्वास्थ के विकास, रोग निवारण व उपचार के क्षेत्र में समाज कार्य की प्रणालियों व तकनिकों के उपयोग को ही चिकित्सकीय समाज कार्य की संज्ञा दी जाती है। मानव समाज में निरन्तर हो रहे परिवर्तन, औद्योगीकरण, नगरीकरण के फलस्वरूप संयुक्त परिवार के स्वरूप में परिवर्तन तथा दिन–प्रतिदिन कि सामाजिक–आर्थिक जटिलताओं के कारण व्यक्ति की अपनी–व्यक्तिगत व पारिवारिक व्यवस्तता के कारण रोगियों व रोज के फलस्वरूप उत्पन्न मनोसामाजिक समस्याओं के निवारण व निराकरण में चिकित्सकीय समाज कार्य की उपयोगिता एवं मान्यता में वृद्धि हुई

है। अतः सर्वप्रथम चिकित्सकीय समाज कार्य की परिभाषा व अर्थ को समझ लेना उचित प्रतित होता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः–

- चिकित्सकीय समाज कार्य की अवधारण एवं परिभाषा जान सकेंगे।
- चिकित्सकीय समाज कार्य के विषय मे विभिन्न विज्ञानों द्वारा दिये मत को समझ सकेंगे।
- चिकित्सकीय समाज कार्य के क्षेत्र के विस्तार को समझ सकेंगे।
- चिकित्सकीय समाज कार्य के कार्य को समझ सकेंगे।
- भारत एवं विदेषों में चिकित्सकीय समाज कार्य के इतिहास को जान सकेंगे।

1.3 चिकित्सकीय समाज का कार्य क्षेत्र

चिकित्सकीय समाज कार्य ऐसे रोगियों को सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है जो मनोसामायिक अवरोधों के कारण चिकित्सकीय सेवाओं का प्रभावी रूप से उपयोग करने में असमर्थ होते है। उपयुक्त चिकित्सकीय सेवाओं के उपरान्त भी कुछ रोगियों में समुचित प्रगति नहीं होती क्यों की कभी–कभी रोगग्रस्त व्यक्ति को चिकित्सालय द्वारा प्राप्त आकर्षण, प्यार एवं सुरक्षा से उसकी मानसिक आवश्यकता की संतुष्टि होती है, फलस्वरूप कुछ रोगी उपचार के बाद भी चिकित्सालय से जाना नहीं चाहते जबकि कुछ अन्य रोगियों की आर्थिक व घरेलू चिन्ता उपचार को विपरीत रूप से प्रभावित करती है। कभी–कभी अज्ञानता व अनभिज्ञता के कारण रोगी शल्य चिकित्सा या लागातार उपचार कराने से भयभीत होते है। रोगियों को सहायता प्रदान करने में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उनके साथ अपने वृत्तिक संबंधो, मानवीय व्यवहार संबंधी अपने ज्ञान, रुग्णता की स्थिति में लोगों के व्यवहार के ज्ञान तथा व्यक्ति, उनके परिवार एवं समुदाय में उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग करता है।

चिकित्सकीय समाज कार्य की परिभाषा : चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की एक विशिष्टता है जिसके अन्तर्गत रोग ग्रस्तता के कारण उत्पन्न मानसिक, सामाजिक, शारीरिक एवं आर्थिक अवरोधों व समस्याओं के निवारण व निराकरण में वृत्तिक विधियों का प्रयोग करके सहायता की जाती है। विभिन्न विद्वानों ने चिकित्सकीय समाज कार्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री के अनुसारः''चिकित्सकीय समाज कार्य का मुख्य ध्येय यह होता है कि वह चिकित्सकीय सहुलियतों का उपयोग रोगियों के लिए अधिकाधिक फलप्रद एवं सरल बनाये तथा चिकित्सा में बाधक मनोसामाजिक दशाओं का निराकरण करें।''[1]

''चिकित्सकीय समाज कार्य स्वास्थ एवं चिकित्सकीय देखरेख के क्षेत्र में समाजकार्य की पद्धतियों एवं दर्शन का उपयोग एवं स्वीकरण है। चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य के ज्ञान तथा पद्धतियों के उन पक्षों का वर्णित व विस्तृत उपयोग करता हे जो स्वास्थ व चिकित्सा संबंधी समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों के सहायतार्थ विशिष्ट रूप से उपयुक्त होते है।''[2]

प्रोफेसर एच0एस0 पाठक के अनुसार :चिकित्सकीय समाज कार्य उन रोगियों के सहायता प्रदान करने से संबंधित है जो सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण उपलब्ध चिकित्सकीय सेवाओं का प्रभावी रूप से उपयोग करने में असमर्थ होते है।''[3]

उपयुक्त परिभाषाओं के विश्लेषण एवं समाकलन के आधार पर चिकित्सकीय समाज कार्य को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है।

''चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य तकनीकों का ऐसा व्यवसायिक उपचारात्मक अभ्यास है जिसके द्वारा रोगियों को उपलब्ध निवारक, निदानात्मक एवं उपचारात्मक सुविधाओं के अधिकतम उपयोग द्वारा उपयुक्त रूप से समायोजित सामाजिक प्राणी बनाने के लिए उसे मनो–सामाजिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने हेतु, सहायता प्रदान की जाती है।''

चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की एक नव विकसित शाखा है, जो उन सामाजिक, शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर केन्द्रित है जो बीमार की बीमारी से संबंधित है। अतः एक चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का कार्य अस्पताल में, बीमारी के उपचार संबंधी व्यवस्था की देख भाल तथा बीमार को विविध प्रकार की सहायता प्राप्त कराना है और उनकी पूर्ति के लिए जो भी साधन है, उन्हें रोगी के लिए उपलब्ध कराता है परन्तु इस व्यवस्था के फलस्वरूप भी उसका कार्य, रोग के एक विशेष पहलू तक सीमित है। वह पहलू सिर्फ और सिर्फ सामाजिक है। वह उन सामाजिक कारणों को हल करने का प्रयास करता है। जो भी रोगी के लिए उत्तरदायी है।

चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की एक शाखा के नाते व्यक्ति की महत्ता के विश्वास पर आधारित है। अतः समाज कार्य की आधारभूत मान्यताओं से प्रेरित होकर, चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उन व्यक्तियो की सहायता करता है। जो बीमारी से मुक्त होने की प्रक्रिया में सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक कारको के अवरोधों का अनुभव करते है। इन कारको का वस्तुतः बीमार की बीमारी के साथ घनिष्ठ संबंध है। गरीबी रहन–सहन की स्थिति, सामाजिक संबंध तथा सामाजिक पर्यावरण भी अनेक प्रकार की बीमारियों के लिए उत्तरायी है। अतः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगियो के सहायता के लिए कार्यक्रम का निर्धारण करते समय, इन सभी सामाजिक, आर्थिक तथा

मनोवैज्ञानिक कारकों पर भली प्रकार विचार करता है वास्तव में मनुष्य, मन तथा शरीर की एकता है और औषधि को इस एकता का विचार करना चाहिए। शरीर शास्त्र, रसायनशास्त्र तथा जीवशास्त्र अकेले बीमारी की जटिलताओं को स्पष्ट नहीं कर सकते। मन तथा शरीर की बाधाओं को एक–दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता।

समाज कार्य की विशिष्ट शाखाओं के समान ही इस शाखा का भी भिन्न–भिन्न अनुस्थापन है यह विषय के व्यवहारिक पक्ष पर अधिक बल देता है और अपने विषय सामाग्री के कारण से ही अन्य शाखाओं से भिन्नता रखता है इसकी सीमाएं असाधारण है। परिणाम स्वरूप चिकित्सा समाज विज्ञान के विकास में अद्वितीय एवं विशिष्ट सिद्धान्तों के विकास न करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। अगर चिकित्सा समाज विज्ञान अपने सैद्वान्तिक आधारों पर विकसित होता है। तो इसके द्वारा सामान्य समाज विज्ञान भी अवश्य प्रभावित होगी। चिकित्सा समाज वैज्ञानिकों की भूमिका सामाजिक संगठन, विचलनकारी व्यवहार, सामाजिक नियंत्रण, समायिकरण एवं अन्य समान्य समाज वैज्ञानिक अभिरूचियों में प्रतिपादित हो सकती है।

विद्वानों के मतानुसार : ''चिकित्सा क्षेत्र में उन्हीं का योगदान हो सकता है जो उनके अवधारणात्मक उन्मेशों से सामाजिक परिवर्तन लाने की बात करते है।''

''चिकित्सा जगत में समाज वैज्ञानिको का वैज्ञानिक अनुसंधान तभी महत्वपूर्ण हो सकता है जब समाज वैज्ञानिक अनसंधान में भी उनकी दक्षता हो।'' दूसरे विषयों के अनुसंधान कर्ताओं का स्वास्थ्य के क्षेत्र में तभी महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। जब उनका चिकित्सा जगत के साथ सम्पर्क हो तथा चिकित्सा जगत में कार्यरत लोग उन्हें स्वीकार करें।

"National Association of Social Worker :– ने 1958 में समाज कार्य शिक्षा हेतु स्वास्थ क्षेत्र की उन संस्थाओं को ऐतिहासिक क्रम में सूची बद्ध किया। जिनमें चिकित्सकीय समाज कार्य संस्था प्रदत्त सेवाओं को अधिक उपयोगी बनाने के लिए एक आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार किया जो अधोलिखित है :–

(i) **निजी एवं सार्वजनिक चिकित्सालय :–** सामान्य चिकित्सालय, बाल चिकित्सालय विशिष्ट चिकित्सालय, चिर संरक्षण, सेनिटोरियम, कैंसर अनुसंधान, प्रसूतिगृह, गृह सेवा आदि।

(ii) **निदानशाला :–**बहिरंग विभाग, विशिष्ट नैदानिकशाला, सामुदायिक निदानशाला सामुदायिक स्वास्थ, प्रसव निदानशाला, स्वास्थ बाल निदान शाला, विकलांग बाल निदान शाला, थोलिप कार्यालय आदि।

(iii) **पुनर्स्थापना इकाइयाँ :–**चिकित्सालय एवं बहिरंग विभाग निदान शालाएं केन्द्र व व्यवसायिक पुर्नस्थापना आदि।

(iv) **सार्वजनिक स्वास्थ एवं निवारण चिकित्साः**—राजकीय स्वास्थ्य कार्यक्रम, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ, बाल ब्यूरों स्वास्थ्य सेवा खण्ड, विकलांग बालक, मातृ एवं शिशु स्वास्थ विभाग तथा अन्य स्वैच्छिक स्वास्थ संगठन व संस्थाएं।

(v) **सामुदायिक संगठन :—** सामुदायिक विकास व कल्याण संबंधी स्वास्थ कार्यक्रम समुदाय के सदस्य के रूप में व्यक्तियों के कल्याण एवं स्वास्थ्य वर्धन हेतु सेवाएँ।

(vi) **सार्वजनिक कल्याण :—**राज्यस्तरी एवं स्थानिय स्वास्थ संबंधी इकाइयों व्यक्तिगत परामर्श एवं स्वास्थ समस्या के संबंध में प्रत्यक्ष सेवा।

वृत्तिक विद्यालय :— समाज कार्य विद्यालय चिकित्सकीय सार्वजनिक स्वास्थ विद्यालय, परिचारिका विद्यालय, अन्तिम तीन विद्यालयों में चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता निदानात्मक शिक्षण में पूर्ण या अंश कालिक प्राध्यापक के रूप में सम्मिलित होते है।

(vii) **चिकित्सा अभ्यास का संगठन :—** चिकित्सा संगठन के इस क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न चिकित्सा व्यवस्थाओं से भिन्न मेडिकल प्रेक्टिस के संगठन का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन के अन्तर्गत विभिन्न स्वास्थ संगठनों के संदर्भ में चिकित्सकीय देख रेख एवं सुरक्षा के संबंधों का तुलनात्मक विवेचन किया जाता है। इसके अन्तर्गत "Health Insurance Plan clinic" का उदाहरण महत्वपूर्ण है।

(viii) **स्वास्थ नीति एवं राजनीतिः—** स्वास्थ सुरक्षा प्रारूप का विकास सरकारी इकाईयों ऐच्छिक संगठन एवं व्यक्तिगत लोगों के सम्मिलित प्रयास एवं सहयोग पर आधारित होता है। चिकित्सा एवं सार्वजनिक, नीतियों का निर्धारण एवं व्यवहारिकता समुदाय एवं चिकित्सा रणनीति के संदर्भ में निर्धारित किया जाता है। स्वास्थ व्यवस्था एवं स्वास्थ नीतियों के विकास को समझने के लिए उससे सम्बन्धित समाज में प्रचलित प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है।

चिकित्सा के क्षेत्र में समाज कार्य मुख्यतः वैयक्तिक कार्य विधि से होता है। इस विधि के माध्यम से सामाजिक कार्यकर्ता मुख्यतः तीन स्तरों पर कार्य करता है।

- प्रथम स्थिति में वह रोगी के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित शारीरिक, मानसिक सांवेगिक, सामाजिक एवं आर्थिक जानकारियों को उपलब्ध करता है। इसके पश्चात् वह रोगी का व्यक्तिगत इतिवृत्त पत्र तैयार करता है।.....
- दूसरे स्तर के कार्य के लिए उसे परिवार एवं समुदाय का मनो सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करता है।.....
- तीसरे प्रकार के कार्य के लिए वह अस्पताल के लिखित—अलिखित नियमों, सुविधाओं तथा व्यवस्थाओं का अध्ययन करता है। इन कार्यो के लिए उसे

अस्पताल के कर्मचारियों, चिकित्सकों तथा व्यवस्थापको से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। इसके

बाद ही वह रोगी का उपचार तथा मदद करता है।

1.4 चिकित्सकीय समाजिक कार्यकर्ता के कार्य

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का प्राथमिक कार्य रोग ग्रस्तता के कारण उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु वैयक्तिक सेवा कार्य के अभ्यास द्वारा रोगी को सहायता प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्य निम्नलिखित हैः–

(1) अभिकरण की नीति निर्धारण एवं कार्यक्रम नियोजन में सहभागिता प्रदान करना।
(2) सामुदायिक संगठन से सहभागिता करना।
(3) शैक्षणिक कार्यक्रम में सहभागी होना।
(4) समाजकार्य अनुसंधान में सहयोग देना।
(5) परामर्श एवं निर्देशन सेवा प्रदान करना।

1.5 विदेशों में चिकित्सकीय समाज कार्य का इतिहास

चिकित्सकीय समाज कार्य की शुरूआत मानव समाज की रचना से ही प्रारम्भ में हम देखते है। कि रोगी के बीमार होने पर उसे समझाने या धैर्य का कार्य, परिवार, धार्मिक संस्थान साधु सन्तों या झाड़ फूक करने वाले की ओर से लिया जाता रहा है। धार्मिक संस्था की ओर से निशुल्क पौष्टिक आहार एवं दुग्ध आदि की सहायता की जाती थी लेकिन यह सहायता वैज्ञानिक नहीं कहीं जा सकती। इसे समाज शास्त्र के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति धार्मिक संरचनाओं से प्रभावित रहा है।

चिकित्सकीय समाज कार्य की शुरूआत व्यवस्थित रूप से मैसाचुसेट जनरल अस्पताल (अमेरिका) में हुई। इनमें डा0 रिचर्ड, सी केवट ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह स्वीकार किया कि रोगो का सामाजिक ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि उसकी सामाजिक स्थिति का प्रभाव रोगी पर पड़ता है। दूसरा उसके कार्य में यह भी सुविधा होती है। उसके उपचार में खाद्य पदार्थो की संतुष्टि में इन्हीं वस्तुओं को प्रस्तुत किया जाता है कि जिसके वहन करने की क्षमता रोगी के आर्थिक स्थिति में आती है। इसके बाद इसकी चिकित्सकीय समाज कार्य की शुरूआत क्रमागत बढ़ती गयी।

1920 में इसका उपयोग या समाज कार्यकर्ता की चिकित्सा में भर्ती सामान्य से विशिष्ट चिकित्सा में बढ़ती है। इस समय तक रोगों से ग्रस्त रोगियों की उपचार हेतु उनसे संबंधित चिकित्सा में अपंग या विकलांग व्यक्तियों की उपचार हेतु समाज कार्यकर्ता कि नियुक्ति की गई। 1920 में इसका विकास स्थानीय राष्ट्र या संघ एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर सामाजिक सेवा में दी जाने वाली कई सेवाओं में इसका अधिक विकास हुआ और विशेषकर

पुर्नस्थापन से या उपचार में इसका अधिक विकास हुआ। 1980 में समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति की गयी। उसी समय जन स्वास्थ की व्यवस्था की प्रशासकीय सभा एवं समाज कार्य की संख्या द्वारा किया गया। जन स्वास्थ कार्यक्रमों एवं चिकत्सकीय समाज कार्य की शैक्षणिक योग्यता के बारे में सुनिश्चित की गई जिसके आधार पर वहां सामाजिक विद्यालय इस विशेषीकरण की शुरूआत हुई।

ऐच्छिक स्वास्थ संगठनों में भी चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति स्थानीय राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर होने लगी ये समाज कार्य परामर्श, पुनर्स्थापन, शोध सामुदायिक कार्यकर्ता वैयक्तिक सेवा के रूप में कार्य शुरू कर दिये थे। अब तो इसकी भूमिका अत्यन्त आवश्यक हो गई है। वहां पर चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता चिकित्सा की एक इकाई के रूप में गिने जाते है। आज उन देशों में निदान एवं स्वास्थ सेवा के प्रचार एवं प्रसार में लगभग वही है। यही कारण है की चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता भी शैक्षिक योग्यता एवं कुशलता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसके साथ ही इसे प्रशिक्षण की सुविधा भी प्रदान की जाती है। चिकित्सालयों एवं समस्त स्वास्थ क्षेत्रों में कार्यकर्ता प्रशिक्षित है। यहां भारत में ऐसी स्थिति नहीं है की कोई व्यक्ति बगैर समाज कार्य में प्रशिक्षण लिए चिकित्सकीय समाज कार्य में कार्यरत है।

वहां अध्यापको को चिकित्सकीय समाज कार्य का अध्ययन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त व्यवहारिक कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है। परिणाम स्वरूप ये समस्त गुणों से युक्त एक चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता बन जाते हैं। वहां पर चिकित्सकीय समाज कार्य में डाक्टरेट की सुविधा कई विद्यालयों में सुलभ है। 1956 में कई विश्वविद्यालयों ने एक चिकित्सकीय समाज कार्य को एक विशेषीकरण के रूप में अपनाया है।

1.6 भारत में चिकित्सकीय समाज कार्य का इतिहास

भारत में चिकित्सकीय समाज कार्य का इतिहास वैज्ञानिक पद्वति पर आधारित है तथा कुछ वर्षो पूर्व से है, यद्यपि परम्परागत सेवा भाव रोगी की सेवा भाव तथा उन्हें मानसिक बल प्रदान करने की क्रिया अति प्राचीन है। परिवार कि ओर से तथा धार्मिक समूह की तरफ से रोगियों की सहायता करना, गरीब रोगियों की शल्य चिकित्सा प्रदान करना तथा उसकी सहायता करना इन संघो के कार्य रहे है। किन्तु व्यवसायिक समाज कार्य पर आधारित तथा कौशल के आधार पर रोगियों की चिकित्सा एवं दुखों को दूर करने में सहायता पहुंचाने का प्रयास 1946 से दिखाई पड़ता है। उल्लेखनीय है की डॉ0 जी0एस0 घुरये की अध्यक्षता में सर्वेक्षण एवं विकास समुदाय उसकी संतुति 1944–1945 में समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति के संदर्भ में देखने को मिलती है। इस समुदाय में देश में स्वास्थ्य

सेवा का आंकलन करते हुए तथा विकास की सम्भावना को देखते हुए विकासात्मक संतुतिया प्रदान की गई है। चिकित्सा दल में समाज कार्य की स्वीकृति भी जरूरी है। चिकित्सा विज्ञान में रोगी के मनो–सामाजिक स्थितियों पर कम ध्यान दिया जाता है अर्थात् उस समय तक यह नहीं स्वीकार किया जाता की रोगी को रोग मुक्त होने मनो–सामायिक स्थितियां एक महत्वपूर्ण भूमिका रखती हैं 1945–46 में ही डा0 घुरिये कमेटी की संस्तुति के आधार पर सैद्वान्तिक रूप से चिकित्सा क्षेत्र में समाज कार्य की भूमिका स्वीकार कर ली गई।

1946 मुम्बई के जे0 जे0 अस्पताल में सर्वप्रथम चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति की गई। इसके बाद में ही के0 ई0 एम0 में समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति की गई। इस प्रकार धीरे–धीरे चिकित्सा के क्षेत्र में समाज कार्यकर्ता को मान्यता मिलने पर उनकी सरकारी–गैर सरकारी चिकित्सालयों में निरंतर नियुक्तियों की गई उदाहरणतया – अखिल भारतीय चिकित्सालय (रांची), बंग्लौर, AIMS नई दिल्ली तथा अन्य बड़े चिकित्सालयों में समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति की गई जैसा की पूर्णतया पहले बताया गया की समाज कार्यकर्ता की चिकित्सा में सैद्वान्तिक रूप से मान्यता तो स्वीकार कर ली गयी है परन्तु व्यवहारिक रूप से कार्य अन्तिम रूप से अभी भी संतोष जनक नहीं कहीं जा सकती। डॉ0 धुरिये कमेटी ने यह भी स्पष्ट किया की देश के प्रत्येक अस्पताल में कम से कम एक समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति की जानी चाहिए। यदि इस संस्तुति का कार्यन्वयन किया गया होता तो आज जो स्थिति है वह न होती। आज जिला अस्पताल में समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति ही नहीं है। 50 बेड वाले क्या 500 बेड वाले बड़े अस्पताल में भी एक चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता की आवश्यकता है।

भारत में चिकित्सकीय समाज कार्य का इतिहास अल्पकालिक है तथा साथ में इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है एक दूसरी स्थिति भी यह है कि सभी नियुक्त कार्यकर्ता में से अधिकांश अप्रशिक्षित है प्रारम्भ में शायद यह स्थिति है कि चिकित्सकीय समाज कार्य में समाज कार्य सुलभ न रहें और दूसरी यह भी सम्भावना रही हो की उन चिकित्सकीय संस्थाओं के रूप में न स्वीकार करें, सामान्य रूप से ही लेते रहे। इस प्रकार से समाज कार्यकर्ता से उनकी अपेक्षा अति निम्न होती है।

कभी–कभी रोगियों के लिए यह पथ प्रदर्शक का कार्य कर लेते है या चिकित्सा की तरफ से पत्र व्यवहार का कार्य करते है। या कार्यालय के कार्य में ही संबंध कर देते है। अतः इसके इन स्वरूपों के अध्ययन के बाद यह आवश्यक है की उनकी योग्यता का स्पष्ट आभाष चिकित्सा को होना चाहिए यह तब हो सकता हैं जब चिकित्सा में समाज कार्यकर्ता प्रशिक्षित हो। धुरिये कमेटी की संस्तुति के आधार पर ही सभी 50 बेड वाले अस्पतालो में

समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति कर देना चाहिए गैर सरकारी संस्थाओं में चिकित्सकीय समाज कार्य कर्ता का अत्यन्त सीमित क्षेत्र है।

समाज कार्य की मान्यता के लिए यह भी आवश्यक है कि चिकित्सकों को चिकित्सा अध्ययन के कार्य में समाज कार्य को साधारण दर्जा न दिया जाये ताकि व्यवहार रूप में भी समाज कार्यकर्ता को स्वीकार कर सकें। उल्लेखनीय है की भारत में कुछ चिकित्सालयों में समाज उन्मुलन चिकित्सा विभाग में समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति शैक्षिणिक अध्यापन में कि जाने लगी है। सामज कार्य विभाग का यह शुभ लक्षण है किन्तु इस दिशा में नियुक्ति भी मात्र पाँच या छः संस्थाओं तक ही सीमित है। अतः समाज चिकित्सा में समाज कार्यकर्ता नियुक्त अनिवार्य कर देनी चाहिए। इसी प्रकार जन स्वास्थ, परिवार नियोजन, सामुदायिक कार्य में भी समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति अनिवार्य की जानी चाहिए। यह स्थिति भारत सरकार निश्चित कर दे तो समाज कार्यकर्ता की नियुक्ति में सुधार में वृद्धि होगी।

1.7 सार संक्षेप

(1) चिकित्सकीय समाज कार्य व्यवसायिक समाज कार्य का एक विशेषीकरण तथा क्षेत्र हैं।

(2) यह व्यवसायिक सहायता प्रदान करने का कार्य है।

(3) इसके द्वारा रोगियों को उपलब्ध निवारक, निदानात्मक तथा उपचारात्मक सुविधाओं का अधिकतम उपयोग करने के लिये सहायता उपलब्ध करायी जाती है।

(4) इस सहायता द्वारा रोग ग्रस्त व्यक्ति चिकित्सकीय सेवाओं का इस अधिकतम लाभ उठाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करता है और समाज में अपनी क्रिया पूर्ववत करने लगता है।

इस प्रकार चिकित्सकीय समाज कार्य व्यवसायिक समाज कार्य की एक विशिष्ट शाखा है। जो अपने विशिष्ठ ज्ञान तथा निपुणता द्वारा स्वास्थ व चिकित्सा संबंधी रोगों का अध्ययन, उपचार तथा रोकथाम करती है।

1.8 अभ्यास प्रश्न :–

प्र0 1–चिकित्सकीय समाज कार्य का क्या उद्देश्य है?

प्र0 2–चिकित्सकीय समाज कार्य की परिभाषा लिखिये ?

प्र0 3–चिकित्सकीय समाज कार्य का अर्थ निरूपित कीजिये ?

प्र0 4–चिकित्सकीय समाज कार्य का क्षेत्र का वर्णन कीजिये ?

प्र0 5–चिकित्सकीय समाज कार्य का विदेशों में इतिहास पर चर्चा कीजिये ?

प्र0 6–चिकित्सकीय समाज कार्य का भारत में इतिहास का वर्णन कीजिये ?

प्र0 7–चिकित्सकीय समाज कार्य के कार्यों की व्याख्या कीजिये ?

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

प्रणाली – System	उन्नति– Promotion
विभिन्नता – Various	शारीरिक – Physical
पहचान – Identifying	मानसिक – Mental
हस्तक्षेप – Intervation	सामाजिक – Social
वितरण – Delivery	महत्त्वपूर्ण – essentials
अभिकरण– Agency	स्वास्थ्य नीति– Health Policy
सामान्य – Common	जागरूकता & aweremess

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

(1) नारायणन् सुधा ''जन स्वास्थ्य व परिवार कल्याण''2004 – साहित्य प्रकाशन
(2) वर्मा ऊषा 'स्वास्थ्य विज्ञान' 1986
(3) Park and Park. Preventive Medicine 2003, Bhanot Publications, Premnagar Jabalpur.
(4) आधुनिक असमान्य मनोविज्ञान, डी.डी.एन. श्रीवास्तव ,साहित्य प्रकाशन आगरा,आठवॉ संस्करण–1994–1995
(5) असमान्य मनोविज्ञान,डा0 एच के कपिल ,हर प्रसाद भार्गव, प्रथम संस्करण 1984।
(6) डा0 गिरिष कुमार : समाजकार्य के क्षेत्र विनोद चन्द पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1996
(7) Prof. Rajeshwar Prasad- Professional Social work Encyclopedia of social work
(8) Prof H.S Pathak- Medical Social Work Encyclopedia of Social Work.

इकाई–2

स्वास्थ्य,स्वच्छता,रुग्णता एवं चिकित्सकीय समाज कार्य

Health,Hygiene,Illness & Medical Social Work

इकाई की रूपरेखा

2.1 परिचय
2.2 उद्देश्य
2.3 स्वास्थ्य की अवधारणा एवं परिभाषा
2.4 स्वच्छता
2.5 रुग्णता की अवधारणा एवं परिभाष
2.6 संक्रामक एवं असंक्रामक रोग
2.7 चिकित्सकीय समाज कार्य में समाज कार्यकर्ता द्वारा प्रयोग पद्धति एवं प्रविधि
2.8 सार संक्षेप
2.9 परिभाषित शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्न
2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

उत्तम स्वास्थ्य व्यक्ति जन्म सिद्ध अधिकार है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि उसे सम्पूर्ण सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर मिले। स्वास्थ्य मानव जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है। जिसके बिना कोई भी व्यक्ति अपने क्षेत्र में उपलब्धि नहीं पा सकता है। क्योंकि रोगग्रस्त व्यक्ति अन्य क्षेत्रों में न कोई भी सफलता या अवसर नहीं प्राप्त कर सकता है। इसी स्थिति को कम करने के लिए अर्थात् मनुष्य को समग्र स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए रोगों के विभिन्न कारण, उनको रोकने के तरीके, रोग मुक्त की विधियों के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाए। इस प्रकार से इस प्रकार से चिकित्साशास्त्र का जन्म हुआ। चिकित्सालय शास्त्र की सहायता से आज प्रत्येक व्यक्ति और समाज को स्वास्थ्य सम्बन्धित आवश्यकताओं के अनुसार उपकरण सेवाएं तथा जानकारी उपलब्ध है। मानव कल्याण के सुख एवं संतोष की प्राप्ति के लिए चिकित्सा शास्त्र तथा स्वास्थ्य विज्ञान को रोगों से सम्बन्धित विभाग ही नहीं अपितु निरोधात्मक, प्रवर्तक तथा पुनर्वास सेवाओं के निर्माण के लिए भी प्रयुक्त किया जा रहा है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- स्वास्थ्य, बीमारी, स्वच्छता की अवधारणा तथा परिभाषा के विषय में जान सकेंगे।
- स्वास्थ्य के लाभ को विस्तार पूर्वक जान सकेंगें।
- बीमारी से होने वाले दुष्प्रभाव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- चिकित्सकीय क्षेत्र में समाज कार्यकर्ता द्वारा प्रयोग पद्वति तथा प्रविधि के विषय में जान सकेंगें।
- संक्रामक तथा असंक्रामक रोगों के बारे में विस्तार पूर्वक जान पायेंगें।

2.3 स्वास्थ्य की अवधारणा

पहला सुख निरोगी काया तथा स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मस्तिष्क का निवास होता है यह कहावत काफी प्रचलित व पुरानी है। स्वास्थ्य सभी के लिये अनिवार्य तथा उपयोगी हैं स्वास्थ्य से अभिप्राय सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य से ही नहीं बल्कि मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा संवेगात्मक स्वास्थ्य से भी है। मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति तभी स्वस्थ्य कहाँ जा सकता है। जब वह शांत चित्र, चिंतामुक्त प्रसन्नचित्र तथा संयम से युक्त होकर सहनशीलता का गुण रखता है।

स्वास्थ्य के सभी समुदायो के सदस्यों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से बतलाया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायिक समूह (जैवचिकित्सकीय, वैज्ञानिक, सामाजिक विज्ञान विशेषज्ञ, स्वास्थ्य प्रबन्धकर्ता आदि) स्वास्थ्य के प्रत्यय के विषय में अपने–अपने मत विचार देते है।परिवर्तनशील संसार में स्वास्थ्य का प्रत्यय भी विचाराधीन है। स्वास्थ्य के परिवर्तनशील प्रत्यय का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है–

(1) **जैव चिकित्सकीय प्रत्यय (Bio-medical concept)**:–परम्परागत रूप से स्वास्थ्य को रोग की अनुपस्थिति ''के रूप में ही विचारा जाता है। एक व्यक्ति जो रोगमुक्त है स्वास्थ कहलाता है। स्वास्थ्य का यह प्रत्यय Crerm theary disease पर आधारित है। जिसने 20वीं शताब्दी के चिकित्सकीय विचार को प्रभावित किया। चिकित्सकीय दृष्टिकोण के अनुसार मानव शरीर एक मशीन के समान होता है तथा रोग उस मशीन में खराबी का घोतक है एक चिकित्सक का कार्य मशीन की मरम्मत कर उसे ठीक करना होता है। इस प्रकार संकुचित अर्थ में स्वास्थ्य चिकित्सा शास्त्र का अंतिम लक्ष्य हो गया। किन्तु कालान्तर में स्वास्थ्य के इस प्रत्यय की आलोचना की गई और कहा गया है कि जैव चिकित्सकीय प्रत्यय वे स्वास्थ्य के अन्य निर्धारकों जैसे– पर्यावरणीय सामाजिक मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक कारकों की भूमिका की अवहेलना की है।

(2) **पारिस्थितिकीय प्रत्यय (Ecological concept)**:– जैव चिकित्सकीय अवधारणा की कमी ने एक नये प्रत्यय को जन्म दिया। परिस्थितिकीय विद्वानों ने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में एक आकषर्ण उपकल्पना रखी जिसे उन्होंने मानव व उनके पर्यावरण के बीच गतिशीलता साम्य बताया तथा रोग व्यक्ति का पर्यावरण के साथ कुसमायोजन है। इस प्रकार यह प्रत्यय दो बातों का उल्लेख करता है।

(i) दोषमुक्त व्यक्ति।

(ii) दोषमुक्त पर्यावरण।

(3) **मनोसामाजिक प्रत्यय (Pycho-Social concept)**:– सामाजिक विद्वानों में समकालीन विकल्पों ने स्पष्ट किया है कि स्वास्थ्य केवल एक जैव चिकित्सकीय घटना ही नहीं है बल्कि यह सामाजिक, मनोवैज्ञानिक सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक कारकों से भी प्रभावित होता है। ये कारक स्वास्थ्य को परिभाषित करने व मापने के लिए विचारणीय एवं महत्वपूर्ण है। इस प्रकार स्वास्थ्य जैविक व सामाजिक दोनों प्रकार की अवधारणा है।

(4) **सम्पूर्णात्मक प्रत्यय (Holistic concept)**:–स्वास्थ्य का यह प्रत्यय उपयुक्त सभी प्रत्ययों का सम्मिश्रण है। इसके अनुसार स्वास्थ्य पर सामाजिक आर्थिक राजनैतिक व पर्यावरणीय कारको का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य का यह उपागम स्पष्ट करता है कि समाज के सभी क्षेत्र जैसे– कृषि, भोजन, उद्योग, शिक्षा, सार्वजनिक कार्य व्यवहार आदि दूसरे क्षेत्र स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालते है।

2.3.1 स्वास्थ्य का नया दर्शन (New Philosophy of health)

गत वर्षो में स्वास्थ्य के नये दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये है, जो इस प्रकार है:–

(1) स्वास्थ्य मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।
(2) स्वास्थ्य विकास का सम्पूर्ण भाग है।
(3) स्वास्थ्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्यय व गुणों का केन्द्र है।
(4) स्वास्थ्य व्यक्ति की स्थिति व अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को संयुक्त करता है।
(5) स्वास्थ्य एक सर्वव्यापक सामाजिक लक्ष्य है।

स्वास्थ्य की परिभाषित करते हुये कहा गया है कि – स्वास्थ्य एक ऐसा प्रत्यय है जिसे परिभाषित करने में विद्वानों को कठिनाई का आभास हुआ। विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित करते हुए अपने–अपने मत रखे है जो इस प्रकार है–**वेबस्टर के अनुसार**–स्वास्थ्य शरीर मन या आत्मा में स्वास्थ्यता की अवस्था है जिसमें किसी भी प्रकार का शारीरिक रोग अथवा पीड़ा न हो।''**आक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार**–स्वास्थ्य शरीर या मन की वह अवस्था जिसमें कार्य अधिक कुशलता पूर्वक एवं सर्वोत्तम प्रकार से हो सके। इसमें निम्न बातें आती है–

(1) जैविकीय
(2) परिस्थकीय प्रत्यय
(3) मनोसामाजिक प्रत्यय
(4) मनोदैहिक प्रत्यय
(5) सम्पूर्णात्मक प्रत्यय

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार–स्वास्थ्य वह स्थिति है जिसमें सम्पूर्ण भौतिक, मानसिक एवं सामाजिक कुशलता पाई जाती है केवल बीमारियों की अनुपस्थिति ही स्वास्थ्य नहीं है।उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पूर्ण, आपय की निर्दोष तथा विशिष्ट स्वास्थ्य से स्तर की प्राप्ति कठिन है, तथापि प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज या समूह का ध्येय उस प्रकार के स्वास्थ्य के स्तर की प्राप्ति ही होना चाहिए। स्वास्थ्य मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है परन्तु वह तभी प्राप्त कर सकता है जब वह प्रकृति के नियमों का पालन करने में समर्थ हो। स्वास्थ्य के पक्ष अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि आपस–पास का वातावरण स्वास्थ्यकर हो, व्यक्ति को संतुलित भोजन उपलब्ध हो और उनकी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार पर्याप्त शारीरिक सक्रियता व आराम सुलभ हो सके। स्वास्थ्य मानव की सामान्य तथा साधारण स्थिति और उसका जन्मसिद्ध अधिकार भी है।

शारीरिक स्वास्थ्य– शारीरिक या भौतिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण स्वास्थ्य का एक प्रमुख अवयव है। भौतिक स्वास्थ्य के लक्षण इस प्रकार है–त्वचा चमकदार धब्बे रहित, क्रान्तियुक्त लचकदार झुरियॉ विहिन दृढ़ हो किन्तु स्थूल नही, ऑखे दोष रहित और बाल रुखे–सूखे न होकर चमकयुक्त हो, श्वास मीठी सी हो दुर्गन्धपूर्ण नहीं, भूख, खूलकर लगती हो तथा निष्ठा गहरी आती हो, शारीरिक गतिविधिया तथा बाहय गति सरल सुसमन्वित, सुसंगठित व सामान्य हो, शरीर के बाहय और आंतरिक समस्त अंग सामान्य रूप से कार्य करते हो। सभी ज्ञानेन्द्रियों सक्रिय हो और संचेत भी। व्यक्ति की आयु एवं लिंग के अनुरूप रक्तचाप एवं परिश्रम–सहनशीलता सामान्य बनी रहे।

मानसिक स्वास्थ्य– यद्यपि कि यह सर्वमान्य नहीं है कि स्वास्थ्य को भौतिक एवं मानसिक अवयवों में विभाजित किया जाए तथापि स्पष्ट रूप से समझने के लिए उनको पृथक–2 अंग के रूप में जान लेना आवश्यक है। भौतिक व मानसिक स्वास्थ्य आपस में इतने अधिक सम्बन्धित है कि एक के बिना दूसरा अधूरा है कहावत है किस्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मस्तिष्क निवास करता है। मानसिक रूप से व्यक्ति स्वस्थ्य है या नहीं इसका पता हम निम्न लक्षणों द्वारा प्राप्त कर सकते है।

मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति न हो स्वयं को कभी धिक्कारता है और न ही कभी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रत्यन करता है। वह अपने आपसे पूर्णतः सन्तुष्ट रहता है, सर्वदा

प्रसन्नचित, शान्त व आनन्दित रहता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं से संघर्ष नहीं करता। दूसरे के संवेगों को आघात नही पहंचाता है तथा शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार करता है। मानसिक रूप से स्वयं स्वस्थ्य मानव में अच्छा आत्म नियंत्रण होता है।

सामाजिक स्वास्थ्य– सामान्यतः सामाजिक स्वास्थ्य का अर्थ है समाज में रहते हुए व्यक्ति में दीर्घकालीन मित्रता करने की क्षमता हो, स्वयं के क्षमताओं के अनुरूप उत्तरदायित्वों को स्वीकार करने की रूचि हो वह प्रतिदिन के कार्यो में सफलता–असफलता का विचार न करके संतोष, आनन्द और सुख का अनुभव करता हो। दूसरे के साथ सफलता पूर्वक समायोजन करके जीवन यापन करता हो और इन सबके साथ ही साथ उसमें सामाजिक रूप से सबके साथ शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार करने की भी स्वाभाविक योग्यता होनी चाहिए।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य– अभी तक तो आध्यात्मिक स्वास्थ्य को पूर्ण स्वास्थ्य के साथ तो नहीं जोड़ा गया है परन्तु वर्तमान समय में आध्यात्मिक स्वास्थ्य की अत्यन्त आवश्यकता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य चौथा पहलू है अर्थात प्रातः व साथ परमात्मा का ध्यान व पूजा करना है। धार्मिक अनुष्ठान वेद, मंत्रोच्चारण, योग, व्यायाम आदि के द्वारा कई रोगों का इलाज किया जा सकता है। अतः मनुष्य के पूर्ण स्वास्थ्य के लिये आध्यात्मिक स्वास्थ्य आवश्यक है।

➢ **स्वास्थ्य की प्रकृति**

(1) स्फूर्ति एवं प्रसन्नता से पूर्ण
(2) उत्साह के साथ कार्य करने की क्षमता
(3) आत्मविश्वास
(4) रोग मुक्त रहना
(5) स्वास्थ्य मानसिक दृष्टिकोण
(6) सर्वकल्याण की भावना
(7) अनावश्यक चिन्ता रहित
(8) साहस युक्त

2.4 स्वच्छता

मनुष्य के आस–पास विद्यमान भौतिक वातावरण में प्राकृतिक तथा प्रदूषण कारक सर्वत्र पाये
जाते हैं इसलिए पर्यावरण की स्वच्छता के लिए आवश्यक है निम्नलिखित बिन्दुओं पर आधारित है–

(1) जल की स्वच्छता

(2) वायु की स्वच्छता
(3) मल–कूड़े का विकास
(4) मकान की व्यवस्था षहर–ग्राम में मकानों की योजना
(5) मेले या जल में वातावरण की स्वच्छता

पर्यावरण की स्वच्छता का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति के शारीरिक मानसिक तथा सामाजिक कुशलता को घटाने वाली जितने कारक भौतिक गतावरण में उपस्थित है उनको नियन्त्रण में लाने का प्रत्यन किया जाए। स्वच्छता की आधारभूत मांगे है सक्रांमक रोगों से मुक्ति, उनपर नियन्त्रण, उनको कारणो को हल करना शुद्ध पानी का वितरण करना, कुड़े एवं मानव के मल के निकास का सफल प्रबन्ध करना, भोजन व मकान आदि की स्वच्छता पर ध्यान देना शहरों में वायु प्रदूषण को रोकना औद्योगिक या व्यवसायिक क्षेत्र में खतरे कम करना आदि। इस प्रकार पर्यावरण एवं स्वास्थ्य को सुरक्षित करने के लिये व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्व निम्नानुसार है–

(1) स्वास्थ्य अधिकारियों को संक्रमण के बारे में शीघ्र सूचना देना।
(2) रोगी द्वारा प्रयोग में लाए गए पदार्थो, बिस्तर आदि को बाहर न लाना।
(3) रोगी को बाहर जाने न देना क्योंकि इससे रोग फैलने का डर रहता है।
(4) जो बच्चा संक्रमण रोगों से पीड़ित हो उसके बारे में स्वास्थ्य अधिकारी तक सूचना देना।
(5) रोगी द्वारा सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
(6) जिन्हें प्रतिरोधक टीके नहीं लगे है। उन्हें रोगी के देखने के लिये अस्पताल में नहीं जाना चाहिये।
(7) रोगी यदि घर में हो तो उसका पृथक्करण तथा कमरे का व घर का निसंक्रमण करना चाहिये।
(8) घर वालो को प्रतिरोधक टीके लगवाना चाहिये।

2.5 रुग्णता की अवधारणा

प्राचीन काल में रुग्रणता की अवधारणा पूर्णतया जैवकीय अर्थात् मानव शरीर में जैविकीय कुसमंजन पर आधारित थी। परन्तु आयुर्विज्ञान की प्रगति के साथ ही प्राचीन अवधारणा में भी परिवर्तन आता गया। यहाँ तक कि आज रोग का सम्बन्ध मात्र जैविकीय स्थितियों एवं शरीर विज्ञान तक ही सीमित नहीं रह गया है। वरन् सामाजिक पर्यावरण सामाजिक सम्बन्ध व संगठन सांस्कृतिक परिवेश तथा मनोवैज्ञानिक, स्थितियों से भी इसे जोड़ा जाने लगा है। रोग मानव शरीर की वह अवस्था है जिसमें मानव शरीर में किसी प्रकार की विकृति अथवा अक्षमता आ जाती है। रोग गर्भस्थ शिशु से लेकर मृत्यु के कगार

पर खड़े व्यक्ति तक को हो सकता है। यह सभी तथा पुरुष, बालक अथवा बालिका में कोई भेद नही मानता। यह विश्व के किसी भी कोने में रहने वाले किसी भी व्यक्ति को किसी भी ऋतु में ग्रसित कर सकता है।

रुग्रणता की परिभाषा

डॉ0 मैकेलिन– ''रोग से तात्पर्य है साधारणतः सामान्य प्रकार्य से विचलनशीलता है जो अपने–आप में अवांछनीय निष्कर्ष है क्योंकि इससे व्यक्तिगत अशान्ति या व्यक्ति के भावी स्वास्थ्य स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।'' **Park and Park-** ने इन रोगाों को निम्नलिखत रूप से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है–

(1) **संक्रामक रोगः–** आयुविज्ञान सम्बन्धित की आधुनिक स्थिति से स्पष्ट होता है। कि अधिकांश संक्रमण रोग संक्रामक रोग विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों के कारण होते है। क्योंकि ये सूक्ष्म जीव मानव शरीर पर परजीवी बन जाते है, जैसे– जीवाणु, फंगल, विषाणु इत्यादि।

(2) **चिर रोगः–** चिर रोगो के विरूद्ध बचाव करने में संक्रामक रोगो की अपेक्षा भिन्न तथा कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अनेक चिर रोगों, जैसे– यक्ष्मा, कोष्ठ रोग आदि में ऊतक का पतन तथा जीत सम्बन्धित अंगों की प्रकार्यत्मकता की शक्ति का ह्रास होता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मुख्य रूप से ये वृद्धावस्था के रोग है।

(3) **मानसिक रोगः–**रोग के वर्गीकरण में अंतिम व तीसरे प्रकार का रोग मानसिक असामान्यता से सम्बन्धित है। संक्रामक रोग व चिर रोगो की तुलना में मानसिक रोग की गति के संदर्भ में भी अभी कम ज्ञान है। मानसिक रोगों के जैवाकीय या प्रकार्यात्मक आधार होते हैं। पार्सन्स ने बिमारी को एक संस्थागत भूमिका माना है और इसका ''थिरेपी'' के साथ सम्बन्ध सामाजिक नियन्त्रण का एक यांत्रिकी है।

2.6 संक्रामक रोग तथा असंक्रामक रोग

- **जन्मजात रोग उपार्जित रोग**
- **संक्रामक रोग असंक्रामक रोग**

संक्रामक रोग– जो रोग रोगाणुओं के कारण फैलते है उन्हें संक्रामक रोग कहते है। 'छूट' का अर्थ है किसी व्यक्ति का प्रत्यक्ष एवं परीक्षा रूप से रोग ग्रसित व्यक्ति के रोगों के संपर्क में आना। संक्रामक रोग बहुत शीघ्र तक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, परिवार व समूह ही नहीं बल्कि पूरे शहर भर में तीव्रता से फैलता है। प्रत्येक संक्रामक रोग का कारण एक अत्यन्त सूक्ष्म जीवाणु होता है।

संक्रामक रोगों का फैलना– शरीर में संक्रामक रोग निम्न विधियों द्वारा फैलते हैः– वायु द्वारा दूषित अथवा संक्रमित वायु में सांस लेने अथवा बहुत भीड़ व धूल भरे स्थानों, सिनेमाघरों आदि में सांस लेने पर, सांस द्वारा विभिन्न, रोगों के जनक, जीवाणु शरीर में प्रवेश कर एक स्वास्थ्य व्यक्ति को भी रोग ग्रसित कर देते है। क्षय रोग, डिपथीरिया कुकुर खॉसी, आदि रोग मुख्य रूप से सवंमित वायु द्वारा ही फैलते है। इन रोगों के थूक व मल–मूत्रादि का उचित संक्रमण न होने पर उनके रोगाणु वायु को दूषित करते है।

भोजन तथा पेय पदार्थो द्वारा–इस विधि से रोग फैलने में मक्खियों की सर्वाधिक भूमिका होता है। मक्खिया जब गन्दगी या रोगाणु युक्त स्थान पर बैठती है, तब ये अपने पैरों में रोगाणु चिपका लेती है। फिर ये जब भोजन पर बैठती है तबये रोगाणु वही छोड़ देती है। ऐसे दूषित भोजन का सेवन करने वाला व्यक्ति रोगी हो जाता है। इसी प्रकार दूषित पेय पदार्थ का सेवन करने से भी व्यक्ति संक्रामक रोग का शिकार हो जाता है। पेचिश, हैजा, मोतीझरा एवं अतिसार आदि रोग इसी प्रकार के होते है।

कीटों व अन्य जन्तुओं द्वारा फैलने वाला रोग कुछ रोग कीट एवं जन्तुओं द्वारा भी फैलता है जैसे– मच्छर द्वारा मलेरिया विस्सू द्वारा प्लेग तथा नेत्र रोग सी0 सी0 मक्खी द्वारा फैलता है। जब ऐसे जन्तु किसी रोगी को काटते है। तो उसके रक्त के साथ रोगाणु भी चूस लेते है। फिर जब वे स्वस्थ्य मनुष्य को करते है। तो उसके रक्त में ये रोगाणु प्रवेश कर जाते है और फिर जब वे स्वस्थ्य स्वस्थ्य मनुष्य को काटते है तो उसके रक्त में ये रोगाणु प्रवेश कर जाते हैं और वो मनुष्य रोगी हो जाता है।

चोट या घाव द्वारा– शरीर के किसी अंग पर यदि चोट या घाव खुला हो या उसमें मिट्टी आदि लग जाने से भी रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाते है। जैसेः टिटेनस मुख्य है।
जननेन्द्रियों द्वारा– कुछ गुप्त ऐसे होते हैं जिनके रोगाणु व्यक्तियों की जननेन्द्रियों में पायी जाती है जैसे– सुजाक का रोग।

सम्पर्क द्वारा–रोगी व्यक्ति के रोग निवृत्त हो जाने के बाद भी उसके शरीर में रोगाणु कहते है। जब स्वस्थ्य व्यक्ति उसके सम्पर्क में आते हैं तो वह भी रोगी हो जाते है।

कुछ साधारण संक्रामक रोग के कारण एवं फैलने के कारण–

हैजा :– यह रोग विब्रियो केलेरी नामक जीवाणु द्वारा होता है।

फैलने के कारण :–जल, खाद्य पदार्थो तथा मक्खियों द्वारा होता है।

मुख्य लक्षण :–उल्टी व दस्त इस रोग का विशिष्ट लक्षण है। पतले चीनी जैसे तथा सफेद रंग लिये होते है। दस्तों तथा उल्टियों के कारण जब की कमी हो जाता है। हाथ–पैरों में ऐंठन हो जाती है आदि साधारणतः गर्मियों में अधिक होता है। नमी युक्त वातावरण में भी यह अधिक होता है।

टायफाइड–यह रोग वैसीलस टाइफोसस या साल्मोनेलाटाइफी द्वारा होता है। रोगी व्यक्ति या रोग वाहक व्यक्ति द्वारा यह रोग फैलता है। स्त्रियों कि अपेक्षा पुरूषों में यह रोग अधिक होता है। मलयुक्त खाद पर उगी सब्जियों में जीवाणु पाये जाते है, उसके कारण होता है। जुलाई, अगस्त में यह अधिक होता है क्योंकि इस समय मक्खियों की संख्या बढ़ जाती हैं।

फैलने के कारण– दूषित जल, खुले में मल निष्कासन, मूत्र त्याग से भूमि, जल तथा भोजन दूषित होता है और रोग फैलता है। मक्खियों द्वारा भी रोग फैलता है, व्यक्तिगत स्वच्छता के निम्न स्तर जैसे– शौच जाने के बाद हाथ न धोना, अस्वच्छ आदतें, जैसे तालाब आदि में गंदे दस्त धोना, रसाई तथा आहार की स्वच्छता तथा अभाव, निरक्षरता अज्ञानता आदि के कारण भी रोग प्रसारित होता है।

क्षयरोग :– यह एक विशिष्ट संचारी रोग होता है जिसका लक्षण या कारण एक जीवाणु होता है। इसे माइक्रो वैक्टीरियम ट्यूब क्यूलोसिस या वैसीलन कहते है। यह तीव्र या दीर्घावधि का हो सकता है। क्षयरोग अधिकतर फेफड़ों का होता है पर आतों, गुर्दो, हड्डियों, त्वचा पर भी आक्रमण कर सकता है। फैफड़ों की यक्ष्मा को फुफ्फुल यक्ष्मा तथा अन्य भागों में होने वाली बीमारी को फुफ्फुसेटर कहते है।

फैलने का कारणः–रोगी के सीधे सम्पर्क से, कफ व बलगम के गीले व सूखे कणों से, रोगी की वस्तुओं के उपयोग से, धूल कणों के श्वसन मार्ग में प्रवेश पाने से रोग का प्रसार होता है।

पोलियो मेलायटिस :– यह एक तीव्र संचारी छूत का रोग हे। जिसका कारण एक वायरस होता है इसे एण्टीरो वायरस कहते हैं। यह यद्यपि मानक्की पाचन प्रणाली को संक्रमित करता है। तथापि नाड़ी संस्थान पर आक्रमण करके पक्षपात को कारण बनता है। यह विश्व भर में फैला हुआ रोग है। यह 6 माह के शिशुओं से 3 वर्ष तक के बच्चों पर आक्रमण करता है। 15 साल की आयु तक इसके होने की संभावना होती है। लड़कियो की तुलना में यह रोग लड़कों को अधिक होता है।

फैलने का कारण–रोगी प्राथमिक प्रसार रोगी के नाक व गले के स्त्राव द्वारा या मल द्वारा होता है। भोजन, दूषित जल पदार्थो से रोग फैलता है। मक्खियों से रोगी के मल–मूत्रादि से रोग प्रसारित होता है।

असंक्रामक रोग के प्रसार

(1) एलर्जी – किसी पदार्थ के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता के कारण।
(2) आनुवंशिक रोग – आनुवंशिक कारको के कारण : हीमोफीलिया।
(3) हीनता जन्य रोग – विभिन्न पदार्थो की कमी से जैसे :– रिकेट्स, अनियमित ऊतक वृद्धि के कारण आदि।

(4) सामाजिक रोग – जैसे मदिरापान, नशाखोरी आदि।

(5) ह्रासित रोग – इसमें मस्तिष्क व हृदय व अन्य अंगों के असंक्रमणीय रोग आते है, जिनकी

संभावना आयु बढ़ाने के लिये साथ–साथ बढ़ती है। धीरे–धीरे आयु के साथ–साथ अंगों की कार्यक्षमता भी अनेक, कारणों से कम हो जाती है। हृदय के रोग, मधुमेह व जोड़ो का दर्द इसी प्रकार के रोग हैं।

- **हृदय रोग**–जब हृदय तंत्र किन्ही कारणों से अपनी गतिविधियों को सुचारू रूप से संचालित नहीं कर पाता है तो उससे उत्पन्न रोग को हृदय रोग कहते हैं।

हृदय रोग के प्रकार :–हृदय रोग कई प्रकार के होते है इनमें मुख्य रोग है– एन्यूरिज्म, ऐंजाइना,

एथेरोर–क्लेरोसील, सेरिब्रोवैस्वयूलर, एक्सीडेंट, सेरेब्रोवैस्क्यूलर रोग, कोरोनरी आर्टरी रोग, मायोकार्डियल, इन्फेक्शन।

कंजेस्टिव हार्ट फेल्योर का कारण :– इस रोग के अनेक कारण है।

इसका सर्वप्रथम कारण है–हाइपरटेंशन : हाइपरटेंशन से हृदय रोग बढ़ जाता है। इसके अन्य कारणों में है। कोरोनरी आर्टरी रोग,सिस्टोलिक एवं डायस्टोलिक गड़बड़ी, जन्म से हृदय रोग का होना, पोरिकार्डियल रोग, हृदय के वाल का संकरा होना।

वाल्मोनदी इम्बेलिज्म, हदय के तत्वों के सुचारू रूप से क्रियाशीलता न होना।

माथेकार्डिमल इन्फार्क्शन, हृदय की मांसपेशियों में सूजन होना, एरिधमिया, कार्डियोमाथोपेथी, एनिमिया, थामरो टैक्सीको सीस आदि।

घातक कारण–जिन कारणों से हृदय रोगों का खतरा होता है, वे कारक हैः– धूम्रपान, अत्यधिक वसायुक्त भोजन, अत्यधिक मोटापा, शराब की लत, अत्यधिक सोडियम युक्त चीजों का सेवन, जैसे नमक आदि, न्यूमोनिया, नजला–जुकाम। धूम्रपान एवं शराब की लत हृदय रोग की तीव्रता एवं खतरे को कई गुना बढ़ा देता है।

समाज कार्यः–समाज कार्य एक व्यवसायिक सेवा है जिसमें किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता की जाती है कि वह स्वयं अपनी समस्या को सुलझाने के लिए सक्षम हो जाय। अर्थात् समाज कार्य का तात्पर्य सहायता मनुष्य को प्रार्थी न बनाकर इसे अपने आप अपनी स्वयं की क्षमता से अपनी समस्या के समाधान हेतु तैयार है।

समाज कार्य की प्रणालियॉः–समाज कार्य में व्यक्ति, समूह तथा समुदाय तीनों स्तरों पर सहायता प्रक्रिया के सुचारू रूप से संचालन के उद्देश्य से फ्रेडलैण्डर ने निम्नलिखित 6 प्रणालियों का विकास किया जिनमें प्रथम तीन प्रणालियॉ मुख्य प्रणाली के रूप में तथा अन्य तीन सहायक प्रणालियाँ स्वीकार की गई है। जो निम्न है–

(1) सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य
(2) सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य
(3) सामुदायिक संगठन
(4) समाज कल्याण प्रशासन
(5) समाज कार्य शोध
(6) **सामाजिक क्रियाः**—प्रथम तीन सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन व्यक्तियों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित कर सहायता प्रदान करता है तथा दूसरी तीन प्रणालियों (समाज कल्याण प्रशासन समाज कार्य शोध, सामाजिक क्रिया) उपलिखित प्रणालियों के निश्चित उपयोग में सहायता प्रदान करती है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्यः— सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य द्वारा एक समय में केवल एक व्यक्ति की सहायता प्रदान की जाती है तथा वही सेवा कार्य का मुख्य बिन्दु होता है। अतः सामाजिक वैयक्तिक एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तित्व (आन्तरिक सम्बन्ध) और सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्यः— सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य समाज कार्य की दूसरी महत्वपूर्ण प्रणाली है। TRECKER के अनुसार ''सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में एक कार्य कर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्य कर्ता कार्यक्रम संबंधी क्रियाओं में व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रक्रिया का मार्ग दर्शन करता है। जिससे वे एक—दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर सके और वयैक्तिक सामूहिक एवं सामुदायिक विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों को अनुभव कर सके।''

सामुदायिक संगठनः— सामुदायिक संगठन का तात्पर्य किसी समुदाय या समूह में लोगों द्वारा आपस में मिलकर कल्याण कार्यों की योजना बनाना है, उसके लिए उपाय तथा साधनों को निश्चित करना है। समाज कार्य में हमारी सहायता की इकाई व्यक्ति होता है। जिसकी सहायता व्यक्तिगत स्तर के साथ—साथ परिवार, पड़ोस, समुदाय के स्तर पर की जाती है अर्थात् सामुदायिक संगठन के अन्तर्गत व्यक्ति व समूह दोनों आ जाते हैं।

समाज कल्याण प्रशासनः— किसी व्यवस्था नियम या विधियों को वैज्ञानिक ढ़ग से सुचारू रूप से संचालित करता ही प्रशासन है। समाज कल्याण प्रशासन के ही समाज कार्य प्रशासन स्वरूप समाज कार्य की द्वितीय प्रणाली या प्रक्रिया के रूप में सम्मिलित किया गया है जिसके माध्यम से कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति तथा सामाजिक नीतियों को सामाजिक क्रिया के रूप में कार्यान्वित करने का प्रयास किया जाता है।

समाज कार्य शोधः—वास्तव में शोध या अनुसंधान एक ज्ञान की खोज है जो किसी प्रश्न या समस्या का वैज्ञानिक समाधान ढूँढने से सम्बन्धित होता है। ''अनुसंधान या शोध द्वारा नये तत्त्वों की खोज पुराने तथ्यों का सत्यापन, उनकी क्रमबद्धता तथा अन्त सम्बन्ध कार्य—कारण व्याख्या तथा उन्हें निर्मित करने वाले स्वाभाविक नियमों की विधिवत खोज की जाती है।

सामाजिक क्रियाः— प्रारम्भ में सामाजिक क्रिया शब्द का प्रयोग सामाजिक आन्दोलन तथा सामाजिक सुधार के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। परन्तु आधुनिक समाज कार्य के विकास के फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं के समाधान और सामाजिक प्रगति के मार्ग में उपस्थित बाधाओं को दूर करके वांछनीय सामाजिक प्रगति के मार्ग में उपस्थित बाधाओं को दूर करके वांछनीय सामाजिक परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को सामाजिक क्रिया की संज्ञा दी जाने लगी है। फ्रीडलैण्डर ने सामाजिक क्रिया को सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में एक संगठित सामूहिक प्रयास माना है।

2.7 समाजकार्य की पद्धतियों एवं प्रविधियों का चिकित्सकीय समाज कार्य अभ्यास में प्रयोग

चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत कार्यकर्ता रोगी की रूग्णता और उसके कारण उत्पन्न सामाजिक मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन, निदान एवं उपचार में सहायता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक अनूठी इकाई के रूप में होता है, उसकी मनो—सामाजिक स्थितियां, पर्यावरण, मनोवृत्तिया, भावनाएँ, शारीरिक गल तथा व्यक्तित्व दूसरे से भिन्न होता है। इस कारण एक ही रोग से ग्रस्त विभिन्न व्यक्तियों के रोग के कारण और उपचार प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार अलग—अलग प्रविधियों का प्रयोग करता है। चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत समाज कार्य की प्राथमिक तीन प्रणालियों का उपयोग अधिक महत्वपूर्ण होता है। इनके अतिरिक्त समाज कल्याण प्रशासन सामाजिक क्रिया तथा समाजकार्य शोध प्रणालियों का प्रयोग भी सहायक प्रणालियों के रूप में समय—2 पर आवश्यकतानुसार किया जाना स्वाभाविक है। उपयुक्त समस्त दशाओं में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता वैयक्तिक सेवाकार्य प्रणाली के अनेक उपचार प्रविधियों के माध्यम से सहायता कार्य करता है। इस अभ्यास के दौरान कार्यकर्ता अपने व्यक्ति सम्बन्धों के अन्तर्गत संचेत रूप से निर्देशित क्रियाओं के द्वारा उपचार के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उपयुक्त प्रविधियों एवं प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक ढंग से निपुणता पूर्वक अभ्यास करता है। चिकित्सीय समाज कार्य अभ्यास की सफलता के लिए आवश्यक होता है कि कार्यकर्ता व सेवार्थी के बीच व्यक्तिएवं विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित हो। चिकित्सकीय समाज कार्य क्षेत्र में प्रयुक्त वैयक्तिक सेवाकार्य की प्रविधियों अपने आप में प्रक्रिया स्वरूप होता है जिन्हें कई चरणों में क्रियान्वित करके सेवार्थी की र्स्वागीण रूप से सहायता की

जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र में अभ्यास की जाने वाली वैयक्तिक सेवाकार्य की कुछ प्रमुख प्रविधियाँ निम्नलिखित है–

- अन्वेषण
- व्याख्या
- स्पष्टीकरण
- सम्बल
- अंशीकरण
- सामान्यीकरण
- शिक्षण
- तादात्मीकरण
- संक्षिप्तीकरण
- पुनर्सान्त्वना
- निर्देशन
- स्वीकृति
- सार्वभौमीकरण
- सकारात्मकता
- अन्तर्द्वष्टि का विकास
- संप्रेषण प्रोत्साहन

2.8 सार संक्षेप

मानव जीवन में स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण स्थान होता है । यह भी कहा जाता है कि ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है।'' अतः मनुष्य अपने जीवन में स्वास्थ्य आनन्द और दीर्घायु की कामना अनादि काल से शाश्वत रूप से करता आ रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करने वाली तथा समस्यात्मक स्थिति केवल बीमारी हैं। फलस्वरूप यह सामाजिक आवश्यकता अनुभव हुई कि अच्छे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए रोगों के विभिन्न कारण उनको रोकने के तरीके, रोगमुक्त की विधियों के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाय। इस प्रकार स्वास्थ्य विज्ञान का जन्म हुआ।

स्वास्थ्य की अवधारणाः–पहला सुख निरोगी काया तथा स्वास्थ्य शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है यह कहावत काफी प्रचलित व पुरानी है स्वास्थ्य सभी के लिए

अनिवार्य तथा उपयोगी है। स्वास्थ्य से अभिप्राय सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य से ही नहीं बल्कि मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, संवेगात्मक स्वास्थ्य से भी है। मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति तभी स्वस्थ कहाँ जा सकता है जब वह शांत चित्त, चिन्तामुक्त, प्रसन्नचित तथा संयम से युक्त होकर सहनशीलता का गुण रखता है।

स्वास्थ्य का नया दर्शन–गत वर्षो में स्वास्थ्य के नये दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये है, जो इस प्रकार है–

(1) स्वास्थ्य मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।
(2) स्वास्थ्य विकास का सम्पूर्ण भाग है।
(3) स्वास्थ्य व्यक्ति के जीवन के प्रत्यय व गुणों का केन्द्र है।
(4) स्वास्थ्य व्यक्ति की स्थिति व अन्तर्राष्ट्रीय उत्तदायित्व को संयुक्त करता है।
(5) स्वास्थ्य एक सर्वव्यापक सामाजिक लक्ष्य हैं।

स्वास्थ्य एक ऐसा प्रत्यय है जिसे परिभाषित करने में विद्वानों को कठिनाई का अभास हुआ। विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित करते हुए अपने–अपने विचार रखे है।

रुगणता :– प्राचीन काल में लोग रुगणता को मानव शरीर में जैविकी। कुसमंजन पर आधारित थी परन्तु आज रोग का सम्बन्ध मात्र जैविकीय स्थितियों एवं शरीर विज्ञान तक ही सीमित नहीं रह गया है। वरन् सामाजिक पर्यावरण, सामाजिक सम्बन्ध व सांस्कृतिक परिवेश तथा मनोवृत्तियों स्थितियों से भी इसका कारण माना जाने लगा है। Park and Park ने इन रोगों को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।

(1) संक्रामक रोग
(2) चिर रोग
(3) मानसिक रोग

रोग फैलने के कारण एवं प्रकार

- **जन्मजात रोग उपार्जित रोग**
- **संक्रामक रोग असंक्रामक रोग**

अतः इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि रोग जन्मजात हो या उपार्जित रोग, चाहे वह रोग छोटे से छोटे हो व्यक्ति को कभी भी लापरवाही नहीं करना चाहिये। स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिये।

स्वच्छता:–स्वच्छता मनुष्य के जीवन में अत्यधिक जरूरी है, क्योंकि अगर व्यक्ति के आस–पास उसका पर्यावरण स्वच्छ है तो व्यक्ति विकास की ओर उन्मुख होगा और रोग उससे कोश दूर रहेगा।

इसलिए हमें ध्यान देना चाहिए

(1) जल स्वच्छता
(2) वायु स्वच्छता
(3) मकान की स्वच्छता
(4) मल कूड़े की निकास की व्यवस्था
(5) अन्य सभी पर ध्यान देना जिससे स्वच्छता बना रहें।

अतः हमें अपने जीवन भर स्वच्छता का पालन करना चाहिये और दूसरे अज्ञान व्यक्ति, परिवार, समूह, समुदाय को भी इस काम तथा ज्ञान से अवगत करना चाहिए जिससे एक स्वच्छ समाज का निर्माण हो सके।

2.10 अभ्यास प्रश्न

1. स्वास्थ्य क्या है? परिभाषा तथा अवधारण का उल्लेख करें ?
2. स्वास्थ्य की समाज में भूमिका क्या है ?
3. स्वास्थ्य का क्या उद्देश्य है ?
4. स्वास्थ्य का विषय क्षेत्र का वर्णन विस्तार पूर्वक करें ?
5. स्वास्थ्य शिक्षा का प्रसार एवं संचार के माध्यम का वर्णन करें ?
6. रुगणता क्या है ?
7. रुगणता से पड़ने वाले बुरे प्रभावों का वर्णन करें ?
8. संक्रामक तथा असंक्रामक में क्या अन्तर है ?
9. संक्रामक रोगों के नियन्त्रण एवं उन्मूलन में जन–सहभागिता का वर्णन करें ?
10. संक्रामक तथा असंक्रामक रोगों के रोकथाम में प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक उत्तरदायित्व का वर्णन करें ?
11. स्वच्छता क्या है तथा इसके बारे में विस्तार से पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करें ?
12. चिकित्सीय समाज कार्य में समाज कार्यकर्ता द्वारा प्रयोग प्रविधि तथा पद्धति का विस्तार से वर्णन करें ?

2.9 परिभाषित शब्दावली

लक्ष्य	–	Aim			
उद्देश्य	–	Objectives	संस्कृति	–	Culture
स्वच्छता	–	Hygiune	नकारना	–	Neglected
मूल्यांकन	–	Evolution	सन्तुष्टि	–	Satisfaction
दर्शन	–	Philosophy	मूल	–	Basic
सेवा	–	Service	आवश्यकताये	–	Need

संक्षेप	–	Brief	सुधार	–	Improve
उल्लेख	–	Description	तर्क	–	Idea
प्रणाली	–	System	उन्नति	–	Promotion
विभिन्नता	–	Various	शारीरिक	–	Physical
पहचान	–	Identifying	मानसिक	–	Mental
हस्तक्षेप	–	Intervation	सामाजिक	–	Social
वितरण	–	Delivery	महत्त्वपूर्ण	–	Essentials
सामान्य	–	Common	जागरूकता	–	Aweremess

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) नारायणन् सुधा ''जन स्वास्थ्य व परिवार कल्याण'' 2004 प्रकाशन – साहित्य प्रकाशन
(2) वर्मा ऊषा 'स्वास्थ्य विज्ञान' 1986
(3) Park and Park. Preventive Medicine 2003
(4) संगीता तेज "Social work"
(5) आधुनिक असमान्य मनोविज्ञान डी.डी.एन. श्रीवास्तव साहित्य प्रकाशन, आगरा संस्करण आठवॉ संस्करण–1994–1995
(6) असमान्य मनोविज्ञान लेखक–डा0 एच के कपिल ,हर प्रसाद, भार्गव संस्करण प्रथम संस्करण 1984।
(7) डा0 गिरिश कुमार : समाज कार्य के क्षेत्र विनोद चन्द पाण्डेय, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ 1996

इकाई –3

चिकित्सकीय समाज कार्य– अभ्यास
Medical Social Work Practice

इकाई की रूपरेखा

3.1 परिचय
3.2 उद्देश्य
3.3 चिकित्सकीय समाज कार्य और समाज कार्यकर्ता
3.3.1 परिभाषा एवं अर्थ
3.3.2 चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता
3.3.3 चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता के कार्य
3.3.4 भारत में चिकित्सकीय समाज कार्य का इतिहास
3.4 चिकित्सालयों एवं स्वास्थ्य–कल्याण केन्द्रों में सामाजिक कार्यकर्ता के प्रकार्य
3.5 चिकित्सकीय समाज कार्य की अभ्यास एवं विभिन्न बन्दोबस्त
3.5.1 बहिरंग विभाग
3.5.2 संघन चिकित्सा इकाई
3.5.6 साधारण चिकित्सालय
3.5.7 सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका
3.6 सामुदायीक स्वास्थ्य के क्षेत्र में समस्याओं का सामना
3.7 चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता द्वारा सामना करने वाली समस्यायें
3.8 परिभाषित शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 परिचय

चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य का विश्वास है कि जीवन समग्रता प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि उसे सम्पूर्ण सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर मिले। परन्तु यह तभी सम्भव है जब अन्य व्यक्ति उसकी सहायता करें। अन्यथा कोई व्यक्ति मात्र अपने व्यक्तिगत प्रयासों से जीवन के सभी पक्षों व क्षेत्रों में सफल जीवन यापन नहीं कर सकता। स्वास्थ्य मानव जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है जिसके बिना कोई व्यक्ति अन्य क्षेत्रों में कोई उपलब्धि नहीं कर सकता, क्योंकि एक

रोग ग्रस्त्र व्यक्ति अशक्त होता है और अन्य लोगों से सहायता की अपेछा करता है। निर्धन रोगियों की सेवा के सिद्वान्त के आधार पर चिकित्सालयों की स्थापना हुई जो आज के आधुनिक स्वरूप तक विकसित हो चुके है। इसी प्रकार बहिरंग रोगियों की सहायतार्थ निदानशालायें व औषधालय की स्थापना की गयी।

हमारे समाज में प्राचीन काल से ही पीड़ितों व रोगियों की सहायता व सेवा का प्रचलन रहा है और हर व्यक्ति एक दूसरे की सेवा करना अपना उत्तरदायित्व समझता रहा है। परम्परागत समाज सेवी मानवता के आधार पर आश्रम विद्यालय, चिकित्सालय आदि के माध्यम से जनसाधारण की सेवा करते है। इतिहास के पन्नों से स्पष्ट है कि भारतीय समाज में सेवा व सहायता प्रदान करने की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है, विशेषकर रुग्णता विपन्नता, अपंगता, निराश्रिता की स्थिति में सहायता करना हर व्यक्ति अपना धर्म समझता या वर्तमान युग में सहायता प्रदान करने का आधार मानवतावादी दृष्टिकोण बन गया। पहले एक मानव के नाते सक्षम व्यक्ति दूसरे की सेवा करना अपना उत्तरदायित्व समझता था परन्तु सामाजिक परिवर्तन के साथ साथ इस दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया। स्वास्थ्य के विकास, रोग निवारण व उपचार के क्षेत्रों में समाज कार्य की प्रणालियों व तकनीकों के उपयोग को ही चिकित्सकीय समाज कार्य की संज्ञा दी जाती है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः–

- चिकित्सकीय समाज कार्य की अवधारणा स्पष्ट रुप से समझ सकेंगे।
- चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की अवधारणा तथा अर्थ को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका तथा कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
- भारत में चिकित्सकीय समाज कार्य के इतिहास की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- चिकित्सकीय समाज कार्य के अभ्यास के विभिन्न क्षेत्रों की व्याख्या कर सकेंगे।
- सामुदायीक स्वास्थ्य तथा उसमें चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

3.3 चिकित्सकीय समाज कार्य की परिभाषा

चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य की एक विशिष्ठता है। स्वास्थ्य की आधुनिक अवधारणा की मान्यता के पूर्व यह सर्वमान्य विश्वास था कि औषधि अथवा शल्य चिकित्सा ही रुग्णता का एक मात्र और अन्तिम उपचार है। परन्तु वैज्ञानिक प्रगति, आयु विज्ञान में वृद्धि, समाज कार्य व अन्य सामाजिक विज्ञानों के विकास के फलस्वरूप यह तथ्य

सामने आ गया कि रोगी के रूप में व्यक्ति की रुग्णता में निम्नलिखित दो पहलुओं का समावेश होता हैः–

(i) निरोधात्मक तथा उपचारात्मक पक्ष

(ii) शारीरिक तथा सामाजिक पक्ष

स्वास्थ्य के मानसीक, सामाजिक व शारीरिक तीन महत्वपूर्ण पक्षों में विश्वास के साथ यह सर्वमान्य हो चुका है। कि रोगी के स्वास्थ्य सुधार में औषधि का जितना महत्व है, उतना ही महत्व उसकी मानसीक व सामाजिक स्थितियों का भी है। इसी मान्यता के साथ चिकित्सा के क्षेत्र में समाज कार्य की अभ्यास के क्षेत्र की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है।

विभिन्न विद्वानों ने चिकित्सकीय समाज कार्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है।**प्रोफेसर राजा राम शास्त्री के अनुसारः–**''चिकित्सकीय समाज कार्य का मुख्य ध्येय यह होता है कि वह चिकित्सकीय सहूलियतों का उपयोग रोगियों के लिए अधिकाधिक फलप्रद एवं सरल बनाये तथा चिकित्सा में बाधक मनोसामाजिक दशाओं का निराकरण करें।''**प्रोफेसर एच.एस. पाठक के अनुसारः–**चिकित्सकीय रोगियों को सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है, जो सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण उपलब्ध चिकित्सकीय सेवाओं का प्रभावी रूप से उपयोग करने में असमर्थ होते है।

अमेरिका के सामाजिक कार्यकर्ता राष्ट्रीय संघ ने चिकित्सकीय समाज कार्य को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया हैः''चिकित्सकीय समाज कार्य स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय देखरेख के क्षेत्र में समाज कार्य की पद्धतियों एवं दर्शन का उपयोग एवं स्वीकारण है। चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य के ज्ञान तथा पद्धतियों के उन पक्षों का वर्गित व विस्तृत उपयोग करता है जो स्वास्थ्य व चिकित्सा सम्बन्धों समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों की सहायतार्थ विशिष्ठ रूप से उपयुकत होते है।''उपयुक्त परिभाषाओं के विश्लेषण एवं समाकलन के आधार पर चिकित्सकीय समाज कार्य को निम्नलिखित शब्दो में स्पष्ट किया जा सकता है।

''चिकित्सकीय समाज कार्य, समाज कार्य तकनीकों का ऐसा व्यावसायिक उपचारात्मक अभ्यास है जिसके द्वारा रोगियों को उपलब्ध निवारक, निदानात्मक एवं उपचारात्मक सुविधाओं के अधिकतम उपयोग द्वारा उपयुक्त रूप से समायोजित सामाजिक प्राणी बनाने के लिए उसे मनो सामाजिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने हेतु, सहायता प्रदान की जाती है।

किसी भी व्यक्ति के स्वास्थ्य के तीन पक्ष होते है।

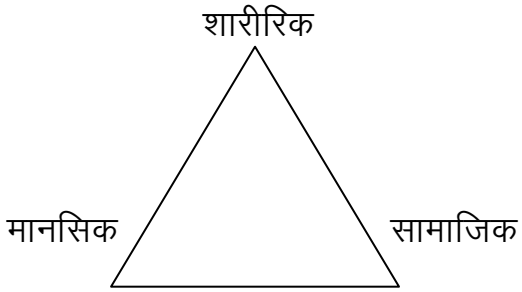

चिकित्सकीय समाज कार्य व्यक्ति के सामाजिक पक्ष से सम्बन्धित होता है। कुछ ऐसी मनोसामाजिक समस्याएं होती है जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। उनके निराकरण में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की अहम भूमिका होती है।

चिकित्सकीय समाज कार्य का अर्थः—चिकित्सकीय समाज कार्य ऐसे रोगियो को सहायता प्रदान करने से सम्बन्धित है जो मनो—सामाजिक अवरोधो के कारण चिकित्सकीय सेवाओं को प्रभावी रूप से उपयोग करने में असमर्थ होते है। उपयुक्त चिकित्सकीय सेवाओं के उपरान्त भी कुछ रोगियों में समुचित प्रगति नहीं होती क्योंकि कभी—कभी रोगग्रस्त्र व्यक्ति को चिकित्सालय द्वारा प्राप्त आकर्षण, प्यार एवं सुरक्षा से उसकी मानसीक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है, फलस्वरूप कुछ रोगी उपचार के बाद भी चिकित्सालय से जाना नहीं चाहते जबकि कुछ अन्य रोगियों की आर्थिक व घरेलू चिन्ता उपचार को विपरीत रूप से प्रभावित करती है।

कभी—कभी अज्ञानता व अभिज्ञता के कारण रोगी शल्य चिकित्सा या लगातार उपचार करवाने से भयभीत होते है। इसी प्रकार परिवार व बच्चों की देखरेख की चिन्ता में कई रोगी चिकित्सालय में भर्ती नहीं होना चाहते। रोग भिन्न—भिन्न रोगियों को उनकी सामाजिक परिस्थितियों व व्यक्तित्व के आधार पर भिन्न—भिन्न रूप से प्रभावित करता है। ऐसे रोगियो की सहायता क्रम में उनके व्यक्तित्व, सामाजिक परिस्थिति, उपचार व रोग के प्रति उनकी भावना एवं मनोवृत्ति को समझना आवश्यक होता है। रोगग्रसता के कारण सामाजिक सम्बन्धों व सामंजस्य के क्षेत्र में भी समस्याओं उत्पन्न हो जाती है। कुछ रोगी परिवर्तित शारीरिक व सामाजिक परिस्थितियों के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने में सक्षम होते है परन्तु कुछ अन्य रोगियों को सहायता की आवश्यकता होती है। रोगियों को सहायता प्रदान करने में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उनके साथ अपने वृत्तिक सम्बन्धों, मानवीय व्यवहार सम्बन्धी अपने ज्ञान रग्णता की स्थिति में लोगों को के व्यवहार के ज्ञान तथा व्यक्ति, उनके परिवार एवं समुदाय में उपलब्ध संसाधनों का सामुचित उपयोग करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगियों को

सहायता प्रदान करने के सन्दर्भ में अपने वैयक्तिक सेवा कार्य सम्बन्धी ज्ञान, निपुणता तथा अन्य अभिकरणों की सेवाओं का उपयोग करता है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ताः—किसी भी रोगी व्यक्ति के स्वास्थ्य सुधार में औषधि तथा उपचार का जितना महत्व है, उतना ही महत्व रोगी के मानसिक स्थिति का भी है।

अतः मानसिक स्थिति का सुधार, रोग निराकरण में अत्यन्त आवश्यक है। इस मान्यता के फलस्वरूप चिकित्सा के क्षेत्र में समाज सेवको की आवश्यकता का अनुभव किया गया। किसी भी रोग का सम्बन्ध शारीरिक पहलू के अतिरिक्त रोगी के भावनात्मक पहलू से भी होता है। अतः इस स्तर पर चिकित्सा के क्षेत्र में समाज—सेवकों की भूमिका आरम्भ होती है इस प्रकार चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का कार्य उन बाधाओं को दूर करना होता है। जो व्यक्ति को स्वस्थ्य रहने में बाधा उत्पन्न करती है। किसी भी अस्पताल में या रोगी व्यक्ति के जीवन में एक चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका अहम् होती है। क्योंकि जिस प्रकार हास्पिटल में एक नर्स की भूमिका होती है उसका कार्य होता है, रोगी की देखभाल करना उसे दबा देना, उसकी पूरी दिनचर्या डाक्टर को बताना, इसी प्रकार पैथोलॉजिस्ट के विश्लेषण के आधार पर ही डाक्टर मरीज का इलाज करता है। ठीक उसी प्रकार अस्पताल में एक चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका भी अहम् होती है। क्योंकि वो मरीज के सामाजिक पक्ष को देखते है। इस पक्ष को छोड़कर कोई भी व्यक्ति कभी स्वस्थ्य नहीं रह सकता।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के कार्यः—चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का प्राथमिक कार्य रोग्रस्ता के कारण उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु वैयक्तिक सेवा कार्य के अभ्यास द्वारा रोगी की सहायता प्रदान करना है।

इसके अतिरिक्त अन्य कार्य निम्नलिखित हैः

(i) अभिकरण को नीति निर्धारण एवं कार्यक्रम नियोजन में सहभागिता प्रदान करनाः—व्यक्तिगत रोगियों की सहायता करने के अनुभवों तथा अपने मस्तिक ज्ञान के द्वारा चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अभिकरण द्वारा प्रदत्त सेवाओं की कमियों, नीतियों एवं विधियों में परियोजन की आवश्यता को समझने का प्रयास करता है। क्योंकि इनकी जानकारी प्रभावी सेवा प्रदान करने के लिए अनिवार्य होती है। सामाजिक कार्यकर्ता अपने ज्ञान व अनुभवों से उपचार दल के अन्य सदस्यों को भी अवगत कराता है।

समुदाय में लोगों की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं से सम्बन्धित तथ्यों के संकलन की विश्लेषण तथा उनके उपयोग द्वारा चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता

अभिकरणों की इस प्रकार सहायता करता है कि वह लोगो को समुचित स्वास्थ्य सेवा प्रदान कर सके ताकि लोग अपने स्वास्थ्य की प्रगति व उसे बनायें रखने के लिए अपेक्षित सेवा प्राप्त कर सकें। वह सामाजिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी अभिकरणों द्वारा प्रद्वत्त सेवाओं के उत्तम उपभोग हेतु उपलब्ध सेवाओं का समन्वय व समाकलन करके समुदाय की सहायता करता है।

(ii) शैक्षणिक कार्यक्रमों में सहभागी होनाः—चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अपने व्यावहारिक कार्य सम्बन्धी अनुभवों व निरीक्षण द्वारा समाज कार्य के प्रशिक्षतियों को उचित निर्देशन भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त वह चिकित्सक, परिचारिका, सार्वजनिक स्वास्थ्य परिचारिका, भौतिक उपचारक, व्यावसायिक उपचारक मनोवैज्ञानिक आदि कन्तिक छात्र—प्रशिक्षण कार्यक्रमों में योगदान देने की दिशा में रोग व उसके उपचार से सम्बन्ध सामाजिक—संवेगात्मक एवं पर्यावरणीय कारकों के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करता है।

(iii) समाज कार्य अनुसन्धान में सहयोग देनाः—चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता चिकित्सकीय समाज से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध विषयों पर शोध कार्य तो करता ही है साथ ही अन्य कन्तिक चिकित्सकीय विशेषज्ञों का अपने अपने क्षेत्रों में शोध कार्य करने में सहयोग प्रदान करता है। सामाजिक कार्यकर्ता रोग के मनोसामाजिक व शारीरिक पक्षों और इनसे सम्बन्धित कारको के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए शोध कार्य करके समाजकार्य ज्ञान में वृद्धि करने का प्रयास करता है तथा अर्जित ज्ञान व अनुभवों का उपचार दल के अन्य विशेषज्ञों के साथ आदान प्रदान करता है।

(iv) परामर्श एवं निर्देशन सेवा प्रदान करनाः—चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता, उपचार दल के अन्य वृत्तिक सदस्यों को रोगी के सामाजिक व व्यक्तिगत कारकों सम्बन्धी जानकारी प्रदान करने में एक विशेषज्ञ के रूप में परामर्श देता है।

(v) रोगी के सभी पक्ष पर ध्यान देनाः—चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता मरीज के पारिवारिक, सामाजिक और संवेगात्मक पक्ष पर ध्यान देता हे। वो देखता है कि ये पक्ष किस तरह रोगी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहे है। सामाजिक कार्यकर्ता बिमारी के अनुसार ही रोगी की साक्षात्कार करता है और उसे जल्दी ठीक होने के लिए जागरूक करते है।

3.3 चिकित्सालयों एवं स्वास्थ्य कल्याण केन्द्र में सामाजिक कार्यकर्ताके प्रकार्य

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का प्राथमिक कार्य रोगग्रस्ता के कारण उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु वैयक्तिक सेवा कार्य के अभ्यास द्वारा रोगी की सहायत प्रदान करना है।

(1) **रोगी की सामाजिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का पता लगाना–** चिकित्सक का कार्य रोगी के उपचार तक सीमित होता है। वह रोगी की उस सामाजिक तथा मानसिक पृष्ठभूमि के कारको को ज्ञात नहीं कर पाता जिनका रोगी के साथ प्रभावपूर्ण सम्बन्ध होता है। अतः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता इस कार्य में डॉक्टर की सहायता करता है और रोगी की मानसिक तथा सामाजिक स्थिति को ज्ञात कर बिमारी के उपचार को अधिक सुगम बना देता है।

(ii) **रोगी को व्यक्तिगत मानसिक दबावों से मुक्त करनाः– डॉ0 हेनरी रिचार्डसन के अनुसार–** ''चिकित्सकीय समाज कार्य का मुख्य लक्ष्य रोगी को उन दबावों से मुक्त करना है जो उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोण के कारण विकसित होता है।''

डॉ0 मार्गोलिस के अनुसार– ''रोगी की चिकित्सा के एक व्यवस्थित कार्यक्रम के लिए चिकित्सा सामाजिक कार्यकर्ता के साथ सहयोग आवश्यक है। वह रोगी कि सामाजिक, पारिवारिक तथा आर्थिक दशा का स्पष्टीकरण करता है। अतः रोगी के उपचार के लिए, चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त उपयोगी है।''

(iii) **रोग के मनोसामाजिक कारको का पता लगाना–**अनेक रोग मनोसामाजिक कारणों से उत्पन्न होते है, किन्तु आरम्भ में उनके मनो सामाजिक रूप का पता नहीं चलता। ऐसी रोगी के सही निदान के लिए व्यक्तित्व का अध्ययन आवश्यक होता है। जिसमें चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की अहम् भूमिका होती है। चिकित्सा शास्त्र के ज्ञाता, शारीरिक लक्षणों की व्याख्या करते है। लेकिन मनोसामाजिक कारकों का पता लगाना, उनका निवारण करना एक चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का कार्य होता है।

(iv) **रोगी को समस्या के समाधान के योग्य बनाना–** सामाजिक कार्यकर्ता रोगी को अपनी आवश्यकताओं को समझने तथा समस्या के सन्तोषप्रद समाधान के लिए अपनी क्षमताओं का उपयोग करने में बनाता है। साथ ही साथ एक चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता जागरूकता के रूप में रोगी को रोग से लड़ने के लिए प्रेरित करता है। ताकि वो अपनी बिमारी से लड़ सके। और बीमारी से निजात पाने में अपनी सहायता स्वयं कर सके। कभी–कभी जो लम्बी अवधि की बीमारियों (टी.बी., कुष्ठरोग इत्यादि) से ग्रसित रोगी होते है, वो स्वयं को समाज से अलग समझ लेते है। और अनेक गलत धारणाओं के बोझ से स्वयं को दमित कर लेते है। सामाजिक कार्यकर्ता इनकी गलत धारणाओं को दूर कर उन्हें स्वस्थ्य होने के लिए, समाज में पुनः समायोजित होने के लिए प्रेरित करता है।

(v) उपचार कार्य में सहायता–जब रोगी चिकित्सालय में आता है तो सामाजिक कार्यकर्ता रोग के विषय में उसको जानकारी प्रदान करता है। रोग के कारणों पर प्रकाश डालता है तथा रोकथाम व उपचार के उपायों को बताता हे। कि किन–किन तरीकों द्वारा रोग से बचा जा सकता है। सामाजिक कार्यकर्ता सन्तुलित आहार तथा पोषण के विषय में भी रोगी को शिक्षा देता है। इसके अतिरिक्त कार्यकर्ता साक्षात्कार तथा गृह सम्पर्क द्वारा रोग तथा रोगी के विषय में सूचनायेंएकत्र करता है। चिकित्सक को इन कारकों से अवगत कराता है। इसके अतिरिक्त रोगी के अहं को रद करता है। रोगी को अस्वास्थ्यकारी कारकों से अवगत कराता है तथा स्वास्थ्य आदतों के महत्व को समझते हुए उपचार में सहायता करता है।

उपचार कार्य में कार्यकर्ता निम्नलिखित कार्य करता है–

1. साक्षात्कार तथा गृह सम्पर्क द्वारा रोग तथा रोगी के विषय में सूचनाएं एकत्र करना।
2. सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों का अध्ययन करना जो रोग के उपचार में बाधक है।
3. चिकित्सक से इन कारको के महत्व स्पष्ट करना।
4. रोगी तथा चिकित्सक के मध्य मधुर तथा प्रगाढ़ तथा उद्देश्य पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।
5. रोगी के अहं को दृढ़ करना।
6. रोगी को उचित निर्देशन तथा सलाह देना।
7. मनोरंजनात्मक क्रियाओं को सम्पन्न करना।
8. अस्वस्थकारी कारको को बतलाना।
9. स्वास्थ आदतों के महत्व को समझना।
10. रोगी से भविष्य की योजना के विषय में वार्तालाप करना।

कार्यकर्ता को इन कार्यो को सम्पन्न करने में तथा रोगियों की स्वीकृति प्राप्त करने में विशेष में कठिनाई नहीं होती क्योंकि उसको यह ज्ञान होता है कि व्यक्ति के व्यवहार में कहाँ और कैसे परिवर्तन आता है। किस प्रकार से किसी विशेष परिस्थिति का सामना करना होता है।

(vi) रोगी के पुनर्स्थापन तथा सामाजिक समायोजन में सहायता करना–बहुत से रोग ऐसे होते हे जो रोगी को एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति अपनाने के लिए बाध्य करते है। उदाहरण के तौर पर क्षय रोगी को, कुष्ठ रोगी को एक विशेष प्रकार का जीवन यापन करना पड़ता है। शारीरिक रूप से विकलांग रोगी भी एक प्रकार से नयी जीवन पद्धति अपनाते है। ये रोगी स्वयं को समाज से प्रथक कर लेते है। इन

रोगियों के लिए पुर्नस्थापना की आवश्यकता होती है। इस पुर्नस्थापना में सामाजिक कार्यकर्ता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अपने ज्ञान व निपूणता द्वारा रोगी व्यक्ति को आशावादी बनाता है। साथ ही उनके परिवार को पुनः उनसे जोड़ने में सहायता करता है। ऐसे रोगियों के प्रति समाज एवं परिवार में जो गलत कान्तियाँ होती है, कार्यकर्ता उन्हें दूर कर रोगी व्यक्ति के पुर्नस्थापन तथा समायोजन में सहायता करता है।

सामाजिक कार्यकर्ता पुनर्स्थापन में निम्नलिखित कार्य करता है–

1. रोगी किसी भी नये कार्य को आसानी से अपनाने के लिए तैयार नहीं होता है। व्यवसायिक प्रशिक्षण के लिए भी यह आवश्यक नहीं की वह तैयार हो जाय। कार्यकर्ता रोगी को उसकी समस्या का स्पष्टीकरण करके व्यवसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बेला देता है तथा उसका सहयोग ग्रहण करता है।
2. साक्षात्कार के द्वारा कार्यकर्ता यह पता लगाता है कि रोगियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण कि आवश्यकता होती है।
3. वह रोगियों की कमियों तथा शक्तियों का पता लगाता है।
4. वह उसकी सांवेगिक क्षमता कापता लगाकर निश्चित करता है कि वह किस कार्य को करने में समर्थ है।
5. रोगी की व्यक्तिगत समस्याओं से अवगत होना।
6. रोगी कि चिन्ता तथा पारिवारिक एवं सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान रखता है।
7. आर्थिक सहायता के लिए अनेक सामाजिक कल्याणकारी संस्थाओं संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।

रोगी के सामाजिक समायोजन कि समस्या की एक महत्वपूर्ण समस्या है। अनेक रोगियो जितना कपर रोग से होता है। शायद उससे ज्यादा परिवार तथा समाज से होता है। यही कारण है कि समाज तथा सहयोग रोगी मनुष्य के उपचार के लिए आवश्यक है। कर्ता अपने ज्ञान तथा निपुणता से रोगी के व्यवहार का पता लगाता है और उसकी समस्या का समाधान करता है।

(vii) रोगी की रोकथाम–यह कहावत है कि ''उपचार से रोकथाम अच्छा होता है।'' व्यक्ति को ऐसे अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है। जिनका कारण प्रायः वे स्वयं होता है। उपाय के लिए चेचक का होना व्यक्ति की अज्ञानता तथा अन्ध विश्वास का द्योतक होता है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगो के कारणों को स्पष्ट करता है। विभिन्न उपकरणों के माध्यम से लोगो को रोगों के रोकथाम को जानकारी देता है।

व्यक्तिगत तथा पारिवारिक स्वास्थ्य सिद्धान्तों को बताता है। रोग का प्रारम्भिक निदान करता है। उभरते हुए रोगों के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करता है।

1. रोगों के कारणों को स्पष्ट करता है।
2. सामाजिक कारक किस प्रकार रोग उत्पन्न करते है। बड़ाते है तथा रोगी को कष्ट पहुंचाते है। स्वयं करता है।
3. विभिन्न उपकरणों के माध्यम से लोगो के रोकथाम की जानकारी देता है।
4. पारिवारिक तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य सिद्धान्तों को बताता है।
5. जल का शुद्धिकरण करता है। रोग का प्रारम्भिक निदान करता है।
6. उभरते रोग के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करता है।
7. आवश्यकता पड़ने पर उच्च अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करता है।

(viii) स्वास्थ्योन्नति सम्बन्धी सेवाये–चिकित्सकीय समाजिक कार्यकर्ता में 'स्वास्थ्य शिक्षा' का प्रसार करता है। विद्यालयी स्वास्थ्य शिक्षा का प्रबन्ध करता है। ताकि बच्चों को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षायें प्रदान की जा सके। साथ समाज में व्याप्त जो भ्रान्तियाँ एवं रोग के प्रति अन्धविश्वास होता है। उन्हें दूर करता है। लोगो को वास्तविकता से परिचित कराता है। नये–नये कार्यक्रमों के लिए अनुसंधान करता है तथा लोगो को इनमें अवगत कराता है तथा लोग स्वास्थ्य सेवायें से लाभन्वित हो सके।

कार्यकर्ता स्वास्थ्य उन्नति के निम्न उपाय करता हैः–

1. स्वास्थ्य शिक्षा का प्रसार करता है।
2. विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा का प्रबन्ध करता है।
3. रोग के प्रति अंध विश्वासो को दूर करता है।
4. मनोरंजनात्मक सेवाएँ प्रदान करता है। सामुदायिक नियोजन में भाग लेता है।
5. महिला एवं बाल कल्याण सेवाओं के उचित उपयोग में सहायता करता है।
6. गाँव की सफाई सम्बन्धी कार्यक्रम बनाता है। नये–नये कार्यक्रमों के लिए अनुसंधान करता है।

उपर्युक्त कार्यो का अवलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है। कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सफल बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह उन सभी उपायो को अपने व्यवहार में लाता है। जिनका सम्बन्ध सामाजिक पर्यावरण से होता है। वह अपने कार्यो में सम्बन्धों को आधार बनाता है परन्तु खेद है कि भारत में अभी कार्यकर्ता के उपयोगिता को ऑका नहीं जा सकता है। यही इनकी (कार्यकर्ता) की सेवाओं उचित उपयोग किया जाय तो स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या का अन्त हो जायेगा।

(ix) **परिवार नियोजन के लिए प्रेरित करनाः–** कार्यकर्ता, सामाजिक मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक कारक जो परिवार नियोजन के तरीकों को अपनाने में बाधा उत्पन्न करते है, उन्हें दूर करता है। वह लोगो को व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करता है, जिससे कि व्यक्ति परिवार नियोजन के महत्व को समझने में समर्थ होते है। लोगो परिवार नियोजन के कार्यक्रम से अवगत कराता है। नवीन कानूनों का ज्ञान देता है। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता **अवेनर** की भूमिका का निवेदन करते हुए दम्पत्तियों को परिवार नियोजन के तरीको को अपनाने के लिए प्रेरित करता है जिससे वो सन्तुष्ट होते है और सीमित परिवार की अवधारणा का महत्व समझते है। **एण्डवोकेट** के रूप में कार्यकर्ता परिवार नियोजन कार्यक्रम का प्रभावशाली ढ़ग से प्रचार करता है। साथ ही साथ **मीडीयेटर** के रूप में कार्यकर्ता परिवार के सदस्यों को परिवार नियोजन तरीकों को अपनाने के लिए सहमत करता है तथा पति–पत्नी के बीच समझौता कराने में मदद करता है। इस प्रकार अपने कार्यो के निष्पादन में कार्यकर्ता अनेक भूमिकाओं का निवेदन करता है।

(x) **मध्यस्थ के रूप में कार्यकर्ताः**–सामाजिक कार्यकर्ता डाक्टर और मरीज के बीच में कड़ी का कार्य करता है। मरीज की जो सामाजिक एवं मानसिक समस्यायें होती है। जिनको डाक्टर नहीं जानता, उनसे डाक्टर को अवगत कराता है तथा साथ ही डाक्टर द्वारा दिये गये सुझावों को मरीज को समझता है ताकि वो दिये हुये निदेर्शो का सही ढंग से पालन कर सके और जल्द ठीक हो सके। इस प्रकार कई बार कई सारे पहलू अनहुये रह जाते है जिससे कि डाक्टर रोग के सही कारण को नहीं जान पाता और कभी–कभी मरीज भी लापरवाही एवं अन्ध विश्वासो के कारण पूर्ण रूप से इलाज में सर्तकता नहीं निभा पाता कार्यकर्ता इन स्थितियों में डाक्टर एवं मरीज की सहायता करता है और दोनो के बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापन में एक कड़ी का कार्य करता है।

(xi) **स्थिति प्रदर्शक के रूप में कार्यकर्ताः–** सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के लिये पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। वह रोगी को बताता है कि किन नियमों का पालन करके अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनाये रख सकता है। साथ ही साथ एक स्थिति प्रदर्शक के रूप में कार्यकर्ता डाक्टर को मरीज की सामाजिक एवं मानसिक स्थिति से परिचित कराता है। जिसके द्वारा ही रोगी का प्रभावपूर्ण ढंग से इलाज सम्भव हो पाता है।

(xii) **परिवर्तक के रूप में कार्यकर्ताः**–चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता परिवर्तक का कार्य भी करता है। वह रोगी के पर्यावरण में परिवर्तन करता है। उसे सामाजिक वातावरण

में समायोजन के योग्य बनाता है। रोगी के मन में एक आशावादी दृष्टिकोण का विकास करता है। जिससे कि वो समाज में पुनः समायोजित हो पाता है।

(क) इन कार्यो के अतिरिक्त चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता रोगी के व्यक्तित्व का अध्ययन करता है। उसके विचार शक्ति, इच्छा शक्ति , का अध्ययन करता है और उसकी आशाओं, आकाक्षाओं को उत्साहित करता है। जिससे कि उसमें जल्दी ठीक होने की भावना आ सके।

(ख) चिकित्सकीय कार्यकर्ता परिवार कल्याण के साथ महिला एवं बाल कल्याण के क्षेत्र में भी कार्य करता है। महिलाओ को स्वास्थ्य के प्रति सजग करता। बच्चों में होनी वाली बीमारियाँ, उससे बचाव, टीकाकरण तथा अन्य सुविधाओं के विषय में माता पिता को अवगत कराता है ताकि लोग सरकारी द्वारा चलायी गयी योजनाओं को जान सके और उनसे लाभन्वित हो सके।

इस प्रकार हम कह सकते है कि अस्पताल में या स्वास्थ्य केन्द्र में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका अहम् होती है। किसी भी रोग के निवारण में जिस प्रकार औषधि का महत्व होता है। उतना ही चिकित्सकीय कार्यकर्ता का भी होता है। क्योंकि वे रोगी के सामाजिक पक्ष को उजागर करता है। प्रायः देखा जाता है कि अस्पताल में कार्यकर्ता ,रोगी के नाम करने, आहार बॉटने, विभिन्न विभागों में भेजने और अस्पताल सम्बन्धी कुछ ऊपरी जानकारियों को बाटने, कागज पत्रों की खानापूर्ति करने आदि में ही लगे रहते है। परन्तु चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की यह वास्तविक कार्य नही होता है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का वास्तविक कार्य रोगियों और उनके परिवारों की सामाजिक एवं मानसिक समस्याओं को सुलझाना रोगी के समुचित इलाज, देखभाल तथा पुर्नवासन की व्यवस्था में मदद करना, चिकित्सक को रोगी के विषय में पूरी जानकारी देना। इसके अतिरिक्त समुदाय में उपलब्ध सेवाओं का भरपूर उपयोग और उनके विकास की व्यवस्था इस प्रकार से करना चाहियें, कि रोगी का रोग दूर हो, रोगो का प्रसार रूके तथा रोगियो को ठीक होने पर आर्थिक तथा मनो–सामाजिक स्वास्थ्य वातावरण मिल सके। इसके अतिरिक्त चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता डाक्टर और रोगी के बीच कड़ी का कार्य करता है। यदि ये कड़ी न होते रोगी के रोग का उपचार ठीक प्रकार से नहीं किया जा सकता। क्योंकि ये व्यक्ति के स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण पक्ष–सामाजिक पक्ष को उजागर करता है। व्यक्ति की शारीरिक समस्याओं के साथ उसके सामाजिक समस्याओं का निराकरण उसे स्वास्थ्य बनाने में तथा समाज में पुर्नस्थापना एवं परिवार में समायोजन करने में सहायता प्रदान करता है।

3.4 चिकित्सकीय समाज कार्य की अभ्यास एवं विभिन्न बन्दोस्त

चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत कार्यकर्ता रोगी की रग्ण्ता और उसके कारण उत्पन्न सामाजिक मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन, निदान एवं उपचार में सहायता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में एक अनूठी इकाई केरूप में होता है, उसकी मनो–सामाजिक स्थितियों, पर्यावरण, मनोवृत्तियाँ भावनाएँ, शारीरिक गठन तथा व्यक्तित्व दूसरे से भिन्न होता है। इस कारण एक ही रोग से ग्रस्त विभिन्न व्यक्तियों के रोग के कारण और उपचार भी भिन्न होते है। अतः चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उनके अध्ययन, निदान व उपचार प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार अलग अलग प्रविधियों का उपयोग करता है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्तिगत रोगी की सहायता हेतु वैयक्ति समाजिक कार्य प्रणाली का उपयोग करता है, परन्तु जब अनेक व्यक्ति किसी एक रोग सेग्रस्त होते है तथा उनकी एक या अधिक मनो–सामाजिक समस्याएँ समान होती है तो इन समस्याओं के समाधान तथा पुनर्स्थापन की प्रक्रिया में सामूहिक सेवा कार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार रोग निवारण, स्वास्थ्यवर्धन तथा सामुदायिक स्वास्थ्य शिक्षा तथा परिवार कल्याण आदि कार्यक्रम में सामुदायिक संगठन प्रक्रिया का उपोग किया जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत समाज कार्य की प्राथमिक तीन प्रणाणियों का उपयोग अधिक महत्वपूर्ण होता है। इनके अतिरिक्त समाज कल्याण प्रशासन सामाजिक क्रियातथा समाज कार्य शोध प्रणालियों का प्रयोग भी सहायक प्रणालियों के रूप में समय–समय पर आवश्यकतानुसार किया जाना स्वाभाविक है जो निम्नलिखित है–

(i) **बहिरंग विभागः–** एक महत्वपूर्ण चिकित्सा संस्था जो रोगियो के उपचार के चिकित्सा अनुसंधान और शिक्षण (छात्रों की शिक्षा और चिकित्सको की उन्नत प्रशिक्षण) व्यावहारिक चिकित्सा और शल्य चिकित्सा, प्रसूति और बाल रोग सहित नैदानिक विषयो को विभिन्न शाखाओं के साथ संयुक्त है। (जैसे अस्पतालो और चिकित्सा संस्थनो रहे है नैदानिक निवारक कहा जाता है या क्लीनिक) का उपयोग करे, एवं निजी अस्पतालों को क्लीनिक भी कहा जाता है। नाम के लिए इलाज व निदान एक और चिकित्सा संस्थान प्रदान करता है, आधुनिक क्लीनिक के अग्रदूत औषधालय, जिन्होंने मुफ्त दवाएं वितरीत की और उन ही में सेवा की है। मानसिक स्वास्थ्य के साथ संबंध क्लीनिक, स्वास्थ्य केन्द्रो के रूप में में क्लीनिक सभी स्वास्थ्य सेवायें है कि आवश्यक माना जाता है प्रदान करते है। वे स्वतन्त्र है, जो लोग निजी देखभाल की विभिन्न प्रकार प्रदान जगह–जगह से

यात्रा की औद्योगीक और श्रम संगठनों के दबाव अनुरक्षित क्लिलिक अक्सर सदस्यों के लिए स्वतंत्र है लेकिन दूसरों को एक मामूली शुल्क चार्ज, अस्पताल क्लीनिक में फीस, आमतौर पर व्यक्ति को भुगतान करने की क्षमता पर आधारित है।

1. जो बहिरंग विभाग में अस्पताल के चिकित्सा उपचार या सलाह के लिए जुड़ा हुआ है।
2. इसकी विशिष्ठ क्षेत्रों में अधिक जगह कर्मचारी द्वारा सर्जन था चिकित्सकों और विशेषज्ञता करने के लिए चिकित्सा के छात्रों के शिक्षण में अप्रचलित।
3. एक नीजी अस्पताल या नर्सिंग होम ।
4. भारतीय जगह में जो कर रहे है व्याख्यान।
5. व्याख्यान एक नैदानिक।
6. विशेष, निर्देशन बहिंरग रोगी को।
7. नियमों द्वारा समस्या समाधान का प्रयास।

(ii) **सघन चिकित्सा इकाईः–** एक गहन देखभाल इकाई आई0 सी0 यू0 (क्रिटिकल केयर युनिट) सी0 सी0 यू (गहन चिकित्सा इकाई) या गहन उपचार इकाई (आई0टी0यू0) विशेष प्रयोग विभाग अस्पताल प्रदान कराता है कि सघन चिकित्सा दवा, कई अस्पतालो में भी दवा के कुछ विशिष्ठताओं के रूप में की जरूरत है और प्रत्येक अस्पताल के उपलब्ध संसाधनों से तय किया गहन देखभाल क्षेत्रों में किया है। पोलियो महामारी (जहाँ कई रोगियो को उपचार आवश्यक निरंतर निगरानी और वेटिलेशन) आगे में स्थापित किया सघन चिकित्सा कर्डियक में रग्णता और मृत्यु दर स्त्रोत के रूप में की (दिल के दौरा) मान्यता प्राप्त थी, इसके बाद एमआई की स्थापना में विशेष रूप से आई सी यू में हदृय की निगरानी के नियमित उपयोग करने के लिए का नेतृत्व किया। कि गोरिल्ला युद्ध के मैदान पर 40% से 2% मृत्यु दर को कम किया हालांकि यह मामला नही या युद्ध के दौरान अपने अनुभवो उसे सघन चिकित्सा की अवधारणा बनाने अस्पतालो में स्वच्छता की स्थिति के महतव के बाद में खोज के लिए नीव बनाई 1950 में पीटर सफर की अवधारणा की स्थापना की और एक गहन में हवादार देखभाल वातावरण ''उन्नत समर्थन बेहोश रोगियों जीवन'' रखते हुए सफर पहले माना जाता है।

1. समस्या समाधान के उपचार
2. आर्थिक रूप से सहायता

3. दलीय कार्य के साथ कार्य
4. परिवार के अनुसरण के द्वारा उपचार

(i) उपकरणः– एक गहन चिकित्सा कक्ष में समान्य उपकरण शामिल है यांत्रिक वेटीलेटर के लिए एक के माध्यम से सांस लेने में सहायता करने अतः श्वासनलीय ट्यूब या एक ट्रेलीमेटरी, बाहय पेसमेकर और डायलिसिस गुर्दे की समस्याओं उपकरणों के लिए निरन्तर के लिए उपकरणों की निगरानी कार्यो का शारीरिक, बेब के एक अंतः शिरा लाइनों, खिला ट्यूब ट्यूबों, चुषण पंप, नालियों और कैथेयर और व्यापक सारणी के एक ड्रग्स के इलाज के लिए मुख्यत शर्त चिकित्सकीय प्रेरित दर्दनाशक दवाओं और बेहोश करने की क्रिया प्रेरित दर्द को कम करने और संक्रमण को रोकने के माध्यमिक।

(ii) स्टाफः– मेडिकल स्टाफ आमतौर पर आंतरिक चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, संज्ञाहरण, या आपातकालीन चिकित्सा में प्रशिक्षण के साथ भी शामिल है कई नर्स विशेष प्रशिक्षण के साथ और चिकित्सकों चिकित्सक सहायकों भी स्टाफ है कि रोगियों के लिए देखभाल की निरन्तरता प्रदान की अब भाग रहे है। कर्मचारी आम तौर पर देखभाल शामिल महत्वपूर्ण विशेष रूप से प्रशिक्षित नर्सो पंजीकृत, पंजीकृत श्वसन चिकित्सक, फार्मासिस्ट नैदानिक, पोषण विशेषज्ञ, भौतिक चिकित्सा, व्यावसायिक, प्रमाणित नलिंग सहायक सामाजिक कार्यकर्ता, आई0सी0यू कमरा।

(iii) देखभाल की गुणवत्ता– उपलब्ध आकड़ो रोगियो यंत्रवत् हवादार के लिए आई0सी0यू0 की मात्रा और देखभाल की गुणवत्ता के बीच एक रिश्ता सुझाव है, चर जनसांख्यिकीय, बीमारी के बाद समायोजन के लिए गंभीरता और विशेषताओं के स्टाफ सहित आई0सी0यू द्वारा उच्च आई0सी0यू0 मात्रा के साथ सम्बन्ध किया गया था काफी कम आईसीयू और अस्पतला मृत्यु दर, नर्स अनुपात करने के लिए रोगी परिणाम निर्धारित करता है एक नर्स से 2 रोगियों का अनुपात एक मेडिकल आई0सी0यू 5:01 4:01 या अनुपात के अनुपात आमतौर पर चिकित्सा फर्श पर देखा को विरोधाभासो के लिए सिफारीश की है। इस देश से देश के लिए तथापि बदलता है आस्टेलिया में उदाहरण के लिए तथापि बदलता है आस्टेलिया में उदाहरण के लिए सबसे आई0सी0यू पर 1:1 के आधार पर कर्मचारी है

(iv) विशेष चिकित्सालय– रोग निवारण से उत्तम है अर्थात् रोगो से सुरक्षा करना रोग हो जाने के बाद उसके उपचार से अधिक उचित होता है। रोग–निवारण स्वच्छता और रोगो से रक्षा के टीको के कार्यक्रमों द्वारा सम्भव हो सकता है। यह

सब चिकित्सालय द्वारा होता है। संक्रामक रोगो से यक्ष्मा, कुष्ठरोग, यौन संक्रमित के निवारण के लिए रोग के विशेषज्ञ के द्वारा उस रोग के निवारण के लिए विशेष रूप से रोगी का इलाज किया जाता है एवं रोग विशेष के लिए भी चिकित्सालय होते है जहाँ उस रोग से सम्बन्धित इलाज किया जाता है। आदि जिनके उपचारात्मक चिकित्सा की आवश्कता होती है। इस संदर्भ में शीघ्र निदान एवं तुरन्त उपचार के सिद्धान्त को सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त है। ये सभी चिकित्सालय द्वारा होता है।

बहिरंग विभाग, सघन चिकित्सा इकाई, विशेष चिकित्सालय में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिकाः–

निवारक एवं समाज मूलक चिकित्सा के विकास एवं स्वास्थ्य की आधुनिक परिभाषा की मान्यता के फल स्वरूप समाज कार्य की उपयोगिता, महत्व तथा आवश्यता पर अधिक बल दिया जाने लगा है। आधुनिक ज्ञान के विकास से शारीरिक रोगो के अनेक मनो सामाजिक कारणो की खोज भी की जा चुकी है। जिससे स्पष्ट है कि आर्थिक कठिनाईयां, निर्धनता, रोगो व उनके आधुनिक उपचारो के सम्बन्ध में अज्ञानता, कुपोषणता, व्यक्तिगत व पर्यावरणीय अस्वच्छता असुरक्षा की भावना, उचित आदर–स्तर न पाना, अनेक सांस्कृतिक कारण धार्मिक प्रतिबन्ध प्रसारण व चरणामृत, रोग को देवी देवता का प्रकोप मानते परम्परागत उपचार, भोजन एवं अहार, जीवनयापन के तरीके, आपसी सामाजिक सम्बन्धों में विषमताएं, चिन्ता कुण्ठा आदि अनेक शारीरिक व मनोदैहिक रोगो को जन्म देते है। रोग निवारण, निदान, उपचार एवं स्वास्थ्यवर्धन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में आर्थिक, सामाजिक मनोवैज्ञानिक तथा संवेगात्मक पक्षो के अध्ययन तथा सुधार की आवश्यकता होती है। इस क्षेत्र में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण व उपयोगी है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उपचार दल का एक नैदानिक कार्यकर्ता होता है जो वृत्रिक समाज कार्य, विशेषकर वैयक्तिक सेवा कार्य के माध्यम से मानव सम्बन्धों, व्यवहारों एवं साक्षात्कार की कला में प्रशिक्षित एवं निपूर्ण होता है। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अपनी संस्था तथा समुदाय के बीच स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करता है। कार्यकर्ता रोगियों व उनके सम्बन्धियों से चिकित्सालय तथा उनके निवास पर वृत्रिक विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित करके व्यक्तिगत, पारिवारिक, आर्थिक, संवेगात्मक व स्वास्थ्य सम्बन्धी तथ्यों का संकल करता है। जिससे चिकित्सकीय अपेक्षाओं की पूर्ति होती है। इसके साथ ही कार्यकर्ता यह भी प्रयास करता है कि समुदाय में उपलब्ध साधनों का समुचित और अधिकतम उपयोग सेवार्थी द्वारा किया जा सके। कार्यकर्ता अपने वृत्रिक ज्ञान का उपयोग करके समुदाय को संक्रमाक एवं चिर रोगो से संरक्षित करने में निवारक एवं समाज मूलक

चिकित्सा के सिद्धान्तों व प्रविधों का उपयोग करता है। आधुनिक युग में सामाजिक कार्यकर्ता चिकित्सकीय दल का एक अनिवार्य व उपयोगी वृत्रिक सदस्य स्वीकार किया जाता है जो सामाजिक वृत्रिक पक्षो का विश्लेषण व परिमार्जन करने का विशेषज्ञ होता है। वह उपचार दल को सामाजिक व संवेगात्मक सूचनाएं उपलब्ध कराता है। जिनका अन्तिम निदान करने के लिए आधारभूत ताप के रूप में उपयोग होता है और उपचार प्रक्रिया में महत्वपूण होता है। सामाजिक कार्यकर्ता समय मूलक चिकित्सा को प्रभावीशाली बनाने के लिए सामाजिक उपचार प्रविधि का क्रमबद्ध रूप से प्रयोग करता है।

सामुदायिक स्वास्थ्यः—समुदाय स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए सामाजिक कार्यकर्ता समुदाय के स्वास्थ्य के उपचार के लिए समुह का निर्माण करता है और फिर समुदाय के रोगो के उपचार सामूहिक रूप से उपचार के लिए जागरूकता द्वारा, नुकड़ नाटको द्वारा एवं विज्ञापन द्वारा समुदाय के स्वास्थ्य का उपचार किया जाता है। समुदाय के उपचार के लिए सरकारी प्रयास के द्वारा स्वास्थ्य शिविर लगाया जाता है। जिससे समुदाय के स्वास्थ्य व्यवस्था को सुधारा जा सके।

भूमिकाः—

1. अचिकिरणकीय एवं बाहरी समस्या का निदान।
2. दलिय कार्य के द्वारा समस्या निदान।
3. निशुल्क स्वास्थ्य सुविधा के द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर की सहायता।
4. अभ्यास द्वारा समस्या निराकरण
5. विभिन्न सेवाये—
   (i) संसाधन सहायता
   (ii) चिकित्सकीय कार्य रोगी एवं उसके परिवार के साथ

3.5 सामुदायिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता द्वारा समस्याओ का सामना करना

चिकित्सा के क्षेत्र में मुख्य रूप से समाज कार्य की वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। इस प्रणाली के माध्यम से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता तीन स्तरों पर कार्य करता है।

1. रोगी से सम्बन्धित कार्य।
2. रोगी के परिवार व समुदाय से सम्बन्धित कार्य।
3. चिकित्सालय से सम्बन्धित कार्य।

उपर्युक्त समस्त क्षेत्रों में सेवा कार्य के दौरान वह इस बात पर में विश्वास करता है कि इनका पारस्परिक अन्तसम्बन्ध एक दूसरे का परिपूरक होता है क्योकि कभी तो रोगो

किसी व्यक्तिगत अथवा सामाजिक कारणों से विभिन्न चिकित्सको सुविधाओं से वंचित रह जाता है तो कभी रोगी पारिवारिक व सामुदायिक कारणो से रोग व उसके उपचार में अवरोध का सामना करता है तथा कभी–कभी रोगी चिकित्सालय के नियमों, कार्यकर्मो व नीतियों के कारण अपने अभिष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति में कठिनाई का एहसास करता है।

सामुदायिक स्वास्थ्य–

1. **प्राथमिक चरण–** इसके द्वारा समुदाय में समुदाय के सदस्यों के स्वास्थ्य के लिए उन्होंने जागरूक किया जाता है और नुकड़ नाटक एवं विज्ञापन के द्वारा उन्हें उनके स्वास्थ्य प्रति सचेत किया जाता है जिनसे वे अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होकर अपना स्वास्थ्य को ठीक रख सके।
2. **द्वितीयक चरण–** इसके द्वारा समुदाय की स्वास्थ्य की समस्या के निदान के लिए सामाजिक कार्यकर्ता समुदाय के अस्वस्थ्य सदस्यो का एक समुह बना कर उनके स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए उसका उपचार उनकी समस्याओं में जुड़ कर किया जाता है।
3. **तृतीयक चरण–** इसके द्वारा समुदाय के स्वास्थ्य कि सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा कराया जाता है। सरकार समुदाय के स्वास्थ्य के लिए शिविर लगाया जाता है। जिससे सरकार समुदाय के स्वास्थ्य को विशेष रूप से उसकी समस्याओं का निदान किया जाता है।

अर्थात् ऐसा देखा जाता है कि कभी–कभी रोगी, रोगी का परिवार या समुदाय तथा चिकित्सालय तीनो का जो स्वास्थ्यप्रद, संयोग रोग सुधार, विवरण है वह नहीं होता।

3.6 सार संक्षेप

हमारे समाज में प्राचीन काल से ही पीड़ितो व रोगियो की सहायता व सेवा का प्रचलन रहा है। स्वास्थ्य के विकास, रोग निवारण व उपचार के क्षेत्रो में समाज कार्य की प्रवलियो व तकनीको के उपयोग को ही चिकित्सकीय समाज कार्य की संज्ञा दी जाती है।

चिकित्सकीय समाज कार्य और समाज कार्यकर्ता

(i) परिभाषा एवं अर्थ

(ii) चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता

(iii) चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता के कार्य

चिकित्सालयों एवं स्वास्थ्य कल्याण केन्द्रो में सामाजिक कार्यकर्ता के प्रकार्य–

(i) रोगी की सामाजिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का पता लगाना।

(ii) रोगी को व्यक्तिगत मानसिक दबावो से मुक्त करना।

(iii) रोग के मनोसामाजिक कारको का पता लगाना।

(iv) रोगी को समस्या के समाधान के योग्य बनाना।

(v) उपचार्य कार्य में सहायता।

(vi) रोगी के पुनस्थार्पन तथा सामाजिक समायोजन में सहायता करना।

(vii) रोगो की रोकथाम

(viii) स्वास्थ्योन्निति सम्बन्धी सेवाये।

(ix) परिवार नियोजन के लिए प्रेरित करना।

(x) मध्यस्थ के रूप में कार्यकर्ता।

(xi) स्थिति प्रदर्शक के रूप में कार्यकर्ता

(xii) परिवर्तक के रूप में कार्यकर्ता

चिकित्सकीय समाज कार्य की अभ्यास एवं विभिन्न बन्दोबस्त

चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत कार्यकर्ता रोगी की रग्णता और उसके कारण उत्पन्न सामाजिक मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन, निदान एवं उपचार में सहायता प्रदान करता है।

(i) बहिरंग विभाग

(ii) संघन चिकित्सा इकाई

(iii) साधारण चिकित्सालय

बहिरंग विभाग संघन चिकित्सा इकाई, साधारण चिकित्सालय में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका–

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उपचार दल का एक नैदानिक कार्यकर्ता होता है जो वृत्रिक समाज कार्य, विशेषकर वैयक्तिक सेवा कार्य के माध्यम से मानव सम्बन्धो, व्यवहारों एवं साक्षात्कार की कला में प्रशिक्षित एवं निपूर्ण होता है। जिसके द्वारा सेवार्थी का उपचार करता है।

3.7 अभ्याय प्रश्न

1. चिकित्सकीय समाज कार्य में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका क्या है?
2. चिकित्सकीय समाज कार्यकर्ता के क्या कार्य है?
3. बहिरंग विभाग क्या है?
4. सघन चिकित्सा इकाई में सामाजिक कार्यकर्ता के क्या कार्य है।
5. साधारण चिकित्सालय में सामाजिक कार्य कर्ता के प्रकार्य?

3.8 पारिभाषित शब्दावली

I.C.U.	सघन चिकित्सा इकाई
O.P.D.	बहिरंग विभाग
Intensivist	संघन
Crime	अपराध
Staffed	कर्मचारी
Patient	रोगी, बिमार व्यक्ति
Out look	दृष्टिकोण
Bed ford	सामने, उपस्थित
Health	स्वास्थ्य
Comas	गहरी नींद, समूच्छा
Municipal Board	नगर पालिका
Community	समुदाय
Personality	व्यक्तित्व

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1	कुमार गिरिश	चिकित्सकीय समाज कार्य	1996	उत्तर प्रदेश (141–172) हिन्दी संस्था लखनऊ (राजश्रीपुरूषोतमदास दण्डन)
2.	मिश्रा पी0डी0	सामाजिक समूह कार्य	1977	उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ 361–363
	A.R. Wadia	History Philosophy of Social Work- Medical Social Work.	1961	Pathak Publications
	Park &Park	Social & Preventure	2011	Social and prevention Medicine

इकाई –4

चिकित्सकीय दलीय कार्य
Medical Team Work

इकाई की रूपरेखा

4.1 परिचय
4.0 उद्देश्य
4.3 चिकित्सकीय दलीय कार्य का अर्थ एवं परिभाषा
4.4 चिकित्सकीय दलीय कार्य के प्रमुख सदस्यों की भूमिका
4.5 चिकित्सकीय दलीय कार्य में सदस्यों के बीच दलीय सम्बन्ध
4.6 चिकित्सकीय दलीय कार्य के सिद्धान्त
4.7 चिकित्सकीय दलीय कार्य में आने वाली प्रमुख समस्यायें
4.8 चिकित्सकीय दलीय कार्य में व्याप्त समस्याओं के निवारण में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका
4.9 चिकित्सकीय दलीय कार्य का सारांष
4.10 पुनर्स्थापन
4.11 शारीरिक बाधितों के प्रति समुदाय व परिवार के अन्य सदस्यों की भावनाएँ तथा सामाजिक कर्ता की भूमिका
4.12 बाधितों की प्रमुख समस्यायें व आवष्यकतायें
4.12 सार संक्षेप
4.13 पारिभाषिक शब्दावली
4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 परिचय

चिकित्सा के क्षेत्र में दलीय कार्य एक कौशलपूर्ण प्रक्रिया के रुप में स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तर्गत अनेक विशेषज्ञ अपने–अपने क्षेत्र विशेष के ज्ञान, निपुणताओं एवं तकनीकों का प्रयोग करके रोगियों की मानसिक, शारीरिक व सामाजिक समस्याओं का अध्ययन, निदान व उपचार करते है। दलीय कार्य के दर्शन, सिद्धान्त एवं दस्यों के सम्बन्धों आदि पर विचार करने से पूर्व आवश्यक है कि हम दलीय कार्य के अर्थ को समझ लें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- चिकित्सकीय दलीय कार्य की अवधारणा से परिचित होंगें।
- दलीय कार्य के महत्व को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- दलीय कार्य में चिकित्सकीय कार्यकर्ता की भूमिका स्पष्ट कर पायेंगे।
- दलीय कार्य के सिद्धान्तों की व्याख्या करना सीखेंगें।
- दलीय कार्य में आने वाली समस्याओं से अवगत होगें।
- दलीय कार्य में एक सदस्य के रुप में कार्य करने में सक्षम बनेगें।

4.3 दलीय कार्य के प्रमुख सदस्यों की भूमिका

वेब्स्टर्स अन्तर्राष्ट्रीय शब्द कोष में उदृत परिभाषा के अनुसार – ''दलीय कार्य से तात्पर्य ऐसे कार्य से हे जो कई सम्बद्ध व्यक्तियों (विशेषज्ञों) द्वारा किया जाता है; सामान्यतः सभी स्पष्ट रूप से पारिभाषित कार्य को पूर्ण करते है परन्तु उनका उद्देश्य अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता के अन्तर्गत् कार्य करके सम्पूर्ण दल की क्षमता को अधिक उपयोगी बनाना होता है।''

उपयुक्त परिभाषा से दलीय कार्य का अर्थ पूर्णतयः स्पष्ट हो जाता है। दलीय कार्य के सदस्यों **(कार्यकर्ताओं)** के बीच का सम्बन्ध **प्राथमिक महत्व** का होता है। वैयक्तिक सेवा कार्य के द्वारा प्राप्त ज्ञान व अनुभवों के आधार पर ज्ञात होता है कि, **''किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दो व्यक्तियों का एक साथ कार्य करना उसके आपस के उपयुक्त व सुरक्षित सम्बन्धों पर निर्भर होता है।''**

किसी भी दलीय कार्य में सम्बन्ध का आधार प्रत्ये सदस्य **(कार्यकर्ता)** को उसके योगदान के लिए उसे आदर देने, सदस्यों को अपनी भूमिका के प्रति जागरुक रहने, दल के अन्य सदस्यों की क्षमता के उपयोग करने सम्बन्धी ज्ञान तथा सभी सदस्यों को यह अवसर प्रदान करना है कि सदस्य यह स्पष्ट कर सके कि किसी विशिष्ट सेवार्थी के साथ उसकी क्या भूमिका होगी।

दलीय कार्य को अधिक प्रभावी बनाने के लिए यह अति आवश्यक हो जाता है कि दल के सभी सदस्यों को एक–दूसरे की विशिष्टता एवं भूमिका का पूर्ण ज्ञान हो जिससे वे एक–दूसरे को सहयोग प्रदान करें।

दलीय कार्य में चिकित्सक की भूमिका :– चिकित्सक को औषधि व चिकित्सकीय पद्धतियों का ज्ञान होता है जिसके आधारपर चिकित्सक सेवार्थियों कीसमस्या का निदान करता है और उसी के आधार पर भविष्य में सेवार्थी का उपचार व देश–रेख करता है। किन्तु चिकित्सक को सेवार्थी की समस्या के निदान में सेवार्थी की मनोवृत्ति, रहन–सहन का स्तर, सामाजिक स्थिति आदि की जानकारी आवश्यकता होती है जिसे वह चिकित्सकीय दलीय कार्य में कार्यरत अन्य कार्यकर्ताओं से प्राप्त करता हैं इस प्रकार चिकित्सक का यह

दायित्व होता है कि वह अन्य पेशेवर सदस्यों का दल में उचित उपयोग करे और उनके योगदान को अनुपयुक्त न समझे। यदि चिकित्सक की तकनीकी जानकारी उसकी प्राथमिक आवश्यकता का निर्माण करती है तो वह अन्य क्षेत्रों से कुछ और सीखने में रुचि नहीं लेता है। परन्तु सामान्यतः उपचार दल के साथ सेवा प्रदान करने में चिकित्सक इस दिशा में सचेत रहता है कि वह दल के अन्य सदस्यों को अपना क्या योगदान दे सकता है। चिकित्सक में यह भी क्षमता होती है किवह उन तथ्यों का चयन कर सके जिनके बारे में वह समझता है कि उत्तम सेवा प्रदान करने के लिए अन्य विशेषज्ञों **(कार्यकर्ताओं)** को उनकी आवश्यकता है।

चिकित्सकीय दलीय कार्य में परिचारिका की भूमिका :– परिचारिकाओं (नर्स) द्वारा दलीय कार्य में सहयोग के सम्बन्ध में विचार चिकित्सकों से थोड़ा अलग होता है। इनमें व्यक्तिगत स्तर पर मानवीय ज्ञान के स्तर में भिन्नता होती है, क्योंकि प्रशिक्षण के दौरान मानवीय ज्ञान के आदान–प्रदान एवं व्यक्तिगत रुचि में भी अन्तर होता है। एक नर्स चिकित्सालय में सेवार्थी को काफी समय तक एक नियन्त्रित पर्यावरण में देखती है। वह सेवार्थी का व्यवहार, प्रतिक्रिया उनके व परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति सेवार्थी की मनोवृत्ति व प्रतिक्रिया आदि पर दृष्टि रखती है। इसके अतिरिक्त वह उपचार को लीकर सेवार्थी की धारणा व प्रतिक्रिया और परिवार के सदस्यों की सेवार्थी (रोगी) के चिकित्सालय में भर्ती होने के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया का भी गम्भीरतापूर्वक अवलोकन करती है।

इस प्रकार परिचारिका उपचार दल के सदस्यों को (चिकित्सकों को) ऐसे तथ्य उपलब्ध कराती है जो व्यक्तिगत सेवार्थी एवं उसके परिवार को उपयोगी जानकारी प्रदान करता है।

चिकित्सकीय दलीय कार्य में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिकाः– सामाजिक कार्य कर्ता की पृष्ठभूमि एवं व्यक्तिगत मनोवृत्तियों में अन्य सदस्यों की भाँति ही अन्तर होता है। सामाजिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध रोगियों (सेवार्थियों) के साथ वस्तुनिष्ठ होता है। सामाजिक कार्यकर्ता की औपचारिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण उसकी चेतना, मनोवृत्तियों तथा अन्य व्यक्तियों इसके अतिरिक्त स्वयं के सन्दर्भ में मानवीय व्यवहार को समझने में सहायता प्रदान करता है।

सामाजिक कार्यकर्ता को शिक्षण–प्रशिक्षण के दौरान ऐसा ज्ञान प्रदान किया जाता है कि वह सेवार्थियों एवं अन्य लोगों की मनोवृत्तियों एवं उनकी क्रियाओं में भिन्नता को स्वीकार कर सके। सेवार्थी के साथ सामाजिक कार्यकर्ता की कार्य विधि उसके प्रशिक्षण एवं मानवीय ज्ञान पर निर्भर करती है। सामाजिक कार्यकर्ता उपचार दली के अन्य सदस्यों को भी मानवीय व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करता रहता है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता उपचार दल का ऐसा सदस्य होता है जिसे सामुदायिक साधनों का ज्ञान होता है वह जानता है कि, 'सेवार्थी की आवश्यकता की पूर्ति के लिए समुदाय में कौन–कौन से साधन उपलब्ध है और उनकी प्राप्ति हेतु सामुदायिक अभिकरणों के साथ किस प्रकार कार्य करने व सम्पर्क बनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त **चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता दलीय कार्य में निम्नलिखित प्रकार से सहायता प्रदान करता है:–**

(1) चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता विशेषकर सेवार्थी एवं उसके परिवार के सदस्यों में रोग से सम्बन्धित चेतना एवं संवेदनशीलता विकसित करता है।

(2) सामाजिक कार्यकर्ता रोग से सम्बन्धित सामाजिक व संवेगात्मक पक्षों के प्रति सेवार्थी एवं सेवार्थी सम्बन्धियों को जागरूक करता है और उनमें ऐसी योग्यता विकसित करता है कि वह इन पक्षों का मूल्यांकन रोग के सन्दर्भ में कर सके।

(3) सामाजिक कार्यकर्ता अपनी विशिष्ट योग्यता एवं क्षमता से चिकित्सा के क्षेत्र में आने वाली समस्या का निदान करता है तथा उपचार दल के अन्य व्यवसायिक सदस्यों की विशिष्ट सेवाओं के अन्तर्गत आने वाले बिन्दुओं के प्रति जागरुक रखने का प्रयास रखता है।

(4) चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता अपने अन्दर साक्षात्कार की ऐसी निपुणता विकसित करता हे जिसकी सहायता से वह सामाजिक समस्या का निदान करता है।

(5) सामाजिक कार्यकर्ता परिचारिका द्वारा उपलब्ध किये गये तथ्यों का अत्यधिक उपयोग करता है।

इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि चिकित्सकीय दलीय कार्य के सभी सदस्य दलीय कार्य के अन्तर्गत निर्धारित भूमिका को कार्यान्वित करने में एक–दूसरे के साथ अपने विशिष्ट पेशेवर ज्ञान का आदान–प्रदान करते है। दल का प्रत्येक सदस्य समय–समय पर अपनी पेशेवर विशिष्टता, निपुणता, ज्ञान एवं अनुभवों से अन्य सदस्यों को अवगत कराने के लिए अपना प्रयास करता है। सामान्यतः दल के सभी सदस्य विशिष्ट सेवार्थी के सन्दर्भ में आपस में विचार–विमर्श करते है।

4.4 चिकित्सकीय दलीय कार्य में सदस्यों के बीच दलीय सम्बन्ध

चिकित्सकीय देखभाल का प्रमुख उद्देश्य सेवार्थी को स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति कराना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक विधियाँ जैसे– भौतिक उपचार, परिचर्या, आहार विज्ञान चिकित्सकीय समाज कार्य आदि उपलब्ध होती है तथा इन विधियों का एक समूह प्रयोग के लिए विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्तियों का एक समूह बनाया जाता है जो एक दल के रुप में कार्य करते है। चूँकि किसी चिकित्सालय में चिकित्सकीय सेवा प्रमुख एवं

प्राथमिक सेवा होती है। किन्तु अन्य विधियों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं चिकित्सकीय देखरेख के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य होती है। अतः यह आवश्यक होता है कि दलीय कार्य के सभी सदस्य एक दूसरे के पेशेवर ज्ञान का सम्मान करें एवं अपने–अपने दायित्वों से भली–भाँति परिचित होकर कुशलतापूर्वक दायित्व का निर्वहन करें।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता में दल के एक सदस्य के रूप में कार्य करने का आवश्यक ज्ञान एवं निपुणता होनी चाहिए। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि अन्य सदस्यों की क्या भूमिकाएँ है और वह अपनी भूमिका से किस तरह उन्हें अवगत करा सकता है। चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता में यह भी निपुणता होनी चाहिए कि वह अपनी सेवाओं को संस्था द्वारा प्रदान की जा रही सभी सेवाओं के साथ समायोजित कर सके।

4.5 चिकित्सकीय दलीय कार्य के सिद्धान्त

चिकित्सकीय दलीय कार्य को अधिक उपयोगी एवं प्रभावपूर्ण बनाने के उद्देश्य से कुछ सिद्धान्त विकसित किए गए है जिसका प्रयोग यदि चिकित्सकीय दलीय कार्य के सदस्य करते है तो निश्चय ही उनका उद्देश्य अधिक प्रभावशाली ढ़ग से पूर्ण होगा। इन सिद्धान्तों के अध्ययन एवं प्रयोग से चिकित्सकीय दल के सदस्य एक–दूसरे का विश्वास प्राप्त कर अपने निर्णय से दल को नवीन ऊर्जा से ओत–प्रोत कर देगें।

चिकित्सकीय दलीय कार्य के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैः–

(अ) **सहयोगिता का सिद्धान्त–** दलीय कार्य सहयोग के आधार पर की जाने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न पेशेवर के साथ मिलकर सहयोगपूर्ण ढ़ग से चिकित्सकीय उद्देश्य की दिशा में अपना–अपना दायित्व का निर्वाह करते हुए एक–दूसरे की कार्यक्षमता के समुचित अभ्यास के लिए मार्ग प्रशस्त करते है तथा अपने–अपने कार्य विशेष के विशिष्ट ज्ञान का इस प्रकार आदान–प्रदान करते है कि सम्पूर्ण दल की क्षमता व प्रकार्यात्मकता में समग्र रूप से विकास हो ताकि सेवार्थी को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सकें।

इस प्रकार से स्पष्ट होत है कि चिकित्सकीय दली कार्य की सफलता का आधार समुचित सहयोगित होती है।

उदाहरण : यदि किसी सेवार्थी की समस्या का स्वरूप इस प्रकार है कि उसके समाधान में दो या दो से अधिक क्षेत्रों के विशेषज्ञों की भूमिका आवश्यक है तो इन विशेषज्ञों में सहयोगिता की स्थिति में ही सेवार्थी का समुचित उपचार सम्भव होगा।

(ब) **आदर्श संचार का सिद्धान्त–** चिकित्सकीय दलीय कार्य में दल के सदस्यों के मध्य प्रभावशाली संचार व्यवस्था होना अति आवश्यक है जिसके माध्यम से सदस्य अपने ज्ञान, निपुणता कौशल आदि को प्रभावशाली ढ़ग से एक–दूसरे के सम्मुख व्यक्त कर सकें।

उपयुक्त सिद्धान्त का अनुप्रयोग चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को निम्न प्रकार से करना चाहिएः–

(1) सामाजिक कार्यकर्ता को सरल शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। उसे समाजकार्य या मनोविकार के कठिन शब्दों का प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए।

(2) सामाजिक कार्यकर्ता को उन तथ्यों का संकलन करना चाहिए जो दल के अन्य सदस्यों के लिए उपयोगी हो तथा इन सूचनाओं का आदान–प्रदान त्वरित गति से हो सके।

(3) सामाजिक कार्यकर्ता को दल के अन्य सदस्यों को सूचित करना चाहिए कि उसके पेशे से सम्बन्धित क्रिया–कलाप क्या है।

(4) सामाजिक कार्यकर्ता को चिकित्सकीय परिस्थितियों में हो रहे परिवर्तनों तथा वैयक्तिक सेवा कार्य की प्रगति से दल के अन्य सदस्यों को सूचित करते रहना चाहिए।

(स) स्वस्थ्य दलीय कार्य सम्बन्ध का सिद्धान्त– चिकित्सकीय दलीय कार्य में दली के सदस्यों के मध्य स्वस्थ्य व स्वच्छ **(मधुर)** सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए अन्यथा कड़वाहट भरे वातावरण में दलीय कार्य की उपयोगिता एवं प्रभावशीलता धीरे–धीरे कम होती चली जायेगी।

चिकित्सकीय दलीय कार्य को स्वस्थ्य व स्वच्छ बनाने के लिए चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को समय–समय पर ऐसे कार्यक्रम भी आयोजित कराने का प्रयास करना चाहिए जिससे दल के सदस्यों के मध्य स्वच्छ सम्बन्धों का विकास सम्भव हो तथा ये कार्यक्रम **"जन स्वास्थ्य जागरूकता अभियान"** को वहन करने वाले एवं रूचिकर भी हो। इस प्रकार के सिद्धानत का प्रयोग करके चिकित्सकीय दलीय कार्य की गुणवत्ता में प्रभावी सुधार किया जा सकता है।

(द) स्वीकृति का सिद्धान्त– चिकित्सकीय दलीय कार्य में दल के सभी सदस्यों की वृत्तिक योग्यता चिकित्सकीय कार्य के लिए पूर्णतः स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए तथा उनके द्वारा किए जाने वाले चिकित्सकीय अभ्यास कार्य भी चिकित्सकीय गतिविधियों के अनुरूप ही पूर्ण स्वीकृति प्राप्त होने चाहिए। इस प्रकार से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को विशेषताः स्वीकृति प्राप्त तथ्यों एवं सूचनाओं का एकत्रीकरण (संग्रह) करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सामाजिक कार्यकर्ता को ऐसा आचरण प्रस्तुत करना चाहिए कि दल के अन्य सदस्य उसकी प्रशंसा करें एवं उसके व्यवहार को पूर्ण स्वीकृति प्रदान करें।

(य) जैविकीय प्रकृति का सिद्धान्त– व्यक्ति मात्र जीवित नहीं रहना चाहता बल्कि उसकी कुछ न कुछ जैविकीय आवश्यकताएँ होती है जो सामान्य प्रकृति अथवा अद्भुत प्रकृति की होती है। इन आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य में व्यक्ति अपना सम्पूर्ण

जीवन अर्पित करता है जिसकी पूर्ति न होने की अवस्था में व्यक्ति अनेक मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित होता है जिसके उसके जीवन में कुण्ठा एवं तनाव व्यक्त हो जाता है।

अतः चिकित्सकीय दलीय कार्य में दल के सदस्यों में विशेष रूप से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता को सेवार्थी की इस प्रकार की समस्याओं के निवारण में उचित प्रक्रिया द्वारा निदान किया जाना चाहिए। जिससे कि सेवार्थी की सामाजिक एवं शारीरिक रुग्णता को चिकित्सकीय दलीय कार्य के माध्यम से भली–भाँति दूर किया जा सके और सेवार्थी भविष्य में इस प्रकार की समस्या से पीड़ित न हो और उसके आत्मनिर्भर होने की सकारात्मक की कल्पना की जा सके।

(र) **निरन्तर उपचार का सिद्धान्त–** चिकित्सकीय दलीय कार्य में सेवार्थी की शारीरिक एवं सामाजिक समस्याओं को दूर करेन की निरन्तरता की व्यवस्था होनी चाहिए अर्थात् सेवार्थी का उपचार निरन्तर होना चाहिए ताकि उसे भविष्य पुनः इस प्रकार की समस्या पीड़ित न कर सके अन्यथा उसका चिकित्सकीय दलीय कार्य के सदस्यों के विशिष्ट ज्ञान एवं चिकित्सा–प्रक्रिया से विश्वास समाप्त हो जायेगा। सेवार्थी द्वारा अविश्वास की दशाा में दलीय कार्य का औचित्य समाप्त होने लगेगा।

उपचार दल को इस अवस्था से बचने का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का होता है अतः उसका परम कर्तव्य होता है कि वह सेवार्थियों से निश्चित समयान्तराल पर सम्पर्क करता रहे और सेवार्थी की वास्तविकता के सम्बन्ध में चिकित्सकीय दल के सदस्यों को अपनी जानकारी प्रदान करता रहे।

4.6 चिकित्सकीय दलीय कार्य में आने वाली समस्याएँ

प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होता है अतः उसके पेशेवर विशेषज्ञता में भी भिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। इसी कारण चिकित्सकीय उपचार दल में भी विभिन्न पेशेवर विशिष्टता के व्यक्ति में भी प्रमुख रूप से दो आधारों पर भिन्नता देखी जाती है–

1– सदस्यों की वैयक्तिक भिन्नता।

2– सदस्यों के व्यवसायिक प्रकृति की भिन्नता।

इसके अतिरिक्त रोगियों के व्यक्तित्व व उनके रोग से सम्बन्धित मनोसामाजिक समस्याओं, दल में सत्ता एवं प्राधिकार की अपेक्षा, दल के सदस्यों में पेशेवर प्रतिस्पर्धा, संचार सम्बन्धी कठिनाई तथा दलीय प्रशासनिक व्यवस्था आदि के कारण दलीय कार्य में अनेक समस्याएँ देखी जाती है।

उपरोक्त लिखित समस्याएँ दल के अन्दर व्यक्त होती है जो अभ्यास कार्य में निश्चित रूप से दिखाई पड़ती है जिसे हम

निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते है–

(अ) चिकित्सकीय दलीय कार्य में सेवार्थी से दल के लगभग सभी सदस्य सम्पर्क करके सेवा प्रदान करते है। जिसके कारण अनेक लोगों से सम्बन्ध स्थापन के कारण रोगी कठिनाई का आभास करता है।

(ब) यद्यपि दल का मुखिया चिकित्सक होता है परन्तु सभी सदस्य अपने–अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते है। इस कारण सभी सदस्यों का नेतृत्व चिकित्सक नहीं कर पाता है।

(स) चिकित्सकीय दल के सभी सदस्य सेवार्थी की दृष्टि अपनी विशेषज्ञता सर्वोपरि करना चाहते है इस कारण उनमें पारस्परिक द्वेश की भावना जन्म लेती है।

(द) परिस्थितियों व सत्ता को अस्वीकार करने के कारण सेवार्थी के साथ तथा आपस में समुचित वार्तालाप नहीं हो पाता है।

(य) मानवीय प्रकृति, सत्ता के अधिग्रहण, द्वेष की भावना और सभी सदस्यों के लिए वृत्तिक भिन्नता के कारण समान शब्दावली व भाषा न होने के कारण दलीय कार्य में समस्या उत्पन्न होती है।

इस प्रकार से चिकित्सकीय दलीय कार्य में अनेकों समस्याएँ उत्पन्न होती रहती है जिनका समय–समय पर निवारण करना अति आवश्यक है।

4.7 चिकित्सकीय दलीय समाज कार्य में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

ऊपर बताई गई चिकित्सकीय दलीय काय्र की समस्याओं को दल के सदस्यों के स्वयं के प्रयास से समाप्त हो सकती है विशेष रूप से चिकितसकीय दल में उपयुक्त सम्बन्ध व सहभागिता की भावना विकसित करके चिकित्सकीय दली समस्याओं के निवारण व निराकरण का उत्तरदायित्व सामाजिक कार्यकर्ता पर ही होता है। इस प्रकार हम देखते है कि "सामाजिक कार्यकर्ता एक ओर तो रोग की समस्याओं के समाधान के लिए उत्तरदायी सदस्य होता है तो दूसरी ओर दल के भीतर की समस्याओं का निराकरण करना भी उसका महत्वपूर्ण कार्य होता है"।

4.7 सार संक्षेप

किसी भी दलीय कार्य में सम्बन्ध का आधार प्रत्येक सदस्य के योग्यदान को आदर देने, समस्याओं की क्षमता के उपयोग करने सम्बन्धी ज्ञान तथा सभी सदस्यों को यह अवसर प्रदान करता है। वे स्पष्ट कर सके कि किसी विशिष्ट रोगी के साथ क्या भूमिका होनी चाहिए या होगी। परस्पर अन्य सदस्यों के विशिष्ट उत्तरदायित्व की सीमा तक होती

है। इसके सदस्यों के बीच सम्बन्ध के बीच ज्ञान वे अनुभवों के आधार पर ज्ञात होता है कि किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दो व्यक्तियों का एक साथ कार्य करना उनके आपस के उपयुक्त व सुरक्षित सम्बन्धों पर निर्भर होता है।

यहाँ यह देखना उपयुक्त प्रतीत होता है जिसके द्वारा वह रोगियों के उपचार के लिए प्रमुख सदस्यों की एक दूसरे के प्रति क्या भूमिका है।

चिकित्सक को औषधि व चिकित्सकीय ज्ञान होता है। जिसके द्वारा वह रोगियों को रूग्णता का निदान करता है और उसी के आधार पर भविष्य में रोगियों का उपचार देख रेख की जाती है। चिकित्सा सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान के अतिरिक्त चिकित्सक मानवीय भावनाओं व चेतना के सम्बन्ध में औपचारिक जानकारी प्राप्त करता है। व्यवहार व भावनाओं सम्बन्धि वह ज्ञान विस्तृत या सीमित हो सकता है। चिकित्सकीय रोगी के प्रति निर्भरता, पारिवारिक उत्तरदायित्व सहायता देने व पाने तथा विभिन्न वृत्तिक विशेषज्ञों के साथ कार्य करने की क्षमता होती है। चिकित्सक के इसी ज्ञान व क्षमता पर यह निर्भर होता है। वह अन्य वृत्तियों के सदस्यों का दल में उचित उपयोग कर सके अथवा उनके योगदान को अनुपयुक्त समझे। इस सन्दर्भ में चिकित्सक की तकनीकी जानकारी उसकी प्राथमिकता आवश्यकता का निर्माण करती है तो वह अन्य क्षेत्रों से कुछ और सीखने में रूचि नहीं लेता। परन्तु सामान्यतः उपचार दल के साथ सेवा प्रदान करने में चिकित्सक इस दिशा में सचेत रहता है कि वह दल के अन्य सदस्यों को अपना क्यों योगदान दे सकता है। उसमें यह क्षमता भी होती है कि उन तथ्यों का चयन कर सकें जिनके बारे में वह समझता है कि उत्तम सेवा प्रदान करने के सन्दर्भ में अन्य विशेषज्ञों को उनकी आवश्यकता है। चिकित्सक को रोगियों, रोगी समूह तथा दल के अन्य वृत्तिक सदस्यों के साथ अपने सम्बन्धों के संदर्भ में अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता होती है।

4.8 पुनर्स्थापन

पुनर्स्थापन किसी रोगी, अशक्त, विकलांग या बाधित व्यक्ति की विद्यमान योग्यता व क्षमता को उपयोग करने की दिशा में इस प्रकार विकसित करने की प्रक्रिया है जिससे वह अपनी योग्यता का अधिकतम उपयोग अपेक्षित कार्यो के निष्पादन में कर सके। अशक्त या विकलांग व्यक्ति के प्रति माता–पिता तथा समाज के अन्य सदस्यों की मनोवृत्ति निराशावादी होती है जिसके कारण उनमें अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएं भी उत्पन्न हो जाती है। अयोग्यता के कारण कुछ निश्चित आवश्यकताओं व इच्छाओं की पूर्ति के सन्दर्भ में व्यावसायिक कठिनाई भी उत्पन्न होती है।

शारीरिक रूप से बाधितों के स्तर का निर्धारण समाज के अनेक कारकों पर निर्भर होता है। बाधितो के प्रति सामाजिक मनोवृत्तियों सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित होती है।

भारत जैसे विकासशील देशों में शारीरिक रूप से बाधित की आवृति अशिक्षा, अज्ञानता, महामारी, कुपोषण व सुरक्षात्मक व्यवस्था की कमी आदि पर आधारित होती है। शारीरिक बाधितों के सामाजिक आर्थिक स्तर में उन्नति को **पुनर्स्थापन** की संज्ञा दी जा सकती है।

बाधिता केवल शारीरिक क्षेत्र में ही नहीं होती वरन् मानसिक व सामाजिक क्षेत्रों भी होती है। बाधिता को निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) शारीरिक बाधिता
(ख) मानसिक बाधिता
(ग) सामाजिक बाधिता
(घ) आर्थिक बाधिता

चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत उक्त समस्त प्रकार के बाधितों की पुनः स्थापना का प्रयास किया जाता है। चिकित्सा के क्षेत्र में मुख्य रूप से शारीरिक बाधितों की समस्याओं के समाधान में सहायता करते हुए कार्यकर्ता विकलांगता या बाधिता के उपरान्त शेष क्षमताओं का इस प्रकार उपयोग करने के लिए प्रेरित व मार्ग दर्शन करता है कि बाधित व्यक्ति अपने क्रिया कलापों व व्यवसाय सम्बन्धी कार्यो का अधिकतम प्रतिपादन कर सके तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके आत्मनिर्भर बन सके।

4.9 शारीरिक बाधितों के प्रति समुदाय व परिवार के अन्य सदस्यों की भावनाएँ तथा सामाजिक कर्ता की भूमिका

इस बात का अध्ययन करके उनमें परिवर्तन लाने की प्रक्रिया में कार्यकर्ता समुदाय के लोगों की बाधित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति विकास व क्रोध या घृणा की भावना को दूर करने का प्रयास करता है। कार्यकर्ता यह भी देखने का प्रयास करता है कि समुदाय के सदस्यों की भावनाएँ किन दृष्टिकोणों से प्रेरित होती है। इस दिशा में सामान्य रूप से जन साधारण की भावनाओं को प्रेरित करने वाले कारकों जैसे –मानवता, दया, श्राप या भय बाधित को पायी या अपराधी समझने की धारणा अथवा धर्म समझ कर बाधित की सहायता सम्बन्धी दृष्टिकोणों में परिमार्जन लाने का वह प्रयास करता है।

सामाजिक कार्यकर्ता को यह भी देखना पड़ता है कि वह बाधित की सहायता इस प्रकार करे कि उसमें आत्महीनता, लज्जा, उपेक्षा, उदासीनता एकांकीपन भाग्यवादिता आदि जैसे मनोवैज्ञानिक अवरोधों की उत्पत्ति न होने पाये। इसी प्रकार कार्यकर्ता को सम्पूर्ण सेवा की प्रक्रिया के दौरान सचेत रहना पड़ता है कि बाधिता के कारण सम्बन्धित सेवार्थी का सामाजिक अथवा आर्थिक पक्ष भी प्रभावित न होने पाये।

4.10 बाधितों की प्रमुख समस्यायें व आवश्यकतायें

बाधित व्यक्ति चाहता है कि उसे समाज से प्रथक न किया जाय वरन् उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाये जैसा कि समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ किया जाता

है। बाधित व्यक्ति अपनी उपयोगिता व महत्व बनाये रखना चाहता है, उसमें स्नेह व प्यार पाने की अभिलाषा होती है। वह अपेक्षा करता है कि समाज में उसकी सुरक्षा बनी रहे तथा उसे मनोरंजन, शिक्षा तथा कार्य करने का समाजन अवसर प्राप्त होता रहे तथा जीवन की समस्त परिस्थितियों से उसका समुचित रूप से सामंजस्य बना रहे।

बाधितों की पुनर्स्थापन में विशेषज्ञों का दल : किसी बाधित, विकलांग; अशक्त अथवा दीर्घ कालीन रोग या दुर्घटना के कारण उत्पन्न अक्षमता से ग्रस्त व्यक्ति न केवल शारीरिक अयोग्यता या बाधिता के क्षेत्र में पुनर्स्थापन सम्बन्धी सहायता पाने का पात्र होता वरन् सामाजिक व मनोवैज्ञानिक, संवेगात्मक तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी उससे पुनर्स्थापना व समायोजन की आवश्यकता होती है। अतः किसी भी ऐसे व्यक्ति के पुनर्स्थापन में विशेषज्ञों के एक दल की आवश्यकता होती है जिनमें सामान्य :

निम्नलिखित विशेषज्ञ प्रमुख भूमिका निभाते है :–

(1) चिकित्सक
(2) चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता
(3) मनोवैज्ञानिक
(4) भौतिक उपचारक
(5) वृत्तिक उपचारक
(6) परिचारिका (नर्स)
(7) वृत्तिक निर्देशन कर्ता व प्रशिक्षक आदि।

सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका : विशेषज्ञों के उपयुक्त दल में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता बाधित व्यक्ति के पुनर्स्थापन में अधोलिखित भूमिका का निर्वाह करता है।

शारीरिक बाधित व्यक्तियों के साथ चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका:बाधित व्यक्ति की अनेक सामाजिक, संवेगात्मक एवं आर्थिक समस्याएं होती है जिनके समाधान तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के संदर्भ में विस्तृत जानकारी प्राप्त करके मनोसामाजिक निदान करता है जिसके आधार पर वृत्तिक समाज कार्य की उपयुक्त प्रणाली, प्राविधि व सिद्धान्त का प्रयोग करके इस प्रकार सहायता प्रदान करता है कि वह पुनः समायोजित व पुनर्स्थापित होने की दिशा में अपनी शेष क्षमता का उपयोग करके सुखी व प्रतिष्ठित जीवन यापन करने में सफल हो सके। सामाजिक कार्यकर्ता अपने इस प्रयास में रोगी की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में सहायता प्रदान करता है।

बाधित के परिवार के साथ कार्यकर्ता की भूमिका :बाधित व्यक्ति अपंगता, विगलांगता अथवा अशक्तता के कारण स्वयं तो अनेक मनोसामाजिक समस्याओं से पीड़ित होता ही है

साथ ही उसके परिवार के सामने भी आर्थिक, संवेगात्मक, सामाजिक तथा अन्तसम्बन्ध सम्बन्धी विभिन्न स्वरूपों में समस्याएँ खड़ी हो जाती है। सामाजिक कार्यकर्ता बाधित व्यक्ति के परिवार का गम्भीरतापूर्वक मनोसामाजिक अध्ययन करके उसकी समस्याओं का इस प्रकार समाधान करता है कि बाधिता के कारण उत्पन्न पारिवारिक समस्याओं का निराकरण तो हो ही जाये साथ ही उसका यह भी प्रयास व उद्देश्य होता है कि बाधित व्यक्ति को परिवार में पूर्ववत् मान सम्मान व प्रतिष्ठा एवं स्तर प्राप्त हो सके तथा आपसी सम्बन्धों में किसी भी प्रकार की कटुता व दुराव न रह जायें और सभी सदस्य बाधित व्यक्ति तथा उसकी व्यक्तिगत् समस्याओं के निराकरण व समुचित समायोजन में रूचि लें।

पुनर्स्थापन दल के सदस्यों के साथ कार्यकर्ता की भूमिका : चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता शारीरिक रूप से बाधित व्यक्ति के सर्वागीण समायोजन के सन्दर्भ में केवल बाधित व उसके परिवार के साथ ही सेवा कार्य नहीं करता वरन् पुनर्स्थापन दल के अन्य सदस्यों के साथ भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस दिशा में वह बाधित व्यक्ति के पुनर्स्थापन सम्बन्धी योजना व नीतियों के क्रियान्वयन में अपने वृत्तिक व्यावहारिक व समाज कार्य के ज्ञान तथा निपुणता का प्रयोग करके दल के समस्त सदस्यों को लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में योगदान देता है। कार्यकर्ता बाधित व्यक्तियों को भली भाँति अवगत कराता है; साथ ही अन्य विशेषज्ञों के क्षेत्र की आवश्यक जानकारी प्राप्त करके बाधित व्यक्ति की सहायता करता है। कार्यकर्ता दल के सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्धों कोभी वृत्तिक परिधि में उत्तम बनाने में सहायता प्रदान करता है तथा एक दूसरे की विशिष्टताओं की उपयोगिता एवं महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। वह यह भी प्रयास करता है कि सदस्यगण एक दूसरे को महत्व देते हुए बाधित व्यक्ति के सर्वागीण समायोजन की दिशा में योगदान के लिए प्रेरित हों।

उपयुक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता बाधित व्यक्ति के सर्वागीण पुनर्स्थापन की दिशा में अन्य विशेषज्ञों के सहयोग से सक्रिय भूमिका निभाता है। सामान्यतः किसी शारीरिक रूप से व्यक्ति के पुनर्स्थापन के विभिन्न आयामों में सुधार व परिमार्जन में दल के अन्य विशेषज्ञों में सुधार व परिमार्जन में दल के अन्य विशेषज्ञों के साथ कार्य करता है। ये आयाम निम्नलिखित है :–

(1) **शारीरिक व भौतिक पुनर्स्थापन :** इस आयाम में सुधार व परिमार्जन करने का प्रमुख दायित्व चिकित्सक का होता है।

(2) **मनोवैज्ञानिक व सांवेगिक पुनर्स्थापन :** इस आयाम का प्रमुख विशेषज्ञ मनोवैज्ञानिक होता है परन्तु इससे सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का योगदान भी आवश्यक होता है।

(3) **सामाजिक पुनर्स्थापन** : पुनर्स्थापन के सामाजिक आयाम का दायित्व चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता का होता है और वह इस क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(4) **आर्थिक पुनर्स्थापन** : शारीरिक रूप से बाधित व्यक्ति के आर्थिक पुनर्स्थापन से सम्बन्धित समस्याओं के निराकरण व पुनर्स्थापन का उत्तदायित्व चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता के सहयोग सहित वृत्तिका निदेशक व उपचारक का होता है।

बाधित व्यक्ति के सन्दर्भ में समुदाय के साथ कार्यकर्ता की भूमिका : चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता बाधित व्यक्ति के पुनर्स्थापन के लिये समुदाय के संसाधनों एवं योगदान को उपलब्ध बनाने में समुदाय के साथ कार्य करता है। वह सामुदायिक सेवाओं तथा बाधित व्यक्ति की शेष क्षमताओं का मूल्यांकन व स्पष्टीकर समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत करता है और समुदाय को बाधित व्यक्ति में निहित क्षमताओं का विश्वास दिलाता है। वह समुदाय के सामने बाधित व्यक्तियों की आवश्यकताओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा बाधितों के प्रति समुदाय में विद्यमान पूर्वाग्रह एवं गलत धारणाओं को समस्त कर वास्तविकता पर आधारित सम्बन्ध स्थापन का प्रयास करता है। कार्यकर्ता अपने महत्वपूर्ण योगदान द्वारा समुदाय को प्रेरित करता है कि वह बाधित व्यक्तियों को हेय दृष्टि से न देखें तथा उन्हें पूर्ववत् आदर, मान, प्रतिष्ठा और स्तर प्रदान करते हुए सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए अवसर प्रदान करें।

4.11 सार संक्षेप

चिकित्सालय का कार्य न केवल रोग को दूर करना है बल्कि रोगी को इस योग्य बनाना है कि जिससे वह अपनी पूर्ववत् दिनचर्या का पालन कर सके। बहुत से रोग ऐसे होते है जो रोगी को एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति अपनाते हैं। इन रोगियों के लिए **पुनर्स्थापन** की आवश्यकता होती है। क्योंकि –

(1) प्रजातन्त्र का वास्तविक अर्थ सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करना।

(2) अनुसन्धानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शारीरिक रूप से अयोगय व्यक्तियों में सामान्य व्यक्तियों से अच्छा कार्य कर सकते है।

(3) सामाजिक न्याय के अनुरूप भी पुनर्स्थापन आवश्यक है।

(4) समुदाय का यह उत्तरदायित्व है कि प्रत्ये व्यक्ति को जीवन यापन की सुविधाएँ प्रदान करें।

(5) पुनर्स्थापन रोगी को प्रसन्नता प्रदान करता है तथा आत्म निर्भर बनता है।

चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता पुनर्स्थापन में निम्नलिखित कार्य करता है :

(1) रोगी किसी भी नये कार्य को आसानी से अपनाने के लिए तैयार नहीं होता है। व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए भी यह आवश्यक नहीं कि वह तैयार हो ही जाय।

कार्यकर्ता रोगी को उसकी समस्या का स्पष्टीकरण करके व्यावसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल देता है तथा उसका सहयोग ग्रहण करता है।

(2) साक्षात्कार द्वारा कार्यकर्ता यह पता लगाता है कि किन रोगियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

(3) वह रोगी कमियों तथा शक्तियों का पता लगाता है।

(4) वह उसकी सावेगिक क्षमता का पता लगाकर निश्चित करता है कि वह किस कार्य करने में समर्थ है।

(5) रोगियों के लिए व्यावसायिक निर्देशन, प्रशिक्षण तथा रोजगार की योजना बनाता है।

(6) रोगी की व्यक्तिगत समस्याओं से अवगत होता है।

(7) रोगी की चिन्ता तथा पारिवारिक एवं सामाजिक पर्यावरण का ज्ञान रखता है।

(8) प्रशिक्षण के दौरान प्रत्येक रोगी का वैयक्तिक अध्ययन करके उनकी रूचियों का पता लगाता है।

(9) आर्थिक सहायता के लिए अनेक सामाजिक कल्याणकारी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करता है।

(10) रोगी के पुनर्स्थापन होने के बाद भी खोज खबर रखता है। इत्यादि।

4.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानः–

(1) दलीय कार्य में सदस्यों के बीच का सम्बन्ध..... महत्व का होता है।

(2) दलीय कार्य में आवष्यक है कि सभी सदस्यों को एक दूसरे की..... व भूमिका का पूर्ण ज्ञान हो।

(3) चिकित्सकीय समाज कार्य के अन्तर्गत दलीय कार्य में दल का मुखिया..... होता है।

(4) दल के भीतर समस्यों का निराकरण करना भी ..... का प्रमुख कार्य होता है।

वैकल्पिकः–

(1) दलीय कार्य में स्वीकृति का सिद्धान्त है–

(क) दल के सदस्यों की आपसी स्वीकृति

(ख) रोगी द्वारा दल की स्वीकृति

(ग) दल द्वारा रोगी की स्वीकृति

(घ) दल के सदस्यों की वृत्तिक योग्यता की स्वीकृति

(2) निम्नलिखित में से कौन विषेषज्ञ चिकित्सकीय दल के सदस्य नही हैं–

(क) नर्स (परिचारिकाः / परिचारक)
(ख) आहार विज्ञानी
(ग) फिजियो थेरेपिस्ट
(घ) लेखाकार

(3) सामाजिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध रोगियों के साथ किस प्रकार का होता है?

(क) वस्तुनिष्ठ
(ख) विषयनिष्ठ
(ग) विषयपरक
(घ) संवेगात्मक

एक शब्द वाले उत्तर के प्रश्न–

(1) दलीय कार्य के अंतर्गत रोगी के व्यवहार , मनोवृत्तियों व उसकी चेतना को समझने का कार्य कौन करता है।
(2) कई सम्बद्ध विषेषज्ञों द्वारा मिलकर किसी एक उद्येष्य की पूर्ति के लिए किया जाने वाला कार्य।
(3) रोगी के आहार से सम्बन्धित जानकारी व ज्ञान रखने वाले विषेषज्ञ को क्या कहते हैं।
(4) स्वस्थ्य दलीय कार्य सम्बन्ध के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने में प्रमुख भूमिका किसकी होती है।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

(1) चिकित्सकीय दलीय कार्य के दो सिद्धान्तो का नाम लिखें।
(2) दलीय कार्य में समस्या निवारण मे सामाजिक कार्यकर्ता की कोई एक भूमिका लिखें।
(3) दलीय कार्य में चिकित्सक की भूमिका संक्षेप।
(4) चिकित्सकीय दलीय कार्य में आने वाली किन्ही दो समस्यों को लिखें।

4.12 पारिभाषिक शब्दावली

चिकित्सकीय समाज	Medical term Work
सेवार्थी एवं रोगी एवं समस्या ग्रस्त व्यक्ति	Client
सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य	Social Case Work
भूमिका	Role
जागरूक या प्रेरित करना	Motivate
परिचारिका या नर्स	Nurse

मनोवृत्ति	Attitude
भर्ती	Admit
मानवीय व्यवहार	Human Behaviour
संसाधन या साधन	Resource

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कुमार गिरीश – चिकित्सकीय समाजय कार्य।
मिश्रा पी0डी0 – सामाजिक समूह कार्य।
मिश्रा पी0डी0 – सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य।
बार्टलेट हैरिएट एम – सम अस्पेक्ट ऑफ केस वर्क इन ए मेडिकल सेंटिग।
बेनर्जी जी0आर0 – टूवाईस बेटर अन्डर स्टैन्डिग ऑफ द सिक चाइल्ड।
केनिथ के मेथ्यून – द मेन्टल एण्ड सोशल लाइफ ऑफ बेबीज।

इकाई–5

रोगी व्यक्ति की अवधारण
Concept of Sick Person

इकाई की रूपरेखा

5.1 परिचय
5.2 उद्देश्य
5.3 एक व्यक्ति की अवधारण सामान्य व्यक्ति के रुप में
5.4 स्वास्थ्य की देखभाल में रोगी के अधिकार
5.5 सामाजिक और संवेगात्मक कारकों से जुड़े विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ
5.6 राजयक्ष्मा
5.7 एड्स
5.8 कैन्सर
5.9 उच्च रक्त चाप
5.10 यौन संचारी रोग
5.11 सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका
5.12 सार संक्षेप
5.13 पारिभाषिक शब्दावली
5.14 अभ्यास प्रश्न
5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 परिचय

उत्तम स्वास्थ व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। यह अमूल्य निधि है तथा वास्तविक प्रसन्नता है यदि व्यक्ति का स्वास्थ सामान्य न हुआ तो सभी प्रकार की सुविधाएं उसके लिए निरर्थक होगी। एक रोग एक सामान्य जीव के शरीर को प्रभावित करने की स्थिति होती है। रोग आन्तरिक रूप से आक्रमण से मुक्त या तो यह अकार्य की वजह से हो सकता है या यह बाह्य कारकों जैसे– संक्रामक रोग से भी हो सकता है मनुष्यों में रोग को मौटे तौर पर देखा जाए तो किसी भी हालत में शरीर में दर्द, रोग संकट, सामाजिक समस्या या पीड़ित व्यक्ति, व्यक्ति के साथ सम्पर्क इस तरह की समस्याओं से मौत के कारणों को देखा जा सकता है।

इस प्रकार रोग मानव शरीर की वह अवस्था है जिसमें मानव शरीर के किसी प्रकार की विकृति अथवा अक्षमता आ जाती है विकृति शरीर के आन्तरिक अथवा बाह्य अंगो दोनों से सम्बंधित हो सकते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप–

- रोगी व्यक्ति की अवधारण से परिचित होगें।
- रोगी के अधिकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- विभिन्न संक्रामक एवं असंक्रामक रोगों के बारे में विस्तारपूर्वक जान सकेंगें।
- विभिन्न दीर्घकालिन बीमारियों से जुड़े सामाजिक एवं संवेगात्मक कारकों को समझ पायंगें।
- रोगी के साथ सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका को जान सकेंगें।

5.3 एक रोगो व्यक्ति की अवधारणा सामान्य व्यक्ति के रूप में

एक रोगी व्यक्ति की अवधारणा सामान्य व्यक्ति के रूप में देखा जाए तो एक सामान्य व्यक्ति स्वस्थ तभी रह सकता है जब वह सामाजिक, संवेगात्मक, आध्यात्मिक और जीवन स्तर आदि पूर्ण रूप से प्रभावित हो। उत्तम स्वास्थ व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। यह तथ्य है कि यदि व्यक्ति का स्वास्थ सामान्य न हुआ तो वह सभी प्रकार की सुविधाएं उसके लिए निरर्थक होगी। स्वास्थ व्यक्ति में जब बिमारियों से लड़ने की क्षमता समाप्त हो जाती है तो वह बिमारियों से ग्रसित हो जाता है और व्यक्ति विभिन्न बिमारियाँ से जकड़ जाता है। उसे बीमारियों से बचने के लिए उपचार करवाना पड़ता है उपचार का उद्देश्य रोगी को पूर्ण रूप से स्वस्थ बनाना है। शारीरिक रोगों के फलस्वरूप सामाजिक असमायोजन तथा मानसिक असंतुलन का होना सिद्ध हो चुका है इसी प्रकार अनेक ऐसे शारीरिक रोग है जिनके कारण सामाजिक व मानसिक परिस्थितियाँ में निहित होते है। ऐसे रोगो के समुचित निदान व सफल उपचार के लिए व्यक्तित्व, पर्यावरण व सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक होता है। रोगी के प्राकृतिक व आध्यमिक विश्वास उसकी संकल्प व इच्छा शक्ति आदि किसी सीमा स्वास्थ सुधार व उपचार को प्रभावित करते है। आधुनिक आर्युविज्ञान के विश्वास के अनुसार रोगी को उसके पर्यावरण से अलग करके नहीं ठीक किया जा सकता।दैहिक, दैवीय, भौतिक ये तीन प्रकार की बीमारी होती है। जिसमें प्रथम दैहिक, जो खान–पान, रहन–सहन, आचरण, व्यवहार आदि से उत्पन्न होता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने खान–पान को नियमित रूप से उपयोग करना चाहिए, स्वास्थ वातावरण प्रदूषण रहित में रहना आदि होना चाहिए तथा धार्मिक

प्रवृति, शुद्ध आचरण एवं शुद्ध विचार होने पर दैहिक रूप से निदान सम्भव हो जाता है। दैवीय जो अप्राकृतिक घटनाओं दैवीय शुद्ध विचार का न होना, तमागुण से युक्त होना, अनैतिक विचारधारा, अधार्मिक प्रवृत्ति की बीमारी का लक्षण आने से मनुष्य मानसिक एवं शारीरिक रूप से बीमार हो जाता है। जिसका निदान धर्म, निष्ठा, शुद्ध विचार, नैतिक आचरण, कामना, आवश्यक है।

भौतिक– दैहिक, दैवीय योग के निदान हेतु भौतिक (धन, मुद्रा) होना आवश्यक है। जिसके अभाव में दैहिक, दैवीय के निदान सम्भव नहीं है। धन के अभाव में तथा कथित रोग या बीमारी का इलाज असम्भव हो जाता है अतः भौतिक रोग से भी व्यक्ति ग्रसित होकर मानसिक, शारीरिक रोग से पीड़ित हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ रहने के लिए उपरोक्त दैहिक, दैवीय, भौतिक रोग से बचने के लिए स्वयं को शुद्ध आचरण धार्मिक प्रवृत्ति खान–पान रहन–सहन एवं धन सामग्री से युक्त होना आवश्यक है।

5.4 स्वास्थ की देखभाल में रोगी के अधिकार

एक रोगी को अपने स्वास्थ की देखभाल और स्वास्थ से जुड़े सभी सुविधाएं प्राप्त करने का अधिकार है। इसलिए लेखक हण्ट ने रोगी के अधिकार के लिए निम्नलिखित अधिकारों की चर्चा 1990 में की जिसका विवरण निम्नलिखित है :–

(1) किसी सलाह को न मानने का अधिकार।
(2) अधिकाशतः बीमारी को गुप्त रखने का अधिकार।
(3) मरने का अधिकार।
(4) किसी प्रकार की दवा को लेने से इन्कार करने का अधिकार।
(5) सहानुभूति व सम्मान सम्बन्धी अधिकार।
(6) किसी प्रकार का एक्सरे या अन्य अत्यधिक जाँच न मानने का अधिकार।
(7) लगातार देखभाल की माँग का अधिकार।
(8) किसी प्रकार का प्रश्न पूछने का अधिकार।
(9) किसी प्रकार का अभिलेख देखने का अधिकार।
(10) आकस्मिक इलाज कराने की माँग का अधिकार

ये सारे अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को अपने हित में स्वतंत्रता के सिद्धान्त के आधार पर निश्चित करने का अधिकार है। तदनुसार प्रत्ये मान को इस युग में अपने शरीर को स्वास्थ रखने का अधिकार है। कोई भी डॉक्टर रोगी के इच्छा के विरूद्ध कार्य करता है तो वह सिविल अधिकार उल्लघंन के तहत अपराध का देवतक है। जब तक कि रोगी अपनी इच्छा से इलाज नहीं कराता है।

इस प्रकार हण्ट ने रोगी के अधिकार को संक्षेप में बताया है–

(1) उपचार चुनने का अधिकार–इस प्रकार के अधिकार संघ राज्य अमेरिका में स्थापित है विधिक कानून के श्रेणी में विनियमित लैण्डमार्क विधि नियम मामले के होते हुए भी डाक्टर बिना रोगी के इच्छा के सूचना का कुछ कर भी नहीं कसता है जिसमें प्रेसी डेन्सियल कमीशन रिर्पोट के मुताबिक 59% डॉक्टर रोगी के इच्छा को अनदेखी कर देते है और भारत में रोगी के विचार को अवधारणा के रूप में विचार किया जाता है। क्योंकि रोगी अनजान, अशिक्षित, एवं गरीबी के कारण उचित एवं तर्क सहित अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर पाता है और डॉक्टर

इलाज में कम ध्यान देते है और रोगी के इलाज में चिकित्सक की जो सुविधाएं है वह साधारण आदमी को मिलना चाहिए लेकिन यह समाज के कुछ ही व्यक्ति तक सीमित हो जाता है इसलिए डॉक्टर की बाध्यता है जब तक रोगी ठीक नहीं हो जाता है तब तक रोगी का समुचित देखभाल करने का दायितव है।

(2) **अभिलेखों को देखने का अधिकार–** रोगी को यह सत्यता जानने का अधिकार है वह डॉक्टर अपने सभी मामलों में अत्यधिक जानकारी हासिल कर सके। चिकित्सक अभिलेख जैसे– एक्सरे, लैब रिर्पोट, व अन्य डाटा उसे देखना आवश्यक होता है। लेकिन डॉक्टर व अस्पताल, साधारण रोगी को अभिलेख दिखाने से मना करते है। लेकिन डॉक्टर अक्सर इस आधार पर अभिलेख देखने से मना करते है कि रोगी को भ्रम व हानि, वह तथ्यों को जानने के बाद भी हो सकता है यद्यपि अध्ययन के बाद व अन्यथा साबित होता है। अतः बाल और पिलगौन्कर (1993:190) के अनुसार रोगी को चिकित्सकीय निदान, चिकित्सकीय अवरोध और उसका परिणाम तथा अन्य सम्बन्धित मामलों को हासिल करने का अधिकार है इसलिए चिकित्सकीय अभिलेख के प्रति रोगी को प्राप्त करने का अधिकार है ताकि वह चिकित्सकीय अभिलेख के अनुसार अपने इलाज की जानकारी लेकर ठीक करने का उपाय सोचे।

(3) **प्रश्न पूछने का अधिकार–** रोगी को अपना समुचित इलाज करने का अधिकार है और उसे डॉक्टर से अपनी बीमारी के बारे में प्रश्न पूछने का भी अधिकार है। अतः रोगी को अपने बीमारी के मामलों में हर तथ्य को समझने व जानने का अधिकार कानून द्वारा प्रदत्त है।

(4) **अस्पताल में उपचार कराने का अधिकार–** रोगी को अस्पताल में उपचार कराने का भी अधिकार है। प्रत्येक डॉक्टर का अधिकार है कि वह आकस्मिक घटनाओं से ग्रसित लोगों का बिना अनदेखी किये इलाज करें। उसके अनदेखी करने पर डॉक्टर को संशोधित मोटर ट्रैफिक अधिनियम के तहत दाण्डित भी किया जा सकता है।

इसलिए डॉक्टर को बिना किसी विधिक प्रक्रिया के या किसी हिचिक के आकस्मिक घटना से त्रस्त रोगी को प्राथमिकता बतौर अस्पताल में देखभाल करने

का अधिकार है। अतः डॉक्टर को चिकित्सकीय देखभाल एवं आकस्मिक मामलों में सहायता करने से इंकार नहीं करना चाहिए। चूँकि भारत एक गरीब देश है इसलिए 'साधारण विशाल बीमा, किस्त भुगतान नहीं कर सकता है। इसलिए सरकार को यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि वह कानून के माध्यम से या चिकित्सकीय परिषद के माध्यम से बिना इलाज किये आकस्मिक दुर्घटना मामले को वापस न कर सके। डॉक्टर को सार्वजनिक फण्ड से प्रशिक्षित किया जाता है। प्रत्येक डाक्टर का नैतिक कर्त्तव्य होता है कि वह आकस्मिक दुर्घटना मामले को प्राथमिकता बतौर देखे और प्रत्येक रोगी को आकस्मिक दुर्घटना सम्बन्धी इलाज, चिकित्सकीय अधिकार के रूप में व्यवस्थित करें।

(5) **निष्कर्ष**–'प्रत्येक डॉक्टर का यह दायित्व होता है कि वह रोग की जॉच करे न कि रोगी का।'' रोगी को अपनी आवश्यकता न देखकर उसकी इच्छानुसार उसकी बीमारी को ठीक करने का दायित्व समझे। लेकिन वह रोगी के लिए दुख का कारण बनता है कि डॉक्टर इसके विरूद्ध करने का अधिकार की तरफ मुड़ जाता है। स्वास्थ की देखभाल के लिए चिकित्सकीय विज्ञान के बहुत अधिकार है जिसके परिणाम के ज्ञान का दुरूपयोग और आर्थिक लाभ पाने तक सीमित होता है यद्यपि प्रशासन में दवाईयों का उपयुक्त उपयोग बिना गिनती में किया जाता है। उनमें से कुछ लोग गैर जिम्मेदार असावधानी एवं निदेयता से डॉक्टर रोगी से अनावश्यक फीस उसके इलाज को नजर अंदाज करके चार्ज करते है। इसलिए स्वास्थ की देखभाल सम्बन्धी प्रतिष्ठा एवं चिकित्सकीय व्यवसाय अपने लाभ के लिए मन बना लेते है। इसलिए भारत में अधिकाशतः लोग अध्ययन गुणकारी चिकित्सकीय देखभाल की पहुँच से बाहर हो जाता है इसलिए अशिक्षित डॉक्टरों का कोई अधिकार नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र में 80ः जनता प्राकृतिक संसाधन इलाज को प्रथम स्थान देते है। अपेक्षाकृति वैज्ञानिक ढंग से उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत तथा कथित विभिन्नताओं एवं दुरूपयोगिता एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए रोगी को अधिकार प्रदान करता है। अतः यह तथ्य को स्वीकार्य करने से इंकार नहीं किया जा सकता है कि साधारण मनुष्य प्राथमिक स्वास्थ देखभाल से आज भी वंचित है। इसलिए स्वास्थ देखभाल की प्रणाली को बदलने की आवश्यकता है।

5.5 सामाजिक और संवेगात्मक कारको से जुड़े विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ

बीमारी शरीर के कुछ अवांछित लक्षणो की उपस्थिति मात्र ही नहीं बल्कि उन प्रक्रियाओं का गतिशील समूह है जो लक्षणो द्वारा शारीरिक विकार को उत्पन्न करता है और इसलिए व्यक्तिगत अशान्ति या व्यक्ति के भावी स्वस्थ स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता

है। विभिन्न बीमारियों में राजयक्ष्मा एड्स, कैन्सर उच्चरक्तचाप, कुष्ठ रोग, यौन संचारी रोग' है।

5.6 राजयक्ष्मा (टी0 बी0)

राजयक्ष्मा विश्व भर में पाया जाता है यह एक संक्रामक रोग है जो शिशु, बालक, वयस्क, वृद्ध, स्त्री, अथवा पुरूष सभी को समान रूप से आक्रस्ट राजयक्ष्मा से पीड़ित व्यक्तियों में सर्वाधिक रूप से पंद्रह वर्ष से पचास वर्ष के उम्र दल के लोग रहते है। यह रोग बैसीलस ट्यूबर कुलोसिस नामधारी एक जीवाणु द्वारा मानव शरीर को संक्रमित कर देने के कारण होता है। ये जीवाणु आकार में पतली सीधी अथवा थोड़ी सी मुड़ी हुई छड़ी के समान होते है। ये छोटे–छोटे अनिश्चित आकृति वाले गुच्छो में बंटे पाये जाते है। इन जीवाणुओं के दोनो सिरे कुछ मोटे हो सकते है। इनके अस्तित्व का परिचय दुनिया को सर्वप्रथम रॉबर्ट कोक नामक वैज्ञानिक ने सन् 1882 में दिया। ये जीवाणु गतिहीन तथा आक्सीजन जीवी होते है।

राजयक्ष्मा रोग के कारण– बेसीलस ट्यूबर कुलोसिस द्वारा शरीर को संक्रमित कर देने के फलस्वरूप जनित राजयक्ष्मा दो तरह से फैलता है–

(i) सीधी सम्पर्क द्वारा।

(ii) बिन्दूवाही संक्रमण प्रक्रिया द्वारा राजयक्ष्मा से पीड़ित व्यक्ति जब खॉसता है तो खॉसी के साथ उसके मुॅह से कफ या बलगम की छोटी–छोटी ऐसी बून्दे हवा में फैल जाती है। रोगी के पास खड़ा कोई व्यक्ति जब जीवाणुओं से भरी ऐसी हवा में श्वास लेता है तो इसके श्वास के द्वारा ये जीवाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते है और संक्रमित कर डालते है।

राजयक्ष्मा के लक्षण– इस रोग की यह विशेषता होती है कि आरम्भ में इसका पता ही नही लगता जब यह शरीर में पूर्ण रूप से व्याप्त हो जाता है। तो इसमें निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते है–

(1) धीरे–धीरे रोगी की भूख घट जाती है।
(2) छाती में दर्द होने लगता है।
(3) बलगम या कम के साथ रक्त भी आने लगता है।
(4) शरीर के तापक्रम में क्रमिक वृद्धि।
(5) रात्रि में अधिक पसीना निकलना।
(6) ज्वर विशेषकर संध्याकाल में बढ़ता है।
(7) खॉसी रात्रि में अधिक आना।

सामाजिक तथा संवेगात्मक कारक– राजयक्ष्मा केवल चिकित्सकीय या शारीरिक रोग नहीं है वरन् एक सामाजिक रोग भी है भारत में यक्ष्मा के निम्नलिखित सामाजिक कारको पर प्रकाश डाला गया है–

(1) मानव जीवन स्तर से रोग ग्रस्तता एवं यक्ष्मा का नियंत्रण व उपचार सम्बन्धित होता है।

(2) निर्धनता के कारण यह रोग धनी व्यक्तियों की तुलना में निर्धन व पिछड़े वर्ग में अधिक पाया जाता है।

(3) राजयक्ष्मा ग्रस्त रोगी को यह शंका और चिन्ता होती है कि उसका रोग ठीक होगा या नहीं। ऐसी चिन्ता उसके उपचार को भी कुण्टित करती है।

(4) राजयक्ष्मा रोग की दीर्घकालिक प्रकृति और इससे उत्पन्न अक्षमता शारीरिक क्षीणता एवं गिरते हुए शारीरिक स्वास्थ के कारण रोगी में असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाता है और वह अपनी स्थिति के प्रति संदिग्ध हो जाता है।

5.7 एड्स

एच0आई0वी0– ह्यूमन इम्यूनों डैफिशिन्सी वायरस एच0 आई0 वी0 विषाणु के शरीर में प्रवेश करने से एड्स होता है। एड्स– एक्वायर्ड इम्यूनो डैफिशियन्सी सिन्ड्रोम। एक्वायर्ड– दूसरे से लगने वाला रोग। इम्यूनों– शरीर से बचाव प्रणालीं डैफिशियन्सी– नष्ट होना। सिन्ड्रोम– बीमारी के लक्षणों का समूह। एच0आई0वी0 वायरस शरीर में प्रवेश करने के बाद 5–10 वर्ष तक निष्क्रिय पड़ा रहा सकता है यह वायरस धीरे–धीरे शरीर की प्राकृति सुरक्षा प्रणाली को नष्ट करता रहता है और इस दौरान शरीर में हानि करने वाले एच0 आई0 वी0 विषाणु धीरे–धीरे संख्या में बढ़ते रहते है।

एड्स कैसे फैलता है–

(1) असुरक्षित यौन सम्बन्ध अगर एच0आई0वी0 संक्रमित मनुष्य के साथ हो, चाहे यह संभोग पुरूष–पुरूष में हो, पुरूष–औरत में या अलग–अलग साथियों में।

(2) एच0 आई0 वी0 दूषित रक्त एवं रक्त उत्पाद अंग प्रत्यारोपण।

(3) दूषित सिरिन्जो एवं इंजैक्शन की सुईयां एच0आई0वी0 के फैलने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

(4) एच0आई0वी0 संक्रमित माँ से नवजात शिशु को।

एड्स रोग के लक्षण–

(1) किसी भी व्यक्ति का वजन बिना कारण एक महीने में 10 किलो तक गिर जाना।

(2) 1–2 महीने तक लगातार शरीर में बुखार का रहना, थकान आना और पसीना होना।

(3) एक महीने में ज्यादा तक दस्त होना और दवाईयों से आराम न आना।

(4) गर्दन, बगल व जाँघों की ग्रन्थियों में सूजन आना।

(5) इन सभी बिमारियों का लगातार दवाई लेने पर भी ठीक नहीं होना।

सामाजिक तथा संवेगात्मक कारक–

(1) एड्स रोगी अपने सामान्य क्रियाकलापों एवं गतिविधियो का निर्वाह करने में पूर्ण अथवा आंशिक रूप में असमर्थ हो जाता है। फलस्वरूप वह समुदाय व परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सहयोग करने के बजाय एवं उनसे सक्रिय सहयोग को अपेक्षा करता है। इस प्रकार के रोग के कारण रोगी की सामाजिक व सांवेगिक स्थिति प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है।

(2) समाज व परिवार के सदस्यों के दुरावपूर्ण व्यवहार से रोगी अपने को समाज पर बोझ समझने लगता है इसे वह पिछले जन्म के कुकमों का पाप मानता है। अपने को हीन व पापी समझने लगता है।

(3) अशिक्षा व निरक्षरता के कारण स्वास्थ के सम्बन्ध में अज्ञानता व उदासीनता होता है। रोग के निवारण, उपचार व उपचार स्थलो आदि के बारे में जानकारी की कमी के कारण रोग की आवृत्ति में वृद्धि होती है।

5.8 कैंन्सर

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 45 और 64 के बीच के उम्र के लोगो में मृत्यु के कारण के रूप में सभी रोगों के बाद कैन्सर का दूसरा नम्बर है। हमारा शरीर असंख्य कोशिकाओं का बना होता है हमारे शरीर में कोई घाव होने पर ये कोशिकाएं उसे भर देती है। एक सतह भरने के बाद यहाँ क्रम रूक जाता है लेकिन बार–बार घाव होनेपर एक समय ऐसा भी आता है कि ये कोशिकाएं घाव के भरने के बाद भी बढ़ती जाती है। इन्हीं कोशिकाओं का असामान्य रूप से बढ़ना ही कैन्सर है। कैन्सर के कई प्रकार होते है। ''कैन्सर एक ऐसा रोग है जो सभी जीवधारियों को शरीर के किसी भी भाग को प्रभावित कर सकता हैं।

कैन्सर के कारण–

(1) शराब के सेवन से श्वॉस नली, भोजन नली और तालू में कैन्सर होता है।

(2) कस कर साड़ी बॉधने पर स्त्रियों को कमर की त्वचा का कैन्सर हो सकता है।

(3) धूम्रपान या तम्बाकू चबाने या खाने से मुख का कैन्सर हो जाता है।

(4) सिगरेट, बीड़ी का सेवन करने से फेफड़े का कैन्सर हो जाता है। कुछ कैन्सर जन्मजात या आनुवांशिक भी होते है।

कैन्सर के लक्षण–

(1) शरीर के किसी भी अंग में घाव या नासूर जो न भरे।

(2) लम्बे समय से शरीर के किसी भी अंग में दर्द रहित गाँठ या सूजन।

(3) स्तनों में गाँठ होना या उल्टी और थूक में रक्त आना।
(4) आवाज में बदलाव, निगलने में दिक्कत, मलमूत्र की सामान्य आदत में परिवर्तन, लम्बे समय तक लगातार खाँसी।
(5) बिना कारण वजन घटना, कमजोरी आना या खून की कमी।

सामाजिक तथा संवेगात्मक कारक–

(1) कैन्सर रोग से ग्रस्त व्यक्ति का सामाजिक व संवेगात्मक कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है।
(2) संवेगात्मक रूप से रोगी आर्थिक चिन्ता होती है। क्योकि वह इस रोग का उपचार नहीं करवा पाता है।
(3) रोग ग्रस्तता के कारण व्यक्ति की कार्यक्षमता व स्फूर्ति क्षीण हो जाती है तथा रोगी को अपने सामान्य जीवन की आंकाक्षाओं के प्रति निराशा का आभांश करता है।
(4) पारिवारिक व सामाजिक क्रियाकलापो से वंचित तथा सम्बन्धियों के दुरावपूर्ण व्यवहार के कारण रोगी अपने आपको अक्षम और अनुपयोगी समझने लगता है।

5.9 कुष्ठ रोग

कुष्ठ रोग प्रायः विश्वभर में पाये जाने वाला एक संक्रामक रोग है। इस रोग का उल्लेख विश्व के अति प्राचीन ग्रंथो में भी मिलता है दुनिया के कुछ देशो, भारत, चीन, आइसलैण्ड नॉरवे, दक्षिणी अफ्रीका इत्यादि में इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है। यह रोग किसी को भी, किसी भी ऋतु में हो सकता है। पर यह विशेष रूप से दस बारह वर्ष से लेकर तीस–बतीस वर्ष तक के लोगों को सर्वाधिक रूप से होता है। कुष्ठ रोग माइक्रो बैक्टिरिया लेप्रा द्वारा शरीर को संक्रमित कर देने के फलस्वरूप होता है। नारवे के महान वैज्ञानिक जी0एन0 हैन्सन ने सन् 1873 में इन जीवाणुओं के आस्तित्व का पता लगाया। ये जीवाणु पतली सीधी–छड़ी के आकार के होते है। ये गतिहीन होते है तथा बहुत सी बातों में राजयक्ष्मा के जीवाणुओं के समान होते है कुष्ठ के रोगी की नाक से निकलने वाले श्लेष्मा तथा उनके घावों से निकलने वाली पीव में ये जीवाणु अगणित संख्या में विराजमान मिलते है। पर इस बात का पता अभी भी नही चल पाया है कि मानव शरीर से अलग भी इनका अस्तित्व होता है या नहीं। हैन्सनसाहब के नामक पर इन जीवाणु को हैन्सस जीवाणु भी कहा जाता हैं

रोग के कारण– माइक्रोबैक्टीरियम लेप्रा नामधारी जीवाणुओ द्वारा जनित कुष्ठ रोग का संक्रमण कुष्ठ के रोगियो द्वारा ही होता है। कुष्ठ से पीड़ित व्यक्ति की नाक से निकलने वाले श्लेष्मा में रोग के असंख्य जीवाणु वर्तमान रहते है। अतः जिस कुष्ठ से पीड़ित व्यक्ति नाक छिड़कते है उस जगह पर हवा में इन जीवाणुओ के होने की संभावना रहती है।

कुष्ठ रोग के लक्षण–

(1) रोगी के शरीर में प्रारम्भ में सफेद रंग के दास पड़ जाते है जो कि धीरे–धीरे घाव में बदल जाते है।

(2) कान और चेहरे की त्वचा पर सूजन आ जाती है तथा उनपर कुष्ठ ग्रंन्थियॉ उभर आती है।

(3) रोगी के शरीर पर गॉठे पड़ने लगती है इन गॉठों में जन जीवाणुओं की संख्या काफी बढ़ जाती है तब ये गॉठ फट जाती है और उनमें पस निकलने लगता है साथ ही साथ गॉठो के आस–पास के हिस्से गलने लगता है और वहाँ घाव हो जाता है।

(4) चेहरा आकर्षण रहित, विकृत अथवा सपाट सा दिखाई देने लगता है गले में गिल्टियॉ आवाज भारी तथा सिरदर्द आदि लक्षण दिखाई देते है।

सामाजिक तथा संवेगात्मक कारक–

(1) कुष्ठ रोग से ग्रस्त रोगी सामाजिक व सांवेगात्मक कारको का अधिक प्रभाव पड़ता है।

(2) आवास व्यक्तियों के जीवन स्तर को प्रभावित व प्रदर्शित करता है आवासी भवन में हवा, पानी आदि कुष्ठ रोग के संक्रमण को प्रभावित करते है।

(3) रोगी अपने आप को समाज पर बोझ मानकर जीवन के प्रति उदासीन हो जाता है। फलस्वरूप अपनी देख–रेख और रख–रखाव एवं आवश्यकताओं के प्रति उदासीन हो जाता है।

5.10 उच्च रक्त चाप

120/80 मि0 मी0 एजी से ऊपर का रक्तचाप, उच्च रक्तचाप या टाइपरटेन्सन कहलाता है। इसका अर्थ है धमनियों में उच्च रक्तचाप (तनाव) हैं। उच्च रक्तचाप का अर्थ यह नहीं है कि अत्यधिक भावनात्मक तनाव हो भावनात्मक तनाव व दबाव अस्थायी तौर पर रक्त के दाब को बढ़ा देता है। सामान्यतः रक्तचाप 120/80 से कम नहीं होना चाहिए और 120/80 तथा 139/89 के बीच का रक्त का दबाव पूर्व रक्तचाप कहलाता है। उच्चरक्त चाप एक बहते हुए हिमखंड की तरह बीमारी है।

उच्च रक्त चाप के कारण–

(1) चिंता, क्रोध, ईष्या, भय आदि मानसिक बीमारी।

(2) कई बार, या बार–बार आवश्यकता से अधिक खाना।

(3) नियमित खाने में रेशे, कच्चे फल और सलाद का अभाव।

(4) श्रमहीन जीवन, व्यायाम का अभाव। पेट और पेशाब सम्बन्धी पुरानी बीमारी।

उच्च रक्त चाप के लक्षण–

(1) घबराहट महसूस होना।
(2) चिन्ता।
(3) अधिक मद्यपान सेवन से रक्तचाप का बढ़नां
(4) आनुंवशिक लक्षणों का होना।

सामाजिक तथा संवेगिग कारक–

(1) इस रोग के कारण अक्षमता, शारीरिक क्षीणता एवं असुरक्षा की भावन उत्पन्न हो जाती है और वह अपनी स्थिति के प्रति संदिग्ध हो जाता है।
(2) इस रोग से ग्रस्त रोगी सामाजिक व सांवेगिक कारको से अधिक प्रभावित होता है।

5.11 यौन संचारी रोग

वर्ष 1992 से ही यौन संक्रमित रोगो पर नियंत्रण राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है राष्ट्रीय एड्स संगठन (NACO) 31 माच्र 2004 तक यौन संक्रमिक रोगो के उपचार के लिए देश में 735 क्लीनिक स्थापित कर चुका है। यौन संचारी रोग ये उन रोगाणुओं से होता है जो त्वचा पर या शरीर के तरह पदार्थो जैसे–वीर्य, यौनिक तरह पदार्थ के खून में रहते है ये रोगाणु किसी संक्रमित व्यक्ति से त्वचा, खून, या शरीर के तरल पदार्थो से यौन सम्पर्क के माध्यम से दूसरे व्यक्ति में पहुँच जाते है ये रोगाणु शरीर में योनी मुँह, गुदा और खुले घावों या छिली हुई त्वचा में दाखिल हो सकते हैं।

यौन संचारी रोग के लक्षण–

(1) पेशाब के साथ जलन।
(2) लिंग के अगले सिरे पर खुजली।
(3) त्वचा पर ददारे।
(4) स्त्रियों को पेट में दर्द।
(5) लिंग में सूजन, पुरूषों के अण्डग्रन्थियो में सूजन।

सामाजिक तथा संवेगात्मक कारक–

(1) अशिक्षा के कारण स्वास्थ के सम्बन्ध में अज्ञानता व उदासीनता होती है।
(2) यौन संचारी रोग से ग्रसित रोगी को यह शंका और चिंता होती है। कि उसका रोग ठीक होगा या नही। और ऐसी चिन्ता उसके उपचार को भी कुण्ठित करती है।

5.12 सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

सामाजिक कार्यकर्ता को निम्नलिखित सलाह देनी चाहिए–

(1) अनजान व्यक्तियों के साथ यौन सम्पर्क न रखे।
(2) रोग होने पर चिकित्सक के पास जाए एवं उचित सलाह तुरन्त लेना चाहिए।

(3) रोगी को मद्यपान नहीं करना चाहिए।
(4) कण्डोम का प्रयोग करना चाहिए।
(5) कार्यकर्ता, गलत धारणाओं व अज्ञानता के कारण या रोग के फलस्वरूप रोगी से उत्पन्न सांवेगिग व मानसिक तनाव, चिन्ता, निराशा जीवन के प्रति उदासीनता आदि करें समाप्त करने में सहायता करता है।
(6) उचित निदान और चिकित्सकीय परामर्श के अनुसार निरन्तर रोगी को उपचार दिलाने के संदर्भ में कार्यकर्ता रोगी के निकट सम्बन्धियों को प्रेरित करता है।
(7) रोगी की वास्तविकता से अवगत कराते हुए उपचार प्रक्रिया में विश्वास करने और चिकित्सकीय परामर्श का पालन करने हेतु प्रेरित करता है।

5.13 सार संक्षेप

एक रोगी व्यक्ति को सामान्य व्यक्ति के रूप में देखा जाए तो एक रोगी अपने आस–पास के वातावरण से अधिक प्रभावित होता है। जब एक स्वस्थ व्यक्ति बीमारियों का सामना करने में अयोग्य हो जाता है वह रोग से ग्रसित हो जाता है और उस रोगी व्यक्ति के जीवन स्तर और सामाजिक अध्यात्मिक, सांवेगिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ की देखभाल के लिए रोगी को अधिकार प्रदान किये गए है। रोगी की देखभाल के लिए हण्ट नामक विचारक ने रोगी की अधिकारों की चर्चा की है। जैसे– किसी सलाह को न मानने का अधिकार,सहानुभूति

व सम्मान सम्बन्धी आधिकार आदि ये सारे आधिकार प्रत्ये व्यक्ति को अपने हित में स्वतंत्रता के सिद्धान्त के आधार पर निश्चित करने का अधिकार हैं। सामाजिक तथा संवेगात्मक कारको से जुड़े विभिन्न प्रकार की बीमारियों में राजयक्ष्मा, एड्स कुष्ठ रोग आदि इस तरह की बीमारियों पर सामाजिक व सांवेगिक कारकों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसलिए रोगी व्यक्ति की सामाजिक कारकों व सांवेगिग कारको का पूर्ण सहयोग मिलना चाहिए। तभी उसे अपने बीमारी से निजात मिल सकती है।

5.14 अभ्यास प्रश्न

(1) एक रोगी की अवधारणा सामान्य व्यक्ति के रूप में किस प्रकार होनी चाहिए।
(2) स्वास्थ की देखभाल के लिए रोगी के अधिकारों की विवेचना कीजिए।
(3) राजयक्ष्मा किस प्रकार फैलता है और इसके लक्षण को बताइए?
(4) एड्स किस प्रकार फैलता है। एड्स से पीड़ित व्यक्ति के सामाजिक व संवेगात्मक कारको पर क्या प्रभाव पड़ता है?
(5) कैन्सर में सामाजिक कार्यकर्ता की क्या भूमिका होनी चाहिए?
(6) कुष्ठ रोग के लक्षण बताइए?

(7) यौन संचारी रोग कैसे फैलता है, और इसके लक्षणों का उल्लेख कीजिए?

5.14 पारिभाषिक शब्दावली

ice berg	बहते हुए हिमखण्ड	Neutrality	उदासीनता
Prescription	औषधि या डॉक्टर नुख्सा	Intervention	अवरोध; टोकना
inferiority	हीनता	Spirituality	आध्यात्मिकता
auto-immune	स्वतः प्रतिरक्षा युक्त	Hyper-tension	उच्चरक्त चाप
Deficiency	अपर्याप्तता	Invaded	आक्रान्त
Age group	आयु वर्ग	Doubtful	संदिग्ध

5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) रोग विज्ञान – ऊषा वर्मा
(2) जन–स्वास्थ एवं परिवार कल्याण– प्रो0 सुधा नारायणन्
(3) असामान्य मनोविज्ञान – डॉ0 निरूपमा दिक्षित
(4) ए लुक ऐट कैन्सर – वी0 आर खनोलकर (भारतीय कैन्सर अनुसंधान केन्द्र) पृष्ठ–87
(5) भारत–2005 प्रकाशन विभाग – सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार

ईकाई–6

शारीरिक विकलांगता
Physical Disability

इकाई की रूपरेखा

6.1 परिचय
6.2 उद्देश्य
6.3 अवधारणा
6.4 शारीरिक विकलांगता के प्रकार
6.5 विकलांगों के पुनर्वास में तकनीकी विकास की भूमिका
6.6 मूक–बाधितों के लिए नवीन उपकरण
6.7 अस्थि विकलांगों के लिए नवीन उपकरण
6.8 विकलांगों के लिए कार्य कर रही सरकारी संस्थाएँ
6.9 विकलांग एवं समाज कार्यकर्ता की भूमिका
6.10 मूक बधिर व्यक्तियों के साथ समाज कार्यकर्ता की भूमिका
6.11 शब्दावली
6.12 अभ्यास प्रश्न
6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 परिचय

विकलांगो की समस्याओं को अभी तक अच्छी तरह समझा नहीं गया है और इस दिशा में कल्याण कार्य भी बहुत कम हुआ है। विकलांगों की सामाजिक तथा मानसिक समस्याएँ भी है। जिन्हें समझना बहुत जरूरी है और इन्हें समझे बिना आवश्यक सेवाओ की वह व्यवस्था होना सम्भव नहीं है। विकलांग व्यक्ति वह है जो अपने अपने एक या अनेक अंगो के इस्तेमाल में पूर्णतः असमर्थ है अथवा उनका आंशिक उपयोग करने में ही समर्थ है। विकलांग व्यक्ति अन्य साधारण व्यक्तियों जैसा ही है, केवल विकलांगता होने के कारण ही उसकी समस्या का रूप भिन्न हो जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः–

- शारीरिक विकलांगता की अवधारण स्पष्ट रुप से समझ सकेंगे।

- इसके अन्य प्रकार– गूंगापन, बहरापन, अन्धापन, लगंड़ापन, व इनकी समस्याएँ समझ सकेंगे।
- शारीरिक विकलांग व्यक्तियों के पुनर्वास में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।

6.3 अवधारणा

विकलांगता से उत्पन्न कठिनाई को छोड़कर वह अपने सब काम साधारण व्यक्तियों की तरह ही कर सकता है। किन्तु जहाँ आँखों से काम लेने की आवश्यकता होती है वहाँ वह मजबूर हो जाता है। इसलिये अगर हम विकलांग व्यक्तियों की समस्याओं को समझे तो उनमें से समाज कल्याण सम्बन्धी अनेक समस्याओ का यो तो अस्तित्व ही नहीं रह जाता अथवा उनका कोई न कोई हल निकल आता है।

6.4 शारीरिक विकलांगता के प्रकार

नेत्रहीनों की (अन्धापन) की समस्याएं(Problem of Blind):–नेत्रहीनता के आंकड़ों का अभाव रहा है। यह कहना कि कितने व्यक्ति इससे ग्रस्त है बहुत कठिन है। सन् 1931 में नेत्रहीनों की सूचना एकत्र की गयी थी। उस समय इनकी संख्या 6,01,370 थी। केन्द्रीय सरकार ने एक विशेष समिति का गठन किया जिसने अपनी रिपोर्ट में 20 लाख नेत्रहीन की संख्या का अनुमान लगाया। सन् 1956 से 1968 तक नेशनल टूकोमा कण्ट्रोल प्रोग्राम के अनुसार भारत में 4.39 मिलियन व्यक्ति नेत्रहीन (**Blind**) थे। सन् 1976 में केन्द्रीय सरकार के रोजगार तथा प्रशिक्षण निदेशालय ने एक सर्वेक्षण किया जिसके अनुसार नेत्रहीनों (Blind) की संख्या 90 लाख बतायी गयी।

श्रवण विकलांगता (बहरापन) की समस्याएं:– बधिरता (बहरापन) के भी आकड़े उपलब्ध नहीं है। सन् 1958 में बम्बई में एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि भारत में कुल जनसंख्या का 0.7% व्यक्ति बधिर थे। फिर इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। सन् 1960 में नेशनल सैम्पुल सर्वे में बधिर व्यक्ति की संख्या 2 लाख 86 हजार थी। सन्1976 में नई दिल्ली में एक सर्वे हुआ तो बधित व्यक्तियों के पुनर्वास और शोध समिति के परियोजना निदेशक के अनुसार भारत में 15 वर्ष तक की आयु के बधिरो (Deaf) की संख्या 40 लाख के लगभग थी।

वाक विकलांगता की समस्याएं:– वाक विकलांगता (मूकता) के भी विश्वसनीय आकड़े उपलब्ध नहीं है। सन् 1958 में बम्बई महानगर में एक सर्वेक्षण किया गया था और यह पाया गया कि कुल जनसंख्या का 0.4% व्यक्ति Dumb थे। सन् 1960 में नेशनल सैम्पुल सर्वे ने बाधित व्यक्तियों के बारे में सूचना एकत्र की जिसके अनुसार Dumb की संख्या 2 लाख 44 हजार थी।

सन् 1976 में नई दिल्ली बधित व्यक्तियों के पुनर्वास और शोध समिति के परियोजना निदेशक के अनुसार भारत में 15 वर्ष तक की आयु के वाक–विकलांग (मूक) व्यक्तियों की संख्या 22 हजार थी।

(1) **अन्धापनः–** इनको इस रूप में शामिल किया जाता है जिनके दर्शन की शैक्षणिक अथवा सामान्य जीवन में कोई मान्यता नहीं होती है। केन्द्रीय शैक्षणिक सलाह समिति की सम्मिलित रिपोर्ट में 1944 में कहा गया कि अन्धा व्यक्ति वह होता है जो कि एक यार्ड की दूरी पर अंगुलियो को नहीं गिन सकता। इस रिपोर्ट के अनुसार अंधेपन के कारण निम्न हैः–

1. ऑख आना
2. ग्ल्यूकोमा
3. कुपोषण
4. छोटी चेचक
5. खराब रोशनी में किताबे पढ़ना।
6. अन्य रोग (सेक्स से सम्बन्धित रोग)

(2) **गूँगापन व बहरापनः–** भारत में बहरेपन की कोई मान्य परिभाषा नहीं है लेकिन अमेरिका में जो परिभाषा निम्न है– **''बहरे व्यक्ति वह होते है जिनकी सुनने की शक्ति सामान्य जीवन जीने के लिये क्रियाशील नहीं होती है''**

सुनने का पैमाना ऑडियो मोशन नामक साधन द्वारा नापा जाता है और डेसीबल में व्यक्त किया जाता है व्यक्ति जिनके सुनने की क्षमता 60 डेसीबल से कम होती है। वे बहरेपन की श्रेणी में आते है। बहरेपन से विकलांग श्रेणियों की दो समस्याये होती है।

1. बोलने की क्षमता न होना– सही साधन को अपनाना जिसमें बोल चाल की भाषा को समझ सकें। यह एक कठिन प्रक्रिया है जिसमें बहरा व्यक्ति हँसी, एकल स्वर, व्यंजन संयुक्त स्वर सभी मिले होते है, को समझना एक नई बोल चाल की भाषा में जिसे होठ पढ़ना के नाम से जाना जाता है।

बहरेपन के मुख्य कारणः–

1. अटिक्स मीडिया
2. एक्यूल (तीक्षण) संक्रमण रोग।
3. अपर्याप्त पोषण।
4. इरेक्टिप बुखार।
5. छोटी माता।

6. मलेरिया।
7. कठ माला का रोग।

(3) **लगड़ापनः–** ऑर्थोपेडिक भाषा में लगड़ा व्यक्ति वह है जिसकी मॉस–पेशियों, हड्डियों जोड़ो आदि में किसी भी तरह की कमी या बाधा होती है।

लगड़ेपन के कारणः–जन्मजात विकलांगता निकेटस सेरेबल, पालिसी, पोलियो और इसके अलावा लकवा हड्डियों की टीवी जोड़ो का रोग और दुर्घटना इत्यादि।

6.5 विकलांगो के पुनर्वास में तकनीकी विकास की भूमिका

भारत सहित विश्व के तमाम देशों विकलांगो के हित में तकनीकी विकास का उपयोग किया जाता रहा है। अब नये–नये प्रकार के श्रवण यंत्र श्रवण–बाधित व्यक्तियों के लिये उपलब्ध है। नेत्रहीनों के लिये ब्रेल स्लेट आदि उपलब्ध है। अस्थि विकलांगो के लिये हल्के, मजबूत और टिकाऊ कृत्रिम अंग उपलब्ध है। बढ़ते तकनीकी विकास ने ऐसे मैग्निफाइंग यंत्र बना दिये है। जो अल्प दृष्टि वालों के पढ़ने– लिखने को बहुत आसान बना रहे है।

अब ऐसे इलेक्ट्रॉनिक यंत्र आ गए है जिनकी सहायता से पूर्ण नेत्रहीन व्यक्ति भी सामान्य पुस्तके पढ़ सकता है। श्रवण–बाधित व्यक्तियों के लिये ऐसे सेलेक्टिव फिल्टर आ गए है जिनसे वे बेहतर और स्पष्ट सुन सकते है। हल्के, लचीले और टिकाऊ सामान से बने कृत्रिम अंग अस्थि विकलांग के जीवन को न सिर्फ आसान बना दे रहे है वरन् उनका इस्तेमाल करके टॉम व्हाइटकर एवरेस्ट पर चढ़ जाते है और सुधा चन्द्रन नृत्य और अभिनय की दुनिया में तहलका मचा देते है। भारत में तकनीकी विकास का उपयोग एक लम्बे अर्से से विकलांगों के हित में किया जा रहा है **1954 में देहरादून स्थित सेंटर** जो आज **एन.आई.वी.एच.** के नाम से मशहूर है, ने उपकरण बनाने प्रारम्भ कर दिये। उस समय तक इस प्रकार के उपकरण आयात किये जाते थे और वे महंगे होते थे। बाद में **ब्लाइंड्समैन एसोसियेशन, अहमदाबाद, मोक्ष इंटरपाइजेज** आदि ने भी बड़े पैमाने पर ऐसे उपकरण बनाने प्रारम्भ कर दिये।

आजादी के समय से पूना के पास किर्की नामक जगह में **आर्टिफिशियल लिम्ब सेंटर** काम कर रहा था। यहाँ अत्यन्त सीमित पैमाने पर काम होता था। जब 1971 में बांग्लादेश को आजाद कराने की लड़ाई में बड़े पैमाने पर भारतीय सैनिक घायल और विकलांग हुए तो सरकार ने बड़े पैमाने पर आधुनिक तकनीक पर आधारित कृत्रिम अंग बनाने के लिये सार्वजनिक क्षेत्र में आर्टीफिशियल लिम्ब मैनुफैक्चरिंग कारपोरेशन कानपुर में खोला। दिलचस्प बात यह है कि युद्ध को और अधिक भीषण बनाने में बड़ा हाथ रहा है। नये–नये अत्याधुनिक तकनीकों से बने हथियारों ने जहाँ मारक–क्षमता बढ़ाई वही पैमाने पर

विकलांगता को भी जन्म दिया। दूसरी ओर युद्ध ने विभिन्न देशों की सरकारी स्तर पर विकलांगो के लिये कार्य करने पर मजबूर किया ताकि युद्धरत सैनिको का मनोबल बना रहे। कानपुर स्थित एलिम्को में भी राष्ट्रीय रक्षा कोष से प्रारम्भिक पूँजी लगाई गई थी। यह कारपोरेशन केन्द्रीय सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय से सम्बद्ध है। यह पूरे देश में 150 से अधिक उपकेन्द्र चला रहा है। जहाँ कृत्रिम अंग फिट किये जाते है। इसमें हर प्रकार के अस्थित विकलांगों के लिये कैलिपर, कृत्रिम अंग व नेत्रहीनों के लिये भी कुछ उपकरण बनने लगे है।

नेत्रहीनों के लिये—नेत्रहीनों के लिये सहायक उपकरणों को विकसित करने और उनका बड़े पैमाने पर उत्पादन करवाने में देहरादून स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ विजुअली हैंडीकैप्ड हमेशा से आगे रहा हे। इस संस्थान ने विविध प्रकार के उपकरणों का विकास किया है। इनमें नेत्रहीनों के पढ़ने में काम आने वाली ब्रेल स्लेट, टेसर्ल फ्रेम, अंकगणित और बीजगणित के सवाल हल करने हेतु उपकरण सुई में धागा डालने वाला यंत्र, ब्रेल शॉर्टहैड मशीन, फिजिक्स आदि पढ़ते समय कम आनेवाले चित्र आदि शामिल है। इस संस्था ने ऐसा मिनी ब्रेलर भी विकसित किया है जिसे जेब में रखा जा सकता है।

इस संस्थान ने जहाँ नेत्रहीनों को सुविधाजनक यात्राा करने हेतु सफेद छड़ी विकसित करके दी है वहीं नेत्रहीन बुनकरों के लिये धागों का पता करने के लिये भी यंत्र विकसित कर दिखाया है उनके मनोरंजन और शारीरिक विकास के लिये अनेक खेल के सामान, जैसे क्रिकेट खेलने के लिये छोटी गेंद, फुटबाल खेलने के लिए बजने वाली गेंद, नेत्रहीनों के लिये शतरंज के बोर्ड, बेल में निशान वाले ताश के पत्ते आदि भी विकसित किये है।

इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के वैज्ञानिकों ने भी नेत्रहीनों के लिये काफी काम किया हे। बंग्लौर स्थित इस संस्थान ने स्वीच सिंथेसाइजर विकसित किया है जिसे किसी भ आई0वी0एम0 कम्प्यूटर के साथ जोड़ा जा सकता है। इससे कम्प्यूटर के मोनीटर पर आ रही सामग्री आवाज में बदल जाती है और सामने बैठा नेत्रहीन व्यक्ति उसे सुनकर काम करता चला जाता है। यह स्पीच सिंथेसाइजर अब कई कम्पनियाँ बना रही है। और आम नेत्रहीन इसे खरीद सकता है।

इसी संस्थान ने कम गति वाला कम्प्यूटरकृत ब्रेल एम्बॉसर भी विकसित किया है। इसका बड़े पैमान पर उत्पादन हिन्दुस्तान टेलीप्रिंटर द्वारा किया जा रहा है। ब्रेलशीट, जो थर्मोफोम मशीन में इस्तेमाल की जाती है, को भी अब अपने ही देश में बनाया जा रहा है। थर्मोफोम मशीन का उत्पादन अब देश में कई कम्पनियॉ कर रही है।

सरकारी क्षेत्र की कम्पनी इलेक्ट्रॉनिक कारपोरेशन ऑफ इंडिया, हैदराबाद ने ऐसा क्लोज सर्किट टी.वी. विकसित किया जो किसी भी अक्षर को 30 गुना ज्यादा विशाल बना देता है और ऐसे 50 से अधिक टी.बी. सेट कल्याण मंत्रालय द्वारा बनवाकर देश के विभिन्न भागों में लगाए गये है।

हालॉकि इस दिशा में ज्यादा काम सरकारी संस्थाओं में हुआ है, पर निजी क्षेत्र में भी अब आगे बढ़ता चला जा रहा है। हैदराबाद स्थित मोक्ष इंटरप्राईजेज ने विश्वप्रसिद्ध परकिन्स संस्थान, अमरीका की तर्ज पर ब्रेल विकसित किया। यह संस्था अब निर्यात भी कर रही है। नेशनल एसोसियोन ऑफ ब्लाइंड ने नेत्रहीनों के काम आने वाले उपकरणों का कैटालॉग (सूचीपत्र) तैयार किया है। इस सूचीपत्र में 150 से अधिक सहायक उपकरणों की विस्तृत जानकारी है। देहरादून की ही एक स्थानीय कंपनी के ब्रेल स्टीरियो टाइपर का प्रोटोटाइप विकसित किया है जिसका उपयोग जिंग शीट पर ब्रेल डॉग बनाने ओर फिर उन्हें ब्रेल कागज पर दुहराने के लिये होता है।

धीरे–धीरे सहायक उपकरणों को विकसित करने कीओर उनका उत्पादन का काम बढ़ता चला जा रहा है, फिर भी विकसित देशों के मुकाबले हम अभी सुरक्षित पीछे है। विदेशों में नेत्रहीनता को मात देने के लिये निम्न त्रिकोणीय प्रयास किये जा रहे हैः–

1. नेत्रहीनों को सामान्य पुस्तके सीधे पढ़ाने के प्रयास किये जा रहे है।
2. नेत्रहीनों की गतिशीलता बढ़ाने के लिये ऐसे उपकरण बनाए जा रहे है जिनसे नेत्रहीन सामान्य लोगों की तरह चल फिर और आ जा सकें।
3. अल्पदृष्टिवान लोगों को सामान्य लोगो की तरह पढ़ने–लिखने और कार्य करने के लिय विशालक (मैग्निफायर) यंत्र, क्लोज सर्किट वी.वी. और ओवर हैड प्रोजेक्टर आदि विकसित किये जा रहे है।

विदेशों में इलेक्ट्रॉनिक क्रांति का पूरा लाभ नेत्रहीनों को मिल रहा है। टेपरिकार्डर के आविष्कार के साथ ही नेत्रहीनों की शिक्षा और पुनर्वास का काम आसान होता चला जा रहा है। अब नेत्रहीन व्यक्ति उन टेपों के जरिये ब्रेल की अपेक्षा ज्यादा जल्दी और सुविधाजनक तरीके से हर प्रकार की जानकारी हासिल कर रहे है।

6.5.1 मूक–बाधितो के लिये नवीन उपकरण

इलेक्ट्रॉनिक क्रान्ति के साथ बधिरों के लिये निश्चित रूप से बेहतर श्रवण यंत्रों का विकास हुआ है। साथ में श्रवणहीनता की जॉच आदि करने के लिये भी बेहतर ऑडियो मीटर आदि का विकास किया गया है।बेहतर इलेक्ट्रानिक्स के प्रयोग ने श्रवण यंत्र, जो दरअसल ध्वनि–विस्तारक है, को और अधिक उपयोगी बना दिना है। इसी प्रकार मूल–बधिरो के लिये स्कूलों में बोलना और श्रवण यंत्र लगाकर ज्यादा से ज्यादा सुनना

सीखने के लिए भी यंत्र इस्तेमाल किये जा रहे है। अब ऐसे यंत्र भी आ गए है जो क्लास रूम में एक साथ सभी उपस्थित बच्चों के कानों में लगा दिये जाते है और शिक्षक जो बोलता है वह सभी श्रवणहीन छात्र सुन पाते है।

आज भारत में श्रवणहीन बालको की पहचान करने के लिये ऑडियोमीटर उपलब्ध है। उन बालको की गहराई से ताँच करने के लिये भी विशेष ऑडियोमीटर उपलब्ध है। नवजात शिशु की श्रवणशक्ति की जॉच करने के लिये उपयुक्त यंत्र भी मौजूद है। ऑडियों टेस्ट करने के लिये लघु यंत्र भी उपलब्ध है। आवाज के स्तर की जॉच करने के लिये भी मीटर बनाए जा चुके है। आवाज की तीव्रता को नापकर ग्राफ पर अंकित करने वाले रिकॉर्डर भी उपलब्ध है।

विकसित देशों में इलेक्ट्रॉनिक्स का बेहतर इस्तेमाल करते हुए अत्याधुनिक उपकरण तैयार किये जा चुके है। वहाँ पर ऑडियोमीटर में माइक्रोप्रोसेसर का इस्तेमाल किया जाता है। इससे परिणाम और सटीक मिलता है। ऐसे टेपरिकॉर्डर भी आ गए है। जिनमें आवाज को दबाने और विस्तारित करने के लिये प्रावधान है। वाणी को छानकर आवश्यकतानुसार सुनाने के लिये उपकरण भी तैयार किये जा चुके है। देखे जा रहे दृश्य को बेहतर ढंग से समझने के लिये उपयुक्त बातचीत करने वाले यन्त्र भी उपलब्ध है जिन्हें बधिर व्यक्ति आसानी से सुनकर देखे जा रहे दृश्य को बेहतर ढंग से समझ सकते है।

अब कृत्रिम कान भी उपलब्ध है। ध्वनि के स्वर को नापने के लिये माइक्रोप्रोसेसरयुक्त उपकरण भी बन चुके है। अत्यन्त सुक्ष्म माइक्रोफोन भी उपलब्ध है। श्रवण यन्त्र से अनावश्यक आवाज या शोर नापने के लिए अत्याधुनिक इलेक्ट्रानिक उपकरण बन चुके है। ये शोर को स्थिर करके, उसे नापकर फिल्टर द्वारा निकाल सकेते है। ऐसे टेपरिकॉर्डर भी बन चुके है जो काफी बड़ी रेंज की फ्रीक्वेंसी तक शोर और कंपन को दर्ज कर सकते है।

6.6 अस्थि विकलांगों के लिये नवीन उपकरण

नेत्रहीनों और श्रवणहीनों के लिये सहायक यंत्रों में कम्प्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक्स का बहुत महत्व है। उनके लिये विकसित किये जाने वाले यंत्र सूक्ष्म, हल्के और टिकाऊ होने चाहिए अस्थित विकलांगो के लिये भी सहायक उपकरण हल्के, मजबूत और टिकाऊ होने चाहिए, पर यहाँ एक नई धारणा विकसित हो रही है। विशेषज्ञों की राय है कि ये उपकरण स्थानीय उपलब्ध जैव सामग्री से बनाए जाने चाहिए। इससे इन उपकरणों की लागत तो कम होगी ही, वे बहुत ज्यादा कृत्रिम भी नहीं लगेंगे और विकलांग व्यक्ति अपने आप को प्रकृति के ज्यादा नजदीक महसूस करेगा। समुदाय आधारित पुनर्वास योजना में भी नारा दिया जा रहा है कि स्थानीय उपलब्ध जैव सामग्री, बाँस आदि से ही सहायक उपकरण

बनाए जाने चाहिए। इससे सहायक उपकरण की मरममत आदि कराने के लिये विकलांग व्यक्ति को दूर नहीं जाना पड़ेगा।

आजादी के बाद सरकारी और गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों में इन सहायक उपकरणों का विकास और उसके बाद निर्माण हुआ। अब हर प्रकार के कैलिपर कमजोर पोलियोग्रस्त टॉगों के लिए उपलब्ध है। इन कैलिपरों के लिये एलिस्को द्वारा हर साइज की पूरी किट बनी बनाई दी जाती है। अनुभवी तकनीशियन विकलांग व्यक्ति के पैरों को नाप लेकर इस किट को जोड़कर आरामदायक कैलिपर तैयार कर सकता है। ये कैलिपर हल्की पर मजबूत धातु के बने होते है।इसी प्रकार कृत्रिम हाथ या कृत्रिम पैर भी तैयार किये जाते है। ये हाथ या पैर काफी हद तक सुविधानुसार और सुंदर होते है। इनमें व्यक्ति चीजें पकड़ भी सकता है। कृत्रिम हाथ में पेन फँसाकर विकलॉग व्यक्ति बड़े आराम से लिख सकते है।

स्पाटिक बच्चों की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुए सहायक उपकरण बनाए जा रहे है। उनके लिए खाने, लिखने आदि में सहायता करने वाले उपकरण इस प्रकार बनाए गय है ताकि वे अपने हिलते हुए हाथों से अपना काम आसानी से कर सकें। अब ऐसे स्पास्टिक बच्चों, जो बोल नहीं पाते हैं, लिये भी यंत्र तैयार किये जात रहे है। जो इन यंत्रों की सहायता से अपनी बात कह पायेंगे।

विदेशों में अस्थि विकलांगों के लिये नवीनतम तकनीक पर आधारित उपकरण तैयार करने का काम पूरी गंभीरता से चल रहा है और इसमें व्यापक सफलता मिली है। यही कारण है कि वहाँ मोटरचालित व्हीलचेयर बड़े पैमाने पर दिखाई देती है। ये व्हीलचेयर कम्प्यूटर द्वारा नियंत्रित है और इनमें बैठने और निकलने की आवश्यकताएं इतनी सरल है कि पूरी तरह निष्क्रिय अंगों वाला व्यक्ति भी इन्हें इस्तेमाल कर सकता है।

6.7 विकलांगो के लिये कार्य कर रही सरकारी संस्थाएँ

(1) राष्ट्रीय दृष्टि बाधितार्थ संस्थान (National Institute for visually Handicapped)

(2) श्रवणहीनों के लिये राष्ट्रीय संस्थान (National Institute for Hearing Handicapped)

(3) नेशननल इंस्टीट्यूट फॉर दि आर्थोपेडिकल हैंडी कैप्ड (National Institute for Orthopaedicapped)

अस्थि विकलांगों के लिये राष्ट्रीय संस्थान का गठन, अस्थि विकलांग बच्चों और ऐसे व्यस्कों, जो ऐसी विकलांगता से पीड़ित हो जो उनके चलने–फिरने, मांसपेशियों के घूमने आदिमें बाधा बनती है, के लिये 1978 में किया गया था। 1982 में इसे स्वशासित संस्थान का दर्जा दे दिया गया। यह पूरे देश के अस्थि विकलांगो के लिये कार्य कर रही संस्थाओं

के लिये अपेक्स स्तर का संस्थान है और अस्थित विकलांगो के स्वास्थ्य संबंधी, सामाजिक, व्यावसायिक और मनोवैज्ञानिक पुनर्वास आदि के लिये व्यापक रूप से कार्य करता है।

इस बहुउद्देशीय संस्थान के निम्न उद्देश्य हैः

(1) अस्थि विकलांगों को विभिन्न प्रकार की सेवा देने के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन तैयार करना।

(2) अस्थि विकलांगों के पुनर्वास के लिए शोध–कार्य संस्थान में कराना और अन्य जगहों पर चल रहे कार्यो को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता प्रदान करना।

(3) अस्थि विकलांगों के काम आने वाले सहायक उपकरणों का मानकीकरण करना और उनके निर्माण और वितरण को बढ़ावा देना।

(4) अस्थि विकलांगों की विकलांगता को दूर करने के लिये की जाने वाली शल्य चिकित्सा, सहायक उपकरण और व्यावसायिक प्रशिक्षण हेतु नई–नई विधियॉ और सेवाओं को विकसित करना।

(5) अस्थि विकलांगों के लिये कार्य कर रही राज्य सरकार की संस्थाओं और स्वयंसेवी संस्थाओं को सलाह प्रदान करना।

(4) नेशनल इंस्टीटयूट फॉर दि मेंटली हैंडीकैप्डः मानसिक रूप से विकलांग व्यक्तियोंके लिये नेशनल इंस्टीटयूट फॉर दि मेंटली हैडीकैप्ड का गठन **1984** में हुआ था। इस संस्थान के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैः

(1) मानसिक रूप से अविकसित व्यक्तियों की देखभाल व तौर–तरीके विकसित करना।

(2) मानसिक अविकास के कारणों का पता लगाना और इस दिशा में सुधार हेतु शोध करना व शोध करने वाली संस्थाओं को सहायता देना और साथ में उनके बीच में समन्वय स्थापित करना।

(3) मानसिक रूप से विकलांगो के लिए जो स्वयंसेवी संस्थाऍ कार्य कर रही है उनको समय–समय पर सलाह देना और सहायता प्रदान करना।

(4) मानसिक विकलांगता के बारे में सूचनाऍ इकट्ठी करना, दस्तावेज बनाना और उन्हें सम्बद्ध लोगो को उपलब्ध कराना।

(5) पूरे देश में मानसिक रूप से विकलांगों की सेवा आदि में गुणवत्त बढ़ाना और इस प्रक्रिया को निरन्तर बनाए रखना।

(5) नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ रिहैबिलिटेशन, ट्रेनिंग एंड रिसर्चः इस संस्थान का प्रारम्भ 1975 में एलिम्को की एक शाखा के रूप में हुआ था। यह भुवनेश्वर/कटक से लगभग 35 किमी. दूर औलटपुर में स्थित है। इस संस्थान को 1984 में भारत सरकार के समाज कल्याण मंत्रालय ने अपने हाथ में ले लिया।

इस संस्थान के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है:

(1) अस्थि विकलांगो के पुनर्वास के लिए कार्य कर रहे लोगों को प्रशिक्षण देना, प्रशिक्षण देने वालीसंस्थाओं को सहायता देना और उनके बीच समन्वय स्थापित करना।

(2) विकलांगों की सेवा हेतु कार्यक्रमों के विभिन्न मॉडल तैयार करना।

(3) अस्थि विकलांगो को व्यावसायिक प्रशिक्षण, रोजगार और पुनर्वास प्रदान करने के लिए प्रयास करना।

(4) अस्थि विकलांगों के इस्तेमाल में आने वाले सहायक उपकरणों के प्रोटोटाइप का निर्माण, बढ़ावा देने, वितरण करने व रियायती दरों पर वितरण कराने में मदद करना।

(5) अस्थि विकलांगो के लिये बायो मेडिकल इंजीनियरिंग, सर्जिकल और मेडिकल विधियों में शोध करना और शोध करने वाली संस्थाओं को आर्थिक व अन्य प्रकार की सहायता देना व उनके बीच समन्वय स्थापित करना।

विकलांगो के पुनर्वास के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिये यह संस्थान निम्न पाठ्यक्रम 1987 से चला आ रहा है:

(1) **स्नातक स्तर की फिजियोथेरपी और ऑक्यूपेशनल थेरपी का कोर्स:**साढ़े तीन वर्ष का स्नातक स्तर का यह पाठ्यक्रम उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसमें बीस सीटें है और इसमें प्रवेश के लिये न्यूनतम योग्यता इंटरमीडियट (10+2) या समकक्ष है। प्रवेशार्थियों के फिजिक्स, केमिस्ट्री और बायोलॉजी में न्यूनतम 50 प्रतिशत अंक होने चाहिए।

(2) **प्रोस्थेटिक और आर्थोटिक इंजीनियरिंग में डिम्लोमा स्तर का कोर्स:**यह पाठ्यक्र ढाई वर्ष का है और इसमें बीस सीटें है। यह राज्य सरकार की तकनीकी शिक्षा परिषद से मान्यता प्राप्त है। इसके लिये न्यूनतम योग्यता इंटरमीडियट (10+2) निर्धारित की गई है और प्रवेशार्थियों के फिजिक्स, केमिस्ट्री और गणित में न्यूनतम 50 प्रतिशत अंक होने चाहिए।

(3) **डिप्लोमा इन नेशनल बोर्ड एक्जामिनेशन–** इसमें दो सीटें है और यह भौतिक चिकित्सा व पुनर्वास में एम.डी. के समकक्ष है।

(4) **अप्ल अवधि के पाठ्यक्रम–** विकलांगो के कल्याण में लगे प्रशिक्षण व्यक्तियों और संस्थाओं को प्रोत्साहित करने के लिये और उनके ज्ञान को बढ़ाने के लिए और साथ में समुदाय आधारित पुनर्वास के लिए प्रशिक्षित करने हेतु यह संस्थान अल्प अवधि के पाठ्यक्रम भी चलाता है। साथ में चिकित्सा के बारे में भी जानकारी देने के लिये सेमीनार आदि आयोजित करता है। ये पाठ्यक्रम इस प्रकार है:

(1) विकलांग बच्चों के लिये कार्य कर रहे और विकलांग बच्चों के माता–पिता को सलाह देने वाले प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए पाठ्यक्रम है।

(2) विकलांगो के कल्याण के कार्यक्रम में लगे जिले और ब्लाक स्तर के अधिकारियों के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम।

(3) गैर सरकारी संगठनों में लगे प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए कार्यक्रम।

(4) सामान्य प्राइमरी स्कूलो को शिक्षकों को विकलांगता के बारे में जानकारी देना।

(6) इंस्टीटयूट ऑफ फिजीकली हैडीकैप्टः विकलांगो के पुनर्वास के लिये आवश्यक मानव संसाधन विकसित करने के लिए भारत सरकार के सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय ने 1976 में इस संस्थान की स्थापना की थी। यह संस्थान स्वायत्तशासी है और सोसाइटी एक्ट के तहत पंजीकृत है।

इस संस्थान में फिजियोथेरेपी और ऑक्यूपेशनल थेरपी के साढ़े तीन वर्ष के स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम चलाए जाते है। विकलांगों के लिए जेस्थेटिक और आर्थोटिक इंजीनियरिंग में ढाई वर्ष के डिप्लोमा स्तर के पाठ्यक्रम भी चलाए जाते है। विकलांगों के लिये प्रोस्थेटिक व आर्थोटिक सायक उपकरण बनाने हेतु यहाँ एक पूर्ण सुसज्जित वर्कशाप भी हे। बाहर से आने वाले मरीजो के लिए फिजियोथेरेपी, ऑक्यूपेशनल थेरापी, स्पीच थेरापी आदि की सुविधा भी ओ.पी.डी. उपलब्ध है।

(7) रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इण्डियाःभारत सरकार ने 1986 में सोसाइटी एक्ट के तहत रिहैबिलिटेशन काउंसिल का गठन किया था 31 जुलाई, 1993 को भारत सरकार ने एक कानून बनाकर इसे रिहैबिलिटेशन काउंसिल ऑफ इंडिया नामक विधि सम्मत संस्था का दर्जा दिया। सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय इसकी प्रशासनिक देख–रेख करता है।

इसके निम्न उद्देश्य हैः

(1) विकलांगों के पुनर्वास के लिए चलने वाले प्रशिक्षण और कार्यक्रमो तथा नीतियों पर नियंत्रण रखना।

(2) विकलांगों के लिये कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षकों, कार्यकर्ताओं के लिए न्यूनतम शैक्षिक व प्रशिक्षण संबंधी योग्यताएँ निर्धारित करना।

(3) इस न्यूनतम योग्यताओं को पूरे देश में समान रूप से लागू करना।

(4) विकलांगो के पुनर्वास के लिये प्रदान की जाने वालइी विदेशी संस्थाओं या विश्वविद्यालयो द्वारा डिग्री/डिप्लोमा/सर्टिफिकेट आदि को मान्यता प्रदान करना।

(5) यह काउंसिल पुनर्वास संबंधी शैक्षिक योग्यताएँ वालो की सूची भी बनाती है। इसमें ऐसे लोगो की सेवाएँ आवश्यकता पड़ने पर बेहतर तरीके से ली जा सकती है।

(8) **डिस्ट्रिक्ट रिहैबिलिटेशन सेंटरः** विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के विकलांगो को उनके घर के पास बेहतर व संपूर्ण पुनर्वास सेवा देना के लिये ग्यारह चुने हुए जिलो में इस प्रकार के केन्द्र बनाए गए है। ये जिले हैः उड़ीसा में भुवनेश्वर, मध्य प्रदेश में विलासपुर, पश्चिम बंगाल में खड़गपुर, कर्नाटक में मैसूर, तमिलनाडु में चेंगल पट्टू, उत्तर प्रदेश में सीतापुर और जगदीशपुर, आन्ध्र प्रदेश में विजयवाड़ा, हरियाणा में भिवानी, राजस्थान में कोटा, महाराष्ट्र में बिरार।

इन केन्द्रों में अनेक प्रकार की सुविधाएँ विकसित की गई है।

(9) **आर्टिफिशियल लिम्ब्स कारपोरेशन ऑफ इंडिया, कानपुनः**इस कम्पनी का गठन भारत सरकार ने 1972 में कम्पनी कानून के तहत किया था, पर यह लाभ कमाने वाली संस्था नहीं है।

इसके मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैः

(1) देश–भर के विकलांगो के लिए आवश्यक आर्थोटिक्स और प्रोस्थेटिक सहायक उपकरणों का बड़े पैमाने पर उत्पादन करना।

(2) उपरोक्त उत्पादन और बाद में फिटिंग व मरम्मत के लिए इंजीनियरों और तकनीशियनों को प्रशिक्षित करना।

(3) विकलांगों के लिए सहायक उपकरण बनाने की प्रक्रिया में निरन्तर सुधार हेतु आवश्यक अनुसंधान व विकास करना।

उपरोक्त संस्थाओं के अलावा भारत सरकार का सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय स्वयं भी कुछ योजनाएँ चलाता है। ये योजनाएँ इस प्रकार हैः

(1) विकलांगो को सहायक उपकरणों की खरीद या फिटिंग के लिए सहायता।

(2) स्वयंसेवी संस्थाओ को आर्थिक सहायता।

(3) विदेशी सरकारों द्वारा दान किये जाने वाले उपकरणों का वितरण।

(4) विकलांगों के कल्याण और पुनर्वास हेतु आवश्यक तकनीक विकसित करने के लिए चलाया जा रहा है विज्ञान और टेक्नोलॉजी मिशन।

6.8 विकलांग एवं समाज कार्यकर्ता की भूमिका

समाज कार्यकर्ता का इस क्षेत्र में प्रमुख कार्य इन तत्वों का पता लगाना तथा उन्हें निराकरण करना होता है। जब तक ऐसा संभव नही होगा विकलांग उपलब्ध सेवाओं का उपयोग नहीं कर पायेगा।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य सहायताकारी प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्ति की सहायता अपनी स्थिति से समायोजन करने में ली जाती है। अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण अध्ययन उसका विषय क्षेत्र बन जाता है। उसके सामाजिक तथा सांवेगिक कारको को जानना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि रोग के विषय में जानना।

शारीरिक रूप से बाधित व्यक्ति के लिये समाज कार्यकर्ता कीसेवाओं की आवश्यकता विभिन्न स्तरों पर होती है। जब वह चिकित्सालय में आता है उस समय उसकी सामाजिक और सांवेगिक भावनाओं से निपटना आवश्यक होता है। कुछ माता–पिता अपने बालक को चिकित्सालय में भर्ती कराना नहीं चाहते है। उनको भय रहता है कि कही उसके बच्चे की हालत बिगड़ न जाय या वे सोचते है कि यह उनके पापों का परिणाम है अतः चिकित्सा कराना व्यर्थ है। अनैच्छिक बालक भी इन्हीं भावनाओं का शिकार होता है। अतः वह चिकित्सा से वंचित रहता है। कार्यकर्ता ऐसे माता–पिता के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। शल्य चिकित्सा की आवश्यकता होने पर बालक व माता–पिता दोनों में उत्साह का संचार करता है। कार्यकर्ता की आवश्यकता न केवल बालक के माता–पिता को होती है बल्कि बालक भी चिकित्सालय में भर्ती होने की अवधि में चिकित्सा सहायता चाहता है। सांवेगिक आघात को दूर करने के लिए कार्यकर्ता प्रयत्न करता है। शल्य चिकित्सालय के समय बालक को अधिक भय लगता है वह अनेको तर्क–वितर्क करता है। कार्यकर्ता का उतरदायित्व है कि वह बालक को शलय चिकित्सा के लिये सांवेगिक रूप से तैयार करे।

शारीरिक रूप से बाधित बालक अपने आप को दूसरे से हीन समझता है। यह सत्य है कि कुछ बालकों का व्यक्तित्व श्रेष्ठ होता है। वे सांवेगिक प्रतिक्रियाएँ प्रदर्शित नहीं करते है या वे उन पर नियंत्रण रखने में सफल होते है। कार्यकर्ता बाधित बालक की सांवेगिक प्रतिक्रियाओं का निरन्तर अध्ययन करता है तथा अनावश्यक निराशा को दूर रखने का भरसक प्रयत्न करता है। माता–पिता से ईर्ष्या रखने वाले बच्चे को कार्यकर्ता अनेक कार्यकताओं के माध्यम से दूर करता है। प्रयत्क्ष साक्षात्कार के माध्यम से इन भावनाओं के स्पष्टीकरण का अवसर प्रदान करता है। शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों में कुछ ऐसे भी होते है। जिनको मनः चिकित्सा की आवश्यकता होती है। कार्यकर्ता उसका प्रयोग करता है। जिससे वह सामान्य बच्चों से बराबरी कर सके। कार्यकर्ता बाधित व्यक्ति की मनोसामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं को समझता है तथा उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करता है। उग्र भावनाओं तथा नैराश्य को रचनात्मक क्रियाओं द्वारा दूर करने का प्रयत्न करता है।

6.9 मूक बधिर व्यक्तियों के साथ समाज कार्यकर्ता की भूमिका

कार्यकर्ता बधिरों की सहायता करने में अनेक समस्याओ का सामना करता है। संस्था की प्रकृति चाहे जिस प्रकार की हो समस्याएँ समान ही होती है। सम्प्रेषण की कठिनाई प्रमुख समस्याए इन केसों में होती है।

बधिर सेवार्थी के साथ कार्य करने में समाज कार्यकर्ता चिकित्सक मनोवैज्ञानिक सभी कठिनाई अनुभव करते है। क्योंकि उचित सम्प्रेषण का सदैव अभाव बना रहता है। परिणामस्वरूप सेवार्थी को समझना कठिन होता है।

उसकी भावनाएँ अस्पष्ट रह जाती है। उसकी समस्याओं का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। अतः बधिर बालक को विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने में अधिक मेहनत करनी पड़ती है क्योंकि वह लिपि भाषा ही समझ जाता है।

6.10 सार संक्षेप

सामाजिक कार्यकर्ता को विशेष प्रशिक्षण एवं अनुभव की आवश्यकता इन सेवार्थियो के साथ कार्य करने के लिये होती है। सम्प्रेषण समस्या से वह बहुत ही कम प्रभावकारी सिद्ध होता है। बातचीत के अभाव में वह अपंग सा दिखायी देता है।कार्यकर्ता समस्याओं को समझकर उनका उपचार करता है तथा उसे संस्था में, समुदाय में उलब्ध साधनो के उपयोग की सलाह देता है। वह परिवार के सदस्यों का सहयोग प्राप्त करता है तथा मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करता है।

6.11 अभ्यास प्रश्न

(1) शारीरिक विकलांगता की अवधारणा को समझाइए।
(2) गूंगापन व बहरान के कारणों को बताइए।
(3) लगड़ेपन के कारणो तथा इनकी समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
(4) शारीरिक विकलांग व्यक्तियों के पुनर्नवास में चिकित्सकीय सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
(5) सरकार द्वारा disabled लोगो के लिये चलाये जा रहे कार्यक्रम बताईये।

6.12 पारिभाषिक शब्दावली

संसाधन	–	Allocation
पुनर्नवास	–	Rehabilitation
समिति	–	Committ
मानसिक समस्या	–	Mental Problem
अपर्याप्त पोषण	–	Unsufficient Nutrition
तकनीकी	–	Technique
शारीरिक विकंलागता	–	Physical Landicapped
बड़ा पैमाना	–	Large Scale
व्यवसायिक प्रशिक्षण	–	Professional education
अल्प अवधि	–	Short term
मनोसामाजिक समस्या	–	Physco social Problem

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) संगीता तेज, तेजस्कर पाण्डेयः ''समाज कार्य'' संस्करणः– 2004 ई0 प्रकाशकः– संगीता तेज निदेशक जुबली; 'H' फाउन्डेशन लखनऊ।

(2) पुस्तक – 21 सवीं शताब्दी मेडिकल सोशल वर्क
लेखक – सुरिन्दर सिंह घूपर
संस्करण – 1998
प्रकाशक – सेस प्रकाशन
नई दिल्ली।
(3) पुस्तक – प्रिवेन्टिव एण्ड सोसल मेडिसिन
लेखक – के0 पार्क
संस्करण – 2002
प्रकाशक – बनारसी दास 1167
प्रेम नगर, जबलपुर
(4) पुस्तक – चिकित्सा समाज विज्ञान की रूपरेखा
लेखक – अखिलेश्वर लाल श्रीवास्तव
संस्करण – 1983
प्रकाशक – विनोद चन्द्र पाण्डेय उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
(5) पुस्तक – स्वास्थ विज्ञान (प्रिवेन्टिव एण्ड सोसल मेडिसिन)
लेखक – डा0 सत्यदेव आर्य
संस्करण – 1976
प्रकाशक – राजस्थान हिन्दी अकादमी जयपुर

इकाई–7

जन–स्वास्थ्य

Public Health

इकाई का परिचय

7.1 परिचय

7.2 उद्देश्य

7.3 जनस्वास्थ्य की अवधारणा

7.4 स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

7.5 भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था

7.6 निवारक चिकित्सा

7.7 सार संक्षेप

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 परिचय

विकास प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण घटक स्वास्थ्य है। स्वतंत्रता के पश्चात् निरंतर प्रयासो से जनता की स्वास्थ्य स्थिति में हम्वपूर्ण सुधार हुआ हे। प्लेग तथा चेचक जैसे बीमारियाँ लगभग समाप्त कर दी गई है। मेलरिया पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया गया है। मृत्यु पर भी पहले की तुलना में आधे से भी कम हो गई है। जीवन प्रत्याशा जो वर्ष 1951–1961 में केवल 41 वर्ष थी, 200/ में बढ़कर 61 वर्ष हो गई है। यद्यपि काफी उपलब्धियाँ हुई है। परन्तु भारत में स्वास्थ्य की स्थिति अभी भी चिंता का विषय है। प्रति व्यक्ति कैलोरी उपभोग भी अनुमोदित स्तर से बहुत नीचे है। कैलोरी उपभोग की औसत मात्र नगरीय क्षेत्रो के 2100 कैलोरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 2400 कैलोरी है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- जन स्वास्थ्य की अवधारण को जानेंगे तथा व्यक्ति के स्वास्थ्य को आकड़ों के माध्यम से प्रस्तुत करने के विषय में सीखेंगें।

- इस इकाई में आप स्वास्थ्य के परिभाषा को समझेंगें।
- इस इकाई में हम स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों को जानेंगे।
- इस इकाई के द्वारा आप स्वास्थ्य व्यवस्था को ग्राफ के माध्यम से समझेंगें।
- इस इकाई में आप जन स्वास्थ्य के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार द्वारा प्रदान सेवाओं को आंकड़ों के माध्यम से जानेंगें।
- जन स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले रोगों के रोकथाम की दषाओं को आप जान सकेंगें।
- इस इकाई के अध्ययन से आप रोगों के निदान और उपचार को जानेंगे।

7.3 जनस्वास्थ्य की अवधारणा

मनुष्य के जीवन और उसकी खुशी के लिए स्वास्थ्य से ज्यादा महत्वपूर्ण किसी अन्य वस्तु की कल्पना कर पाना कठिन है क्योंकि स्वास्थ्य मानव जीवन की एक अनमोल सम्पत्ति है मानव जीवन में स्वास्थ्य के महत्व को स्वीकारते हुए संविधान में इसे राज्य सूची में शामिल किया गया है। यहाँ राज्य का यह दायित्व है कि सार्वभीम स्वास्थ्य सेवाओं तक सबकी पहुँच हो तथा भुगतान असमर्थता की वजह से किसी को भी स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित न होना पड़े।

- सामान्यतः स्वास्थ्य से तात्पर्य बिमारियों से मुक्त होने से समझा जाता है, परंतु वैज्ञानिक दृष्टि से इसे स्वास्थ्य नहीं कहा जाता है। स्वास्थ्य होने का तात्पर्य **शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक एवं सामाजिक** रूप से स्वस्थ व्यक्ति से है। स्वास्थ्य किसी भी समाज की आर्थिक प्रगति के लिए अनिवार्य है।
- शाब्दिक दृष्टि से जन स्वास्थ्य का आशय जनता के स्वास्थ्य से है। क्योंकि जन से आशय जनता से तथा 'स्वास्थ्य' का अर्थ उसका शारीरिक–मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होने से है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार–

''स्वास्थ्य से आशय रोगों एवं शारीरिक दुर्बलताओं के अभाव मात्र से ही नहीं है वरन् शारीरिक मानसिक तथा सामाजिक रूप से मनुष्य का पूरी तरह ठीक होना है।'' का पूरी तरह ठीक होना है। अर्थात् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की सम्पूर्ण अवस्था से है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए वहां की जनता का शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से हष्ट–पुष्ट या स्वस्थ होना आवश्यक है। क्योंकि मानव समाज का आधार स्वयं मानव है अन्य सभी आधार उसी पर निर्भर करते है। यदि देश की मानव है अन्य सभी आधार उसी पर निर्भर करते है। यदि देश की मानव शक्तिहीन व अवस्वस्थ होगी तो देश भी कमजोर

होगा तथा उसका भविष्य भी अंधकारमय होगा। अतः हर दृष्टि से जनता का स्वास्थ्य स्वस्थ होना समाज व देश के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। यदि जन स्वास्थ्य का स्तर अच्छा है तो मृत्युदर कम होगी और जनता की प्रत्यासित आयु अधिक होगी फलतः देश की हर दृष्टि से प्रगति होगी। इसके विपरीत यदि जन स्वास्थ्य का स्तर ठीक नहीं है गिरा हुआ है। तो मृत्यु दर अधिक होगी; जनता की प्रत्यासित आयु, कार्य करने की जीवनावधि व कार्य क्षमता भी कम होगी। फलतः देश की प्रगति समुचित ढंग से नहीं हो सकेगी। स्वस्थ समाज के लिए जनता का स्वस्थ होना परम आवश्यक है। यह उतना ही आवश्यक है जितना कि स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ शरीर।

7.4 स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक

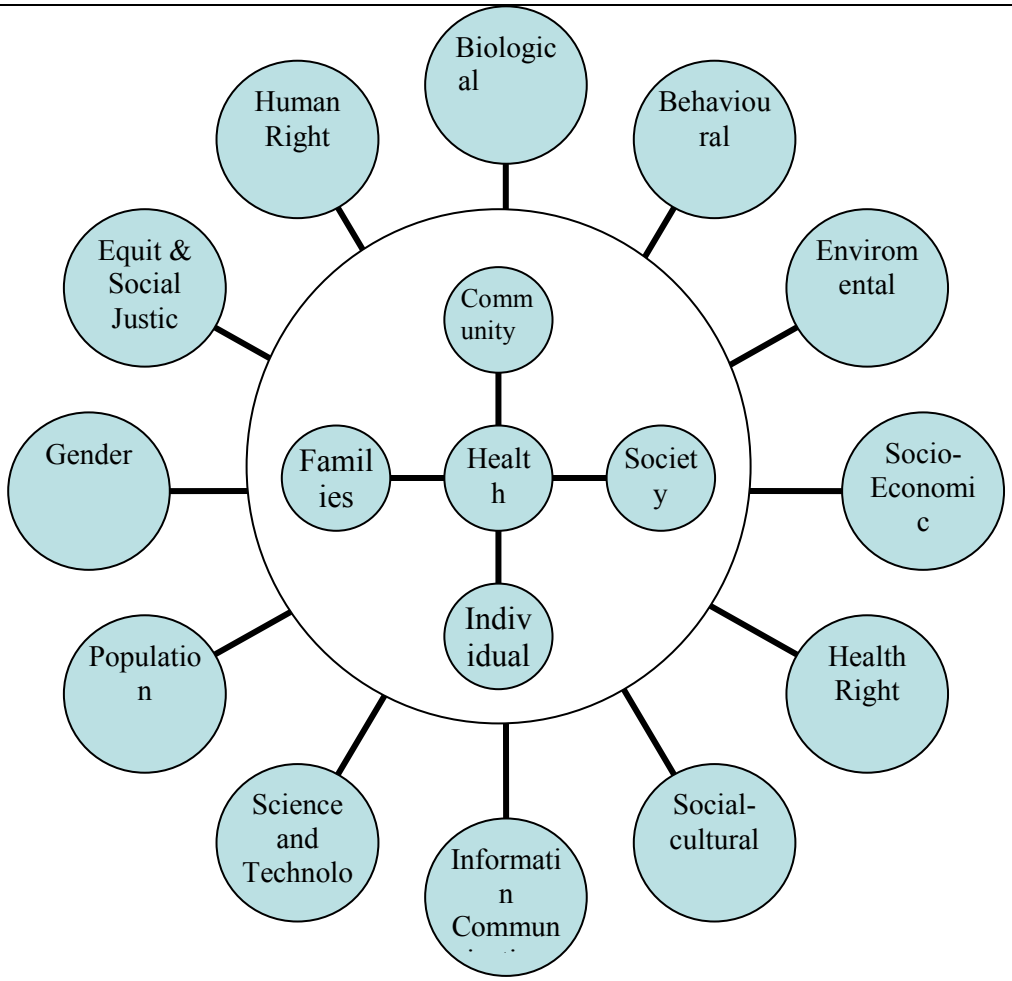

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकः–

(i) सामाजिक पर्यावरण

(ii) जनसंख्या

(iii) निर्धनता एवं असंतुलित आहार
(iv) चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ,
(v) चिकित्सा विज्ञान की स्थिति।
(vi) पेयजल एवं आवास व्यवस्था
(vii) कार्य करने की दशाएँ
(viii) शिक्षा एवं स्वास्थ्य नियमों की जानकारी।
(ix) जीवन स्तर।

अन्य कारण निम्न है–

(a) शुद्ध एवं पर्याप्त खाद्द्य पदार्थो की उपलब्धि
(b) प्रति व्यक्ति आय
(c) बीमारियों का प्रकोप
(d) अज्ञानता एवं अंधविश्वास
(e) गन्दी बस्तियाँ
(f) विवाह की आयु
(g) जन्म दर
(h) व्यक्तियों की आदते
(i) धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ।

भारत में निम्न जन–स्वास्थ्य स्तर के कारण– भारत में स्वास्थ्य स्तर बहुत निम्न है जो देश के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में बाधक है। देश में हीन किस्म की मानव पूँजी विकास में अवरोधक है। स्वास्थ्य अन्य अनेक गंभीर समस्याओं में से एक है जिसका समाधान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। स्वास्थ्य स्तर गिरा होने के कारण ही भारतीयों की उत्पादन क्षमता, कार्य क्षमता कार्य अवधि। जीवन में। औसत आयु विकसित देशों की तुलना में कम है तथा मृत्यु दर, शिशु, मृत्युदर मातृदर बहुत अधिक है। आज यहाँ संतुलित आहार की गंभीर समस्या है तथा महामारियों और बिमारियों का प्रकोप बना हुआ है। जनसंख्या की व्यापकता निर्धनता और प्रति व्यक्ति आय का कम होना कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक है जिनसे स्वास्थ्य समस्या गहन रूप से संबंधित है। भारत में जनस्वास्थ्य स्तर निम्न होने के अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक व आर्थिक कारण है, उनमें कुछ प्रमुख चरणों का उल्लेख किया जा रहा है।

i) **निर्धनता एवं प्रति व्यक्ति आय का कम होनाः–** भारत एक निर्धन देश है। कहा जाता है कि 'भारत एक सम्पन्न देश है जहाँ के निवासी निर्धन है। तात्पर्य यह है कि देश में प्राकृतिक साधनों की कमी नहीं है। साधनों की दृष्टि से भारत सम्पन्न है पर यहाँ के निवासी कई कारणों से उसका पूर्ण और सद्–उपयोग नहीं कर पा रहा है और गरीब है। निर्धरता और प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण अधिकांश जनता को पेट भर दिन में दोनों समय भोजन नसीब नहीं है। जहाँ भरपेट भोजन ही नहीं मिलता हो वहाँ घी, दूध, फल व अन्य प्रोटीन युक्त पोष्टिक पदार्थ आवश्यक मात्रा में ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं उठता हे। निर्धनता के कारण न तो लोग पर्याप्त और पौष्टिक भोजन ही प्राप्त कर पाते है न रहने के लिए उचित वातावरण में मकान ही प्राप्त कर पाते है। यही कारण है कि यहाँ के नागरिकों का स्वास्थ्य स्तर बहुत ही गिरा हुआ है और मृत्युदर अधिक है।

ii) **अज्ञानता, अंधविश्वास तथा अशिक्षाः–** भारत की अधिकांश जनता अशिक्षित है। आज भी भारत में साक्षरता का प्रतिशत 35% से अधिक नहीं है। अधिकांश जनता अशिक्षित होने के कारण अज्ञानता के अंधकार में डूबी है, जिसके कारण लोग स्वास्थ्य संबंधी नियमों से अनभिज्ञ हे, स्वास्थ्य व स्वच्छता के महत्व को नहीं समझते।

iii) **स्वच्छ पेयजल एवं सफाई की व्यवस्था का अभावः–** स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ जल और साफ–सफाई का महत्वपूर्ण स्थान है। लेकिन भारत में कुछ तो साधन और सुविधाओं के अभाव में और कुछ अशिक्षा और अज्ञानता के कारण इस संबंध में स्थिति अभी भी दयनीय है।

iv) **गंदी व अपर्याप्त आवास व्यवस्थाः–** स्वास्थ्य पर आवास तृतसंबंधी वातावरण और सुविधाओं का बहुत अधिक प्रभाव होता है। दुर्भाग्य से हमारे देश में मकानों की दशा बहुत ही शोचनीय है। न तो उनमें रहने के लिए पर्याप्त स्थान है न ही प्रकाश, हवा व धुऑ गंदे जल की निकासी की उपयुक्त व्यवस्था है। गाँव में 85% से अधिक मकान मिट्टी न घास, फूस के बने होते है जिनमें स्थान, खिड़की, रोशनदान, मल–मूत्र के लिए पृथक व्यवस्था व अन्य सुविधाओं का बहुत अभाव है। गंदी व अपर्याप्त आवास व्यवस्था में स्वास्थ्य स्तर निम्न होना स्वाभाविक है।

v) **कार्य–स्थल का अस्वस्थकर वातावरणः–** हर मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोई न कोई कार्य या व्यवसाय करता है। उसके स्वास्थ्य पर कार्य की प्रकृति और कार्य करने के स्थल की दशाओं का भी प्रभाव होता है। भारत

में आज भी औद्योगिक कारखानों, खानों एवं दुकानों में जहाँ भारी मात्रा में लोग कार्य करते है वहाँ की दशाएँ बहुत ही अस्वास्थ्यकर है।

vi) **बाल विवाहः–** भारत में स्वास्थ्य–स्तर निम्न होने का एक कारण कम उम्र में विवाह होना भी है। कम व कच्ची उम्र में विवाह होने के कारण वर व वधू दोनों का स्वार्थ्य पूर्ण विकास होने के पूर्व ही गिरना प्रारंभ हो जाता है।

vii) **पर्दा प्रथाः–** भारतीय समाज में विशेष कर ग्रामीण व मुस्लिम समुदायों में स्त्रियों में पर्दा प्रथा का बहुत अधिक प्रचलन है जिसमें महिलाओं को खुली हवा और धूप से वंचित रहना पड़ता है और वे तरह–तरह की बिमारियों का शिकार होने के बावजूद भी पर्दा व सकोच के कारण उन्हें स्पष्ट नहीं कर पाती और उचित समय पर चिकित्सा सेवाओं का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता जिससे स्त्रियों का स्वास्थ्य स्तर निम्न है।

viii) **विधवा पुनर्विवाह पर निषेधः–**भारत में आज भी सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं है। एक तो बाल–विवाह के कारण देश में बाल–विधावाओं की संख्या अधिक है दूसरे पुनः विवाह की आज्ञा न होने के कारण उन्हें घुटन के वातावरण में अभिशप्त और कलंकित जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है जिससे उनका स्वास्थ्य स्तर स्वाभाविक रूप से गिर जाता है।

ix) **चिकित्सा विज्ञान का पिछड़पन व चिकित्सा सुविधाओं की कमीः–** भारत का चिकित्सा विज्ञान आज भी विकसित देशों की भांति पूर्ण विकसित नहीं है। साथ ही ग्रामों में रहने वाली 20% जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में चिकित्सा सेवाएँ सस्ती–दर पर उपलब्ध नहीं है। इसका कारण चिकित्सा सेवाओं का पर्याप्त प्रसार न होना तथा जनता की निर्धनता है।

x) **स्वास्थ्य सुविधाओं की कमीः–** भारत में जहाँ चिकित्सा एवं स्वास्थ्य की व्यवस्था की गई है वहाँ उस प्रकार से अन्य सुविधाओं की व्यवस्था नहीं की गई है जिससे स्वास्थ्य की समस्या उसी अवस्था में बनी रहती है और इसका प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था प्रणाली पर पड़ती है।

xi) **बीमारियों की व्यापकताः–** भारत में स्वास्थ्य स्तर निम्न होने के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त उपयोग संबंधी बुरी आदते, नशीली वस्तुओं का प्रयोग, गर्म जल वायु, दोषपूर्ण आनुवंशिकता, सामाजिक कुप्रथाएँ एवं अंधविश्वास, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव, अश्रितों की अधिक संख्या, अविवेकपूर्ण मातृत्व तथा इस

संदर्भ में शिक्षा व प्रशिक्षण का अभाव है। जब तक इन कारणों का दूर नहीं किया जायेगा तब तक भारतीयों का स्वास्थ्य स्तर ऊपर उठाना संभव नहीं होगा।

राज्य के जन्म दर/मृत्युदर और शिशु मृत्युदर

राज्यों का नाम	जन्म दर	मृत्युदर	शिशु मृत्युदर
थ्बहार	30.4	9.9	66
उत्तर प्रदेश	32.1	10.5	84
मध्य प्रदेश	30.7	10.6	91
राजस्थान	31.1	8.4	81

जनसांख्यिकीय संक्रमण की अवस्थाएं

अवस्थाओं का नाम	जन्म दर	मृत्युदर	परिणाम
पहली अवस्था	उच्च	उच्च	जनसंख्या का अल्प वृद्धि
दूसरी अवस्था	उच्च	गिरावट	जनसंख्या विस्फोट
तीसरी अवस्था	गिरावट	निम्न	————
चौथी अवस्था	निम्न	निम्न	————

जनस्वास्थ्य स्तर में सुधार के लिए सुझावः–

भारत एक विकासशील देश है जो कल्याणकारी, समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। देश में जो भी विकास, सुधार और निर्माण संबंधी कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं उनके मार्ग में तथा समाज में सर्वागीण विकास के मार्ग में जनसंख्या का निम्न स्वास्थ्य स्तर तक बहुत बड़ी कल्पना नहीं कर सकते।

यहाँ हम संक्षेप में उन सुझावों की चर्चा करेंगे। जिनके द्वारा देश में व्याप्त निम्न जनस्वास्थ स्तर की समस्या का स्थायी रूप से समाधान संभव हो सकता है–

i) जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण लगाया जाये इसके लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से लागू करना आवश्यक है।

ii) स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा को अध्ययन में अनिवार्य विषय के रूप में प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक पढ़ाया जाना चाहिए।

iii) महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा, पोषण, प्रसूति व आहार संबंधी शिक्षा देने के साथ–साथ इनके प्रति जागरूकता उत्पन्न की जानी चाहिए।

iv) पौष्टिक आहार संबंधी जानकारी की व्यवस्था की जानी चाहिए और शिक्षा संस्थाओं में बच्चों को पौष्टिक आहार का वितरण कराया जाए।

v) देश में पौष्टिक और स्वास्थ्यर्वधक खादय पदार्थो का उत्पादन तेजी से हो तथा उनका समुचित वितरण किया जाना चाहिए।

vi) देश में व्याप्त निर्धनता की हर–संभव प्रयत्नों से दूर करना चाहिए।

vii) चिकित्सा विज्ञान को प्रगतिशील बनाने के साथ–साथ चिकित्सा सेवाओं में पर्याप्त विस्तार किया जाना चाहिए।

viii) जनस्वास्थ्य सेवाओं व सुविधाओं में वृद्धि व विस्तार किया जाता है।

ix) पेयजल की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

x) बीमारियों की रोकथाम के लिए हर दृष्टि से व्यापक अभियान चलाया जाना चाहिए।

xi) नियोजित नगरों का विकास भी स्वास्थ्य के सुधार की दिशा में उपयोगी होना।

xii) ऐसी समस्त सामाजिक, धार्मिक, कुप्रथाओं, रूढियों, और अंधविश्वाओं के विरूद्ध जीवन स्वास्थ्य की प्रगति में बाधक है जबर्दस्त आंदोलन चलाकर इन्हें शीघ्र दूर कर स्वास्थ्य के लिए अनुकूल सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करना अनिवार्य है।

7.5 भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था

भारत में 28 राज्य तथा 9 केन्द्रशासित राज्य है तथा केन्द्र व राज्य स्तरपर स्वास्थ्य व्यवस्था निम्नलिखित हैः–

केन्द्रीय स्वास्थ्य व्यवस्था

- स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय
- स्वास्थ्य सेवाओं का सामान्य निदेशाालय
- केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय

राज्य स्वास्थ्य व्यवस्था

- राज्य स्वास्थ्य मंत्रालय
- राज्य स्वास्थ्य निदेशालय

जिला स्वास्थ्य व्यवस्था

- उपजिला स्वास्थ्य व्यवस्था
- तहसील स्वास्थ्य व्यवस्था
- ग्राम स्वास्थ्य व्यवस्था
- नगर निगम नगर

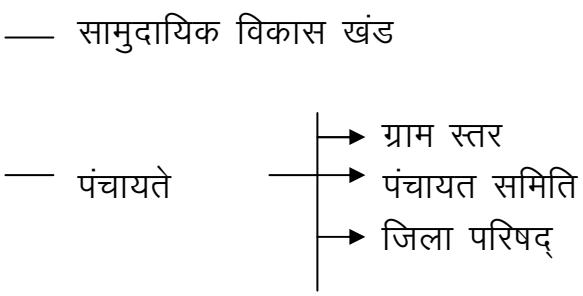

जनस्वास्थ्य सुधार के लिए शासन द्वारा किये गए–प्रयत्न

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा घोषित वर्ष 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य लक्ष्य के परिपेक्ष्य में भारत सरकार ने 1983 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति घोषित की। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण करके सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त करना निर्धारित किया गया। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य सेवाओं का विकेन्द्रीकरण, रेफरल सेवाओं का विस्तार, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य तथा भारतीय चिकित्सा पद्वतियों के मध्य समन्वय, सर्वव्यापी टीकाकरण, मातृ–शिशु तथा स्कूल स्वास्थ्य सेवाओं पर नियंत्रण एवं स्वास्थ्य शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। विगत 58 वर्षो में स्वास्थ्य सेवाओं की सुदृढ़ संरचना के कारण अनेक स्वास्थ्य समस्याओ से मुक्ति मिली है जिनमें प्लेग, हैजा, मलेरिया, इन्फ्लूएंजा, पोलियो एवं कुकुरखासी पर नियंत्रण आसमयिक मृत्यु पर सफलता मिलने से मृत्युदर में उल्लेख नील सुधार हुआ है। परिणामस्वरूप मानव संसाधन के उपयोग की अवधि बढ़ गई है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यय(करोड़रू में)

क्र.सं.	पंचवर्षीय योजनाएँ	कुल योजना राशि	स्वास्थ्य सेवाओं पर व्यय	प्रतिशत
1.	प्रथम पंचवर्षीय योजना	1,960.00	65.20	3.32
2.	द्वितीय पंचवर्षीय योजना	4,672.00	140.80	3.01
3.	तृतीय पंचवर्षीय योजना	8,576.00	225.00	2.62
4.	चतुर्थ पंचवर्षीय योजना	15,778.80	335.00	2.12
5.	पंचम पंचवर्षीय योजना	39,426.20	682.00	1.73
6.	छठीं पंचवर्षीय योजना	97,500.00	1,821.05	1.87
7.	सातवीं पंचवर्षीय योजना	1,80,000.00	3,392,89	1.89
8.	आठवीं पंचवर्षीय योजना	4,85,460.00	7,575,92	1.56
9.	नौवीं पंचवर्षीय योजना	8,59,200.00	10,818.40	1.26
10.	दसवीं पंचवर्षीय योजना	14,84,131.00	31,020.00	2.09

11.	ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना	36,44,718.00	–	–

स्रोत– कुरूक्षेत्र (अक्टूबर, 2010)

7.6 निवारक चिकित्सा

निवारक चिकित्सा आयुर्विज्ञान की एक शाखा है जो रोगो की आवृत्ति को अवरूद्ध करने से सम्बन्धित है। सार्वजनिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हुए बिन स्लोवों ने स्पष्ट किया है कि चिकित्सकीय अभ्यास के अन्तर्गत रोग निवारण की क्षमता का विकास किया जाता है। ताकि रोग–ग्रस्त से समुचित बचाव हो सके। क्लार्क के अनुसार निवारक चिकित्सा रोग निवारण की एक कला एवं विज्ञान है। जिससे जीवन की अवधि में वृद्धि तथा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्यवर्धन और क्षमता में वृद्धि की जाती है।

निवारक चिकित्सा के अन्तर्गत केन्द्र व्यक्ति होता है। साथ ही अधिकतम शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अर्जित करने और समुचित सामाजिक प्राणी होने के व्यक्ति के उत्तरदायित्व तथा स्वैच्छिक सहयोग पर विशेष बल दिया जाता है। जबकि सार्वजनिक स्वास्थ्य में विशेष ध्यान व्यक्तियों के ऐसे समूहों पर दिया जाता है जो स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य समस्याओं से ग्रस्त होते है व जिनके निराकरण के लिये संगठित सामुदायिक प्रयास अनिवार्य होता है।

निवारक चिकित्सा के क्षेत्र में तीव्र गति से विकास व्यक्तिगत स्वच्छता तक ही सीमित नहीं रह गया है। वरन् इसके अभ्यास क्षेत्र की शाखाएँ रोग नियंत्रण, जनसंख्या नियंत्रण जैवकीय परामर्श, चिट रोग निवारण तक फैल चुकी है। आयुविज्ञान के विकास के बाद भी निवारक चिकित्सा की आवश्यकता व उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता वरन् आयुविज्ञान की प्रगति के साथ ही साथ निवारक चिकित्सा के अभ्यास पर और अधिक बल दिया जाने लगा है। फिर भी उक्त विवरण के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि निवारक चिकित्सा एवं आधुनिक सार्वजनिक स्वास्थ्य के उद्देश्य एक समान है। परन्तु इन पक्षों की सामान्य अवधारणों पर विचार करने के पश्चात् इन्हें और अधिक स्पष्ट करने की दिशा में कुछ विद्ववानों का मत है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य के स्थान पर सामुदायिक स्वास्थ्य तथा निवारक एवं समाज मूलक चिकित्सा के स्थान पर सामुदायिक चिकित्सा शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिये और अनेक विद्वानों द्वारा इन शब्दों का उपयोग भी किया जाने लगा है।

निवारक एवं समाज मूलक चिकित्सा में अन्तसम्बन्ध– निवारक एवं समाजमूलक चिकित्सा एक दूसरे की पूरक एवं अन्योन्याश्रित है। इसलिए ने तो समाज मूलक चिकित्सा

को निवारक चिकित्सा के अन्तर्गत और न ही निवारक चिकित्सा को समाजमूलक चिकित्सा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसलिये चिकित्सा की इस विशिष्ट शाखा को सम्मिलित रूप से निवारक एवं समाज मूलक चिकित्सा की संज्ञा देना। ही उपयुक्त प्रतीत होता है। यह धारणा न केवल भारत वरन् इग्लैण्ड, अमेरिका तथा अन्य पाश्चात्य देशों में इसी रूप में प्रचलित व मान्य है। समाजमूलक चिकित्सा के अन्तर्गत उद्घृत सात स्तरों या क्षेत्रों में निवारक व समाजमूलक दोनों का सम्मिलित समावेश स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आयु विज्ञान की विशिष्ठता शाखा के रूप में निवारक एवं समाजमूलक चिकित्सा से सम्बन्धित निवारक एवं सामाजिक पक्षों व कारको का समुचित अध्ययन करना चाहती है। इस चिकित्सा शाखा की एवं अवधारणा रोग निवारण एवं स्वास्थ्यवर्धन के संदर्भ में अध्ययन करना है। जीवाणु विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि के साथ ही साथ निवारक चिकित्सा की मान्यता में वृद्धि हुई है। लगभग एक शताब्दी पूर्व ही विलियम पर ने लिखा था कि निराकरण की अपेक्षा रोग का निवारक अधिक सरल है। रोगों के निवारण की दिशा में रोग के कारणों की खोज करना प्रथम चरण है।

निवारक चिकित्सा रोगो का निवारण ही नहीं है वरन् इसका अन्तर्गत स्वास्थ्यवर्धन की धारणा निहित है। इसकी दो स्पष्ट प्राक्स्थाऐं होती है:

(i) व्यक्ति का स्वास्थ्य संरक्षण (ii) समुदाय का स्वास्थ संरक्षण

रोगी की चिकित्सा देखरेख तथा रोग निवारण के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खीची जा सकती। यह ज्ञान की कोई एक मात्र इकाई नहीं है। निवारण चिकित्सा किसी व्यक्ति विशेष को किसी रोग के खतरे से बचाने का कार्य करता है। जिसकी दिशा पर्यावरण से आपेक्षित तत्वों को दूर करने की ओर होती है और कभी–कभी इसके क्रिया कलापों शैक्षणिक प्रक्रिया के रूप में होता है अर्थात् निवारक एवं समाज मूलक चिकित्सा का साथ–साथ अभ्यास किया जाता है।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि निवारक चिकित्सा व समाज मूलक चिकित्सा एक दूसरे की पूरक है और एक के बिना दूसरे के उद्देश्य की प्राप्ति कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। यही कारण है कि आधुनिक चिकित्सा के अन्तर्गत निवारक व समाज मूलक चिकित्सा को एक समेकित इकाई तथा आयुविज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

निवारक चरणः– रोगो के निवारक चरण के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के अनेक मतों का उल्लेख किया जा चुका है। पार्क महोदय ने निवारक के तीन प्रमुख चरणों का निम्न लिखित रूप से वर्ण किया है।

(1) **प्राथमिक निवारणः–** सार्वजनिक स्वास्थ्य की पत्रावली के अन्तर्गत प्राथमिक निवारण से तात्पर्य उन क्रियाओं से है जो रोग प्रारम्भ होने की स्थिति के पूर्व बचान की दृष्टि से की जाती है जिसके रोग होने की सम्भावनाएँ दूर की जा सके। इसी प्रकार स्वास्थ्य जीवन यापन की दिशा में किया जाता है जबकि विशिष्ट संरक्षण विशिष्ट रोगो के निवारण की विधियों को सन्दर्भित करता है।

अनेक संक्रामक रोग जैसे यक्ष्मा, खसरा, मियादी–ज्वार, डिप्थीरिया आदि रोगों से बचाव एवं संरक्षण में टीकाकरण व्यक्तिगत स्वच्छता के प्रति चेतना, पर्यावरण की स्वच्छता, व्यावसायिक विषम परिस्थितियों एवं दुर्घटनाओं से संरक्षण हेतु प्रयत्न किये जाते है। स्वास्थ्यवर्धन के लिये प्राथमिक निवारण के अन्तर्गत स्वास्थ्य शिक्षा, सन्तुलित आहार तथा व्यक्तित्व के प्रति चेतना, उचित आवाज व विश्राम, पेयजल, मनोरंजन, वैवाहिक उपबोधन यौन शिक्षा, परिवार कल्याण नियोजन आदि के सन्दर्भ में वैज्ञानिक ज्ञान एवं सुविधाएँ प्रदान की जाती है।

रोग निवारण की सफलता रोगो के कारणो सम्बन्धी ज्ञान, रोग से प्रभावित होने वाले सम्भावित समूहों की पहचान, रोग की खोज के साधनों की उपलब्धता और इस साधनों का उपयोग करने वाले संगठन, इनमें लाभान्वित होने वाले व्यक्ति व समूहों की स्थिति, समुचित वातावरण, स्वास्थ्य सम्बन्धी सामाजिक नीति आदि पर निर्भर होती है।

प्राथमिक निवारण का उद्देश्य केवल मृत्यु दर में कमी एवं जीवन अवधि में वृद्धि ही करना नहीं है वरन् अधिक महत्वपूर्ण तत्व उपयुक्त रूप से समायोजित एवं जीवन को उपयोगी बनाने में सहायता प्रदान करना है। प्राथमिक निवारण में रोग के उपचार द्वारा स्वास्थ्य–रक्षा करने पर बल नहीं दिया जाता यह मुख्य रूप से परिवार से सम्बन्धित् होता है। क्योंकि परिवार के सभी सदस्य एक साथ निवास करते है और चिर रोगों के स्त्रोत व्यक्ति की आदतों एवं जीवन यापन की विधियों में निहित होते है। अतः निवारण के क्रियाकलापों परिवार एवं समुदाय के अन्तर्गत विस्तृत रूप से इस प्रकार किये जाते है। कि सम्पूर्ण समुदाय रोग रहित, स्वास्थ्य एवं समायोजित रहकर अपना जीवन यापन सुखी रूप से कर सके।

(2) **द्वितीय निवारणः–** द्वितीयक निवारण के अन्तर्गत शीघ्र निदान और तुरन्त उपचार की धारणा पर बल दिया जाता है। पार्क के अनुसार वे क्रियाये जो रोग की प्रगति को आरम्भ में ही अवरूध कर देती है तथा निवारण सम्बन्धी जटिलताओं को कम करती है। उन्हें हम द्वितीयक निवारण की संज्ञा देते है। निवारण की इस प्रक्रिया में पीड़ा कम करने, रोगो का शीघ्र उपचार करने, आशक्तता तथा मृत्यु से संरक्षण

किया जाता है। समुदाय में द्वितीयक निवारण द्वारा रोगो के विकास को भी अवरूद्ध करने का प्रयास किया जाता है। कई रोगों का नियंत्रण अब भी द्वितीयक निवारण पर निर्भर करता है। सरकार द्वारा प्रारम्भ किये गये स्वास्थ्य कार्यक्रम सामान्यतः द्वितीयक निवारण स्तर की समस्याओ के कारण संचालित किये जाते है। आधुनिक युग में औद्योगिक देशों में विशेष ध्यान द्वितीयक निवारण पर दिया जाता है। जिसमें संकट रक्षा पर आथ्रिक दृष्टि से अधिक बल दिया जाता है।

द्वितीयक निवारण संक्रमित होने वाले रोगो के नियंत्रण के लिये संतोषजनक माध्यम नहीं है। क्योंकि कभी–कभी यह अत्यधिक महंगा और कम प्रभावीसिद्ध होता है। जबकि मानव स्वास्थ सुख एवं उपयोगिता की दृष्टि से दीर्घ अवधि के लिये प्राथमिक निवारण अधिक प्रभावकारी तथा कम खर्चीला होता है।

द्वितीयक निवारण उस स्थिति में अधिक सक्रिय व उपयोगी होता है। जब कोई समुदाय किसी संक्रमक रोग से आर्थिक रूप से गस्त हो जाता है क्योंकि उसका मुख्य लक्ष्य शीघ्र निदान व तुरन्त उपचार की धारणा पर आधारित होते है। इसके द्वारा समुदाय में पीड़ित सदस्यों का निदान करके तुरन्त उपचार किया जाता है तथा समुदाय के अन्य स्वास्थ्य सदस्यों की इस प्रकार सहायता की जाती है कि वे रोगग्रस्ता न हो पाये। इसी के साथ यह भी प्रयास किया जाता है कि अशक्तता का विस्तार न हो और अधिक से अधिक सदस्य सशक्त रहते हुए अपनी सम्पूर्ण क्षमता का समुचित रूप से उपयोग करके सुखी जीवन व्यतीत कर सके।

उपयुक्त विवरण के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि द्वितीयक निवारण के बिना अपूर्ण व अपर्याप्त है अतः प्राथमिक निवारण के क्रियाकलापों के साथ ही द्वितीयक निवारण की गतिविधियों उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

(3) **तृतीयक निवारकः–** तृतीयक निवारक से तात्पर्य केवल रोगो के निवारण से ही नहीं है। वरन् रोग के कारण उत्पन्न अशक्तता व अक्षमता से संरक्षण इस स्तर के निवारण का मुख्य उद्देश्य ही ग्रस्त जनसंख्या मुख्य रूप से कुपोषण, संक्रामक रोग तथा दुर्घटनाओं का फल है। विकसित देशों में चिमनो दैहिक रोग मनोविकार तथा दुर्घटनाओं अशक्तता के प्रमुख कारण के रूप में देखी जा सकती है। 'सभी के लिए स्वास्थ्य' की अवधारणा के सन्दर्भ ने तृतीयक निवारण सम्पूर्ण विश्व के स्वास्थ्यवर्धन के सम्बन्ध में एक विशिष्ट विधि के समेकित अंग स्वरूप मान्य एवं प्रचलित है जिसका उद्देश्य संसार के सभी लोगों को स्वास्थ्य के उस स्तर तक पहुंचना है जहाँ वे सामाजिक व आर्थिक उत्पादक जीवन व्यतीत करने में पूरी तरह सक्षम व सशक्त हों।

इस प्रकार हम देखते है कि तृतीयक निवारण का मुख्य उद्देश्य सामुदायिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में इस प्रकार के क्रिया कलापों व विधियों का उपयोग कला है। कि व्यक्ति रुग्णता, कुपोषण, दुर्घटना या अन्य कारणों से सफलता व अक्षमता से ग्रस्त होकर असमायोजित व आर्थिक कठिनाईयों से समस्याग्रस्त न हो सके। तृतीयक निवारण के अन्तर्गत किसी कारण से सम्भावित आशक्तता निवारण तथा ऐसे सेवार्थियों का मनोसामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक एवं शारीरिक पुर्नस्थापन किया जाता है।

योगदान देने के लिए, चिकित्सा स्वास्थ्य का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्तियों, परिवार, समुदाय को व्यापक स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध कराना है। इन विभागों के पास पढ़ाना प्रशिक्षण देना सेवा करना और अनुसंधान घटक शिक्षण एवं प्रशिक्षण के दायरे में अवस्थित है। 1975 के बाद समुदाय के संकाय सदस्यों प्रशिक्षण के प्रत्यक्ष अनुभव निरीक्षण और उनका मूल्यांकन ICDS जैसे कार्यक्रमों में सक्रिय सहभागिता, EPI CSSM, RCH जिला राज्य राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों में संचालन के अनुभव प्राथमिक स्वास्थ्य देखरेख को वैश्विक महत्व देते है।

एक तरफ तो आम जनसंख्या में विशेष सम्बन्धित आवश्यक फेरबदल करके किया तो दूसरे ओर यह शिक्षा प्रद मामलों का अध्ययन करते हुए जो कुछ आवश्यक पहलुओं का उदाहरण देते है। HAS ग्रामीण है तो आरटीबोनाइट घाटी 1952 व्यक्तिगत रूप से स्थापित किया गया लाभ देने वाली संस्था के रूप में नहीं वरन् HAS का कार्यक्रम क्रामिक रूप में मुख्य रूप से अस्पताल आधारित उनकी सेवा करना जो संस्थाओं तक पहुंच सके। प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं के महत्व को पहचान देने के लिए जो कि जनसंख्या के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंच सकता है।

स्वास्थ्य सुरक्षा सेवायेः– भारत में स्वास्थ्य सुखा सेवाओं की सम्भावना निम्न क्षेत्रों में है। जो एक दूसरे से भिन्न है।

(1) प्राथमिक स्वास्थ सेवाः– सन् 1977 में भारत सरकार ने स्वास्थ्य सुधार के लिए एक योजना लागू किया जो कि स्थानीय लोगों स्वास्थ्य लोगों के हाथ में आधारित

7.7 सार संक्षेप

अतः स्पष्ट है कि भारत के जनस्वास्थ्य की स्थिति सोचनीय है। जहाँ एक ओर सरकार के माध्यम से बहुत सारी योजनाएँ क्रियान्वित हो रही है वही दूसरी ओर इसके क्रियान्वयन में ढेर सारी खामिया प्रदर्शित होती है। अतः जरूरी है स्वास्थ्य की योजनाओं का सही क्रियान्वयन हो तथा बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं हेतु। जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता पर बल दिया जाए। तथा साथ ही वे समूहोः– जैसे **बालकों, युवकों, स्त्रियों,**

वृद्धों, उच्च, मध्य तथा निम्न, सामाजिक श्रेणियों, भूश्रमिककों, कृषकों, शिल्पकारों और अन्य सामाजिक वर्गो की जो कि समाज का वैरामीटर होते है। उनके यानि इन सभी के स्वास्थ्य को देखते हुए सरकार को अच्छे सुविधाओं को प्रदान कराया जाना चाहिए जिससे राष्ट्र के साथ–साथ समाज का भी विकास होता रहे तथा राष्ट्र विकासशीलता से विकसित देशों की ओर अग्रसित हो।

7.8 अभ्यास प्रश्न

1. जन स्वास्थ्य की अवधारण को समझाइयें,तथा व्यक्ति के स्वास्थ्य को आकड़ों के माध्यम से प्रस्तुत करने की प्रयास करें।
2. स्वास्थ्य को परिभाषित कीजिये।
3. स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाइये।
4. स्वास्थ्य व्यवस्था को ग्राफ के माध्यम से समझाइये।
5. जन स्वास्थ्य के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार द्वारा प्रदान सेवाओं को आंकड़ों के माध्यम से समझाये।
6. जन स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले रोगों के रोकथाम की दशाओं को समझाइये।
7. रोगों के निदान और उपचार की व्याख्या कीजिये।

7.9 पारिभाषिक शब्दावली

संसाधन	–	allocation
पुर्नवास	–	Rehabilitation
समिति	–	Committ
मानसिक समस्या	–	Mental Problem
अपर्याप्त पोषण	–	unsufficient Nutrition
तकनीकी	–	Technique
शारीरिक विकंलागता	–	Physical Landicapped
बड़ा पैमाना	–	Large Scale
व्यवसायिक प्रशिक्षण	–	Professional education
अल्प अवधि	–	Short term
मनोसामाजिक समस्या	–	Phycho social Problem

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

G.K. Agrwal -Social Problems Sahity Bhawan, Pablishers and Distributers(Pvt) Limited. 2008

Park& T.E. Park -Preventive and Social Medicine, Jabalpur, Banarsidas Bhanot, 2004 कुरूक्षेत्र (अक्टूबर, 2010)

इकाई–8

आहार एवं पोषण
Food & Nutrition

इकाई का परिचय

8.1 परिचय

8.2 उद्देश्य

8.3 आहार एवं पोषण की अवधारणा

8.4 परिभाषा

8.5 महत्व

8.6 सन्तुलित आहार, विशेषताएं एवं हानियाँ

8.7 कुपोषण , कारण, रोकने के उपाय

8.8 भारत में कुपोषण की समस्या

8.9 रोकने के उपाय

8.10 सार संक्षेप

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.12 पारिभाषिक शब्दावली

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 परिचय

आहर का सम्बन्ध शरीर को पौष्टिकता प्रदान करने वाले पदार्थों से है। आहार में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ जो शरीर को पौष्टिकता प्रदान करते हैं उन्हे पोषक तत्व कहते हैं। पोषक तत्व यदि हमारे शरीर में उचित मात्रा में विद्यमान न हों तो बीमारी हो जाती है जिन्हें कुपोषण जन्य बीमारियां कहते हैं। पोषक तत्वों को उनके गुणों के आधार पर मुख्यतः पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है। शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए उचित आहार का उचित मत्रा में होना अत्यंत आवश्यक है। पोषण सम्बन्धि अध्ययन से हमें यह

जानकारी प्राप्त हाती है कि हमें स्वस्थ्य रहने के लिए क्या और कितनी मात्रा में भोजन लेना चाहिए।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- पोषण एवं उसके महत्व को जान सकेंगे।
- स्वास्थ्य तथा पोषण के सम्बन्ध को समझ सकेंग।
- भोजन के विभिन्न तत्व एवं उनके कार्यों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- संतुलित आहार क्या होता है? इसे जान सकेंगे।
- कुपोषण एवं कुपोषण जनित रोगों के विषय में जान सकेंगे।

8.3 आहार एवं पोषण की अवधारणा

जीवधाारियों को जैविक कार्यो के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा भोज्य पदार्थो के जैव–रासायनिक आक्सीकरण से प्राप्त होता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया को जिसके अन्तर्गत जीवधारियों द्वारा बाह्य वातावरण से भोजन ग्रहण करके उसे कोशिका में ऊर्जा उत्पादन करने या जीवद्रव्य में स्वांगीकृत करके मरम्मत या वृद्धि में प्रयुक्त करता है; पोषण कहते है।पोषण शब्द की उत्पत्ति 'पोषित' शब्द से हुई है। इसमें वे सब सम्मिलित है, जो हमारे द्वारा खाये गये भोजन का उपयोग शरीर वृद्धि, ऊर्जा और अच्छे स्वास्थ्य के लिए करते है। पोषण के अन्तर्गत निम्नांकित चरण होते है–

अर्न्त ग्रहण → पाचन → अवशोषण → स्वांगीकरण → बहिःक्षेपण

हरे पौधों में पर्णहरित होता है वे अपना भोजन जल तथा कार्बन डाइऑक्साइड तथा पर्णहरित की उपस्थिति में बनाते है। हरे पौधों को उत्पादक कहते है। इससे स्पष्ट होता है कि पौधे स्वपोषी होते है। जबकि सभी जन्तु परपोषी होते है। ये अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते है।

आहार – आहार प्राकृतिक या अप्राकृतिक रूप से प्राप्त भोज्य पदार्थ होता है। जैसे प्रकृति द्वारा प्राप्त अनाज दाल, सब्जी, फल, कन्द–मूल, दूध, शर्करा, तेल आदि तथा अप्राकृतिक भोजन जैसे माँस, मछली, अण्डा तथा अन्य प्राणियज पदार्थ।

पोषण– आहार के पाचन शोषण तथा संग्रह के बाद शरीर के उसका सुक्ष्म रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा होता है। इन प्रक्रियाओं को हम पोषण कहते है।

8.4 आहार एवं पोषण की परिभाषाएं

आहार – यह वह ठोस या तरह पदार्थ होता है जो जिन्दा रहने की एकता के लिए सवेगात्मक तृप्ति के लिए, सुरक्षा व प्रेम की भावना को दृढ़ बनाने के लिए आवश्यक होता है। मनुष्य की शारिरिक, मानसिक, संवेगात्मक सामाजिक क्षमता के सन्तुलन के लिए 'आहार' अव्यावश्यक पदार्थ है।

पोषण– जिन जटिल प्रक्रियाओं द्वारा एक सजीव प्राणी अपने शरीर के कार्यो वृद्धि तथा तत्वों के पुननिर्माण एवं भरण–पोषण के लिए आवश्यक पदार्थो का ग्रहण तथा उपयोग करता है। उसे पोषण कहते है।''

डी0 एफ0 टर्नर के अनुसार– ''पोषण उन प्रतिक्रियाओं का संयोजन है। जिनके द्वारा जीवित प्राणी क्रियाशीलता को बनाये रखने के लिए तथा अपने अंगों की वृद्धि एवं उनके पुनः निर्माण हेतु आवश्यक पदार्थ प्राप्त करता है और उनका उचित उपयोग करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि भोजन केवल जीवन का अस्तित्व बनाए रखने के लिए ही नहीं, बल्कि अधिक से अधिक उत्तम स्वास्थ, शरीर का निर्माण, वर्धन, सुगठन क्षतिग्रस्त अवयवों एवं उनकी कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति एवं ऊर्जा एवं ऊष्मा प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

8.5 पोषण एवं आहार के महत्व

पोषण एवं भोजन वह प्रदार्थ है जिसके प्रति पाचन तन्त्र क्रिया करता है। अंगृकित कार्यो के लिए शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है–

1. **प्रोटीन** – प्रोटीन तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गन्धक और फॉसफोरस का मिश्रण होता है–

1. शरीर के तन्तुओं के निर्माण और उनकी टूट–फूट की अतिपूर्ति में प्रोटीन का उपयोग होता है। यह जीवद्रव्य (Protoplasm) जिसमें मुख्यतः प्रोटीन और जल ही होता है का निर्माण करता है और यह समस्त जीवों के जीवन तथा विकास के लिए आवश्यक है।
2. प्रोटीन से ही पाचन रसों, खमीरों और प्रणाली–विहीन ग्रन्थियों के रसों का निर्माण होता है।
3. प्रोटीन शरीर में रोग निवारण की शक्ति उत्पन्न करता है।

2. **कार्बोहाइड्रेट** – कार्बोहाइड्रेट का मुख्य महत्व शरीर में शक्ति और गरमी उत्पन्न करना है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण भोजन तत्व है। विशेषतः उस समय जब कि माँसपेशियों के परिश्रम का काम अधिक होता है। कार्बोहाइड्रेट पाचन–क्रिया द्वारा Glucose में परिवर्तित होते है और शोषण के बाद रक्त द्वारा माँसपेशियों के पास

जाते है। जहाँ वह उपयोग में पाये जाते है। वहाँ जो कुछ बचा रहता है। वह Lives के पास पहुँच जाता है।

3. **वसा** – वसा का मुख्य महत्व शरीर को गर्मी और माँसपेशियों शक्ति पहुँचना है। कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा वसा में अधिक गर्मी और शक्ति उत्पन्न होती है। यदि शरीर में उपयुक्त गर्मी तथा शक्ति उत्पन्न की आवश्यकता को अधिक वसा ग्रहण की जाती है तो वह चर्म के नीचे तन्तुओं में चर्बी के रूप में जमा हो जाती है। इस तरह शरीर भरकर सुडौल हो जाता है और आभ्यन्तरिक अवयव, अस्थियाँ और सान्ही कुछ सीमा तक बाहरी आघातों से सुरक्षित रहते है।

4. **खनिज–लवण** – खनिज–लवण शरीर–भार के लगभग 20वें भाग का निर्माण करते है और शरीर के लिए अत्यत्न आवश्यक है–

1. पाचन रसों को उत्प्रेरित करना।
2. माँसपेशियों, स्नायुओं और रक्त का बन बनाए रखना।
3. शरीर के सामान्य विकास में योग देना।
4. तेजाब–आर का सन्तुलन बनाए रखने में योग देना।

5. **कैलशियम** – शरीर में अस्थि तथा दाँतों के निर्माण के लिए कैलशियम की आवश्यकता होती है शरीर में इसके अभाव से अस्थि–रोग हो जाते है। बच्चों की वृद्धि रूक जाती है और दाँत खराब हो जाते है। यह हृदय की समगती का भी नियन्त्रण करता है तथा स्नायुओं को स्वस्थ रखता है। साथ ही यह रक्त को जमाने में सहायक होता है।

6. **फॉस्फेट** – दाँतो, अस्थियों, रक्त और न्त्रिका तन्त्र के लिए फास्फेट भी अत्यत्न आवश्यक होता है। फॉस्फेट की कमी से विकास अवरूद्ध हो जाता है और अस्थियाँ तथा दाँत कमजोर हो जाते है।

7. **लोहा** – यह शरीर के लिए सबसे अधिक महत्व वस्तुओं में से हैं क्योली Blood के लाल रक्त–कोषों का निर्माण इसी से होता है और Himoglobin जो रक्त कोषों को आक्सीजन ले जाने की सक्रिय शक्ति प्रदान करता है।

8. **आयोडीन** – आयोडीन Thyriod Glands के कार्य कलाप के हित में अत्यत्न आवश्यक है। गलग्रन्थि स्श्राव शरीर की अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं का निर्देशन करता है। यद्यपि इसकी अति अल्प मात्रा में आवश्यकता होती है पर इसकी कमी के कारण विकास बाधित हो सकता है। इसकी अनुपस्थिति से जो रोग होता है। उसको Guitre कहते है।

9. **रेशेदार भोज्य पदार्थ –** आँतों की माँसपेशियों को निष्कासन के लिए कुछ तत्व मिल जाए, इसके लिए रेशेदार पदार्थ की आवश्यकता होती है। यह अनैच्छिक माँसपेशियों को विस्तार के द्वारा संकुचन शक्ति प्रदान करते है और पाचन क्रिया को ठीक रखते है इनके अभाव से प्रायः अपाचन हो जाता है।

10. **विटामिन– 'A' –**

- वृद्धि के विभिन्न अध्ययनों में देखा गया है कि विटामिन A शारीरिक वृद्धि के लिए नितांत आवश्यक है इसके अभाव में वृद्धि में अवरोध होता है। अस्थियों के सामान्य निर्माण के लिए यह आवश्यक है।
- विटामिन 'ए' की कमी से त्वचा भी प्रभावित हो जाती है। यह शुष्क एवं खुरदरी हो जाती है। विटामिन 'ए' त्वग्वसीय ग्रन्थियों को सुचारू रूप से कार्य करने में सहायता करता है। इससे त्वचा चिकनी एवं साफ रहती है। मन्द प्रकाश में देखने की क्षमता रक्त में विटामिन 'ए' की उपस्थिति के कारण ही होती है। रक्त में विटामिन 'ए' होने पर ही इस वर्णक का निर्माण होता है। नेत्रों में रोगाणुओं के संक्रमण से बचने की क्षमता भी विटामिन 'A' द्वारा ही प्राप्त होती है।
- उचित मात्रा में विटामिन 'A' के प्रयोग से शरीर में रोगरोधन क्षमता आ जाती है। शरीर को बल शक्ति एवं स्फूर्ति देने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

विटामिन– 'B' –

- अस्थि–निर्माण में विटामिन B सहायक होता है। शिशुओं में विटामिन डी की कमी से रिकेट नामक रोग हो जाता है बच्चों के आहार में कैल्शियम एवं फास्फोरस की मात्रा अधिक रहने पर भी अगर उसके आहार में विटामिन डी की कमी से रिकेट हो जाता है।
- विटामिन 'डी' कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के अवशोषण पर प्रशंसनीय प्रभाव डालता है जिससे अस्थियों एवं दाँतो को खनिज पदार्थ मिलता है।
- प्रयोग के दौरान देखा गया कि जिन शिशुओं को 340 से 400 I.U. विटामिन डी दैनिक दी गई थी उनकी लम्बाई में अधिक वृद्धि हुई उन शिशुओं की अपेक्षा जिन्हें 60 से 135 I.U. विटामिन 'डी' दी गई थी।

विटामिन– 'E' –

- विटामिन 'ई' उतकों और कोश की दीवारों में होने वाले बहु असंतृप्त (Polyunsaturated) वसा अम्ल के Peroriclation को रोकता है।
- यह यकृत की कार्बन टेट्राक्लोराइड के विष से होने वाली हानि से रक्षा करता है।

- यह Sor Harmons की उत्पत्ति में सहायक होता है।

विटामिन– 'K' – विटामिन 'K' चोट लगने पर रक्त के जमाव के लिए यह विटामिन आवश्यक हो इस विटामिन की कमी से रक्त का थक्का नहीं जमता और रक्त बहना बन्द न होने से घाव से अत्यधिक रक्त श्रावित होता है। इस अवस्था को हाइटोप्रोथेम्बी निमिया कहते है।

8.6 सन्तुलित आहार

सन्तुलित आहार की परिभाषा एवं विशेषता– ''यह आहार सन्तुलित होता है। जिसमें सभी आहार वर्ग जैसे ऊर्जा देने वाला आहार, शरीर संवर्धन करने वाला आहार और सुरक्षातमक आहार उचित परिणाम में हों। जिससे कि व्यक्ति को सभी पोषक तत्व न्यूनतम मात्रा में प्राप्त हो जाये।''

C.Gopalan - "सन्तुलित आहार वह है जो विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों को ऐसी मात्रा एवं अनुपात में लेने से आती है जिसमें कैलोरी , खनीज , विटामिन तथा अन्य पोषक तत्वों की षरीर की आवष्यकता पूर्ती हो सके , पोषण की कुछ अतिरिक्त मात्रा भी बच जाये।"

विशेषताएँ –

(i) व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक पोषक तत्वों की मात्राएँ हो।

(ii) उसमें सभी पोषक तत्वों का स्थान हो।

(iii) उसमें पोषक तत्व उचित अनुपातों में है।

(iv) सन्तुलित आहार में विशेष पोषक तत्व साथ साथ हो यथा प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट या प्रोटीन और वसा।

(v) भविष्य में आवश्यकता के लिए जो पोषक तत्व संचित हो सकते है। उनकी मात्रा अधिक होनी चाहिए।

(vi) उचित मात्रा में कैलोरी प्रदान करता है।

(vii) जो आकर्षक सुगन्धित स्वादिष्ट एवं रूचिकर हो और जिसमें सभी भोज्य समूहों के भोज्य पदार्थ हो।

सन्तुलित भोजन नहीं होने से हानियाँ – सन्तुलित आहार नहीं लाने से निम्नलिखित हानियाँ होती है–

(1) शरीर में रोगरोधन–क्षमता क्षीण हो जाती है जिस कारण अनेक प्रकार के रोगों के होने की संभावना रहती है।

(2) शरीर की माँसपेशियाँ उचित रूप से विकसित नहीं हो पाती है।

(3) भूख कम लगती है। हर समय आलस्य थकान एवं नींद आती है।
(4) शरीर दुर्बल एवं पीला दिखाई देने लगता है।
(5) थोड़ा भी शारीरिक परिश्रम करने के बाद अधिक थकान का अनुभव होने लगता है।
(6) ऑखे पीली–पीली दिखाई देती है एवं कमजोरी का अनुभव होने लगता है।
(7) शरीर का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।
(8) सन्तुलित आहार के अभाव में बच्चों का मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता है।

8.7 कुपोषण

Meaning of Malnutrition– कुपोषण पोषण वह स्थिति है जिसमें भोज्य पदार्थ के गुण और परिणाम में अपर्याप्त होती है। आवश्यकता से अधिक उपयोग द्वारा हानिकारक प्रभाव शरीर में उत्पन्न होने लगता है तथा बाह्रा रूप से भी उसका कुप्रभाव प्रदर्शित हो जाता है। जब व्यक्ति का शारीरिक मानसिक विकास असामान्य हो तथा वह अस्वस्थ महसूस करे या न भी महसूस करे तो भी भीतर से अस्वास्थ हो (जिस अवस्था को केवल चिकित्सक ही पहचान सकता है) तब स्पष्ट है कि उसे अपनी आवश्यकता के अनुरूप पोषक तत्व नहीं मिल रहे है। ऐसी स्थिति कुपोषण कहलाती हैं

कुपोषण वह स्थिति है जिसमें भोज्य तत्वों के गुण और परिणाम में अपर्याप्त होती है तथा कभी–2 आवश्यकता से अधिक उपयोग हो रहा होता है जिससे हानिकारक प्रभाव शरीर पर उत्पन्न हो जाते है।सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि कुपोषण के सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक भौगोलिक तथा आर्थिक और कुछ अन्याय कारण है। आहार सम्बन्धी मिथ्या आस्थाओं, मन्त्रियों का भी कुपोषण में सम्बन्धि मिथ्या आस्थाओं, मन्त्रियों का भी कुपोषण में योगदान रहता है। परिवार की भोजन–शैली और निजी विशिष्ट प्रथाए एवं आदतें भी इसका कारण हो सकती है। धार्मिक विचारों के कारण शुद्ध बेजीटोरियन होना माड पजाना, सावणीयों के जलाशं का प्रयोग नहीं करना मोटा छिलका उतार देना, मिन्तान्त तथा तले छने व्यंजनों को सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक समझना आदि बाते भी कुपोषण का कारण है। इनके द्वारा व्यक्ति अपने आप ही उपलब्ध पौष्टिक तत्वों को अपने प्रयोग में नहीं ला पाता है।

8.8 भारत में कुपोषण की समस्या'

भारत की अधिकांश जनता अनपढ़ है जो कि भोजन में उपस्थित पोषक तत्वों के महत्व को नहीं जानती है। इस तरह से अज्ञानता और अनभिज्ञता, दोनों ही भारत में कुपोषण के प्रमुख कारण है। क्योंकि आहार विज्ञों ने आहार सम्बन्धी अनुसंधानों में पाया है कि पोषक तत्व केवल महंगी वस्तुओं में ही नहीं मिलते है। बल्कि कुछ सस्ती वस्तुओं से भी

प्राप्त किए जा सकते है। यदि व्यक्ति इनके महत्व को समझेगा तो वह इन्हें कम मूल्य के स्थानीय रूप से उपलब्ध भोज्य पदार्थो के माध्यम से प्राप्त कर सकता है।

8.9 कुपोषण की रोकथाम के उपाय

कुपोषण सम्पूर्ण विश्व के ऐसे राष्ट्रों की विशेष रूप से जहाँ गरीबी है तथा जहाँ आज्ञानता, निर्धनता, रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वास अधिक है बड़ी समस्या है। कुपोषण को संसार सदैव के लिए उठा देने के लिए तमाम ऐजेसियां ने कमर तोड़ प्रयास किया है और कर रही है। उनकी सहायता से भारत की सरकार भी बराबर इसे दूर करने के लिए कार्य करती रही है। इसके लिए आज सरकार ने व्यस्क शिक्षा का कार्यक्रम चलाया है। जब जनसंख्या का बढ़ना रूकेगा, तभी किसी दिशा में प्रगति हो सकेगी जनसंख्या पर तब तक नियन्त्रण नही हो सकेगा जब तक कि प्रत्येक व्यस्क समझदार न हो क्योंकि कुपोषण अनेक कारकों के प्रभाव का फल है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर एक साथ काम करने की जरूरत है।

(1) Action of family level
(2) Action at the community level
(3) Action at national level

राष्ट्रीय स्तर के कामों के अन्तर्गत निम्न कार्यो की तत्परता से निति निर्धारित करके, उसका क्रियान्वयन होना चाहिए ये है–

1- Increasing food Productivity
2- Price control
3- Pervention of food Adultration
4- Fortification & enrichment of food
5- Inventing the cheap supplementary foods
6- Irradiated food
7- Nutrition education
8- Popuation contral

कुपोषण के निवारण के लिए डा0 लक्ष्मी कान्त के सुझाव निम्नलिखित है–

1. वैज्ञानिक ढ़ग से खेती तथा उत्पादन में वृद्धि करना जरूरी है।
2. गरीबी को दूर करने का प्रयास किया जाए जिससे लोगों की क्रय क्षमता बढ़े और वे पौष्टिक पदार्थो को अपने आहार में मिला सकें।
3. पैरासाइटिक संक्रमण को रोकने के लिए वातावरणीय स्वच्छता को उन्नत किया जाय।

4. सब ही प्रभावित क्षेत्रों में एप्नाएट न्यूट्रीशन प्रोग्राम को फैलाया जाय और निष्ठापूर्वक आगे बढ़ाया जाए।
5. पोषण के क्षेत्र में प्रोग्राम और प्रोजेक्ट को प्राथमिकता दी जाए जिससे उनके माध्यम से जनसमुदाय तक न्यूट्रीशन एजूकेशन पहुँचायी जा सके।
6. संचयन स्थानान्तरण और पकाने में खाद्यों की अनावश्यक क्षत्रि को रोका जाए।
7. शिक्षा में भी जागरूकता लाने के लिए इसका समावेश किया जाए। पाठ्य–क्रम में रखने के एक तरह से नई पीढ़ी का हर व्यक्ति इसका महत्व समझेगा।
8. अंधविश्वासों, बहम, मिथ्या और भ्रामक आस्थाओं से शिक्षा द्वारा मुक्त दिलायी जाए।

कुपोषण निवारण में कार्यरत संगठन–

अन्तराष्ट्रीय एजेन्सी जो इस कार्य में लगी है वे निम्न है–

1- Woold Health Orgnazisation (W.H.O.)
2- Food & Agriculture Organization (F.A.O)
3- Uniteel Nations International Children educational Fund (UNICEF)
4- United Nations educational Seientific & Cultural Organisation (UNESCO)
5- World food Programme (W.F.P.)
6- Co-operative for American Relief every where (C.A.R.E.)
7- Most of the international agencies are part of the United nation.The objective of each organization very but the basic aim is to help or assist goverment in improving the health of the nation. The tanure of working also keeps changing.
8- National Agency
    1- Ministry of health & family welfare.
    2- Ministry of food & Agriculture.
    3- Ministry of education & social welfare.
    4- Food corporation of india. (F.C.I.)
    5- Indian council of Medical Research. (I.C.M..R.)
    6- Indian council of Agricultural Research (I.C.A.R.)

यह सब एजेन्सी भी राज्यों की सरकारों की मदद से इस दिशा में कार्यरत है। इनकी योजनान्र्गत भी विविध कार्य हो रहे। जो समय–समय पर जैसी जरूरत रहती है। उसी के अनुरूप परिवर्तित होते रहते है।

8.10 सार संक्षेप

भारत की 80% जनका ऐसी है जो केवल साधारण सा भोजन कर पाती है।नारायण ने कुपोषण के शारीरिक और आन्तरिक कारणों में, रोगो के कारण भूख का कम होना, पोषण की माँग को बढ़ाने वाले कारण, शोषण को प्रभावित करने वाले करके, उपापचय को प्रभावित करने वाले कारक अधिक विसर्जन को प्रभावित करने वाले कारक तथा शारीरिक पोषक तत्वों का नाश माना है।

इन सब बातों पर गौर से नजर डाली जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय परिवार की निर्धनता का और अज्ञानता का एकमात्र कारण विकराल रूप से बढ़ी हुई जनसंख्या है। जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि विस्फोट की स्थिति आ पहुंची है। जबकि न तो जमीन बढ़ी और न उत्पादन ही बढ़ा है। गरीबी और अज्ञानता तथा तद्जनित कुपोषण तथा अनेक अन्य कुप्रभाव तब तक दूर नहीं किए जा सकते है। जब तक कि जनसंख्या पर नियन्त्रण न रखा जाए। कमाने वाला एक और खाने वाले अनेक है। तब सबका पेट कैसे भरे–

इस प्रकार से कुपोषण का कुटिल दुष्चक्र चलता ही रहता है। इसका कहीं अन्त नहीं है। एक से दूसरी स्थिति से तीसरी स्थिति चलते–2 वहीं कुपोषण पर ही पहुँच जाती है। कुपोषण से निरन्तर कुपोषण ही बढ़ता जाता है। व्यक्ति की कार्यक्षमता और देश का उत्पादन घटता जाता है। इस चक्र का क्या प्रभाव पड़ता है देखिए– "The vicious circle of Malnutrition lowers work efficiency & Perpectuates Poverty." दूसरे देशों की अपेक्षा भारत की जनसंख्या बहुत अधिक कुपोषीत है तथा अपोषित भी है। इसी से यहाँ मृत्यु–दर अधिक हो यहाँ के अधिकांश लोग किसी न किसी रोग से पीड़ित है। फलतः उनकी कार्य क्षमता भी कम है। स्वस्थ प्रसन्नचित लम्बी चौड़ी स्वस्थ काठी वाले स्फूर्ति वाला विरते ही दिखाई देते है।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. पोषण का क्या अभिप्रय है? स्वास्थ की दृष्टि से मनुष्य के लिए इसका ज्ञान क्यो आवश्यक है?
2. शारीरिक विकास एवं वृद्धि से उत्तम पोषण का क्या सम्बन्ध है स्पष्ट करे?
3. कुपोषण का क्या अभिप्राय है?
4. कुपोषण के क्या कारण तथा इसको रोक थाम के उपाय बताए? भारत में निर्धारण हेतु राष्ट्रीय प्रयासों के बारे में लिखे?
5. सन्तुलित भोजन से क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिये सन्तुलित भोजन किन–2 कारकों से प्रभावित होता है विवेचना करे?

6. सन्तुलित आहार लेने से क्या लाभ है?
7. पोषण की कमी से एक व्यक्ति को किन–2 समस्या का सामना करना पड़ेगा? विवेचना किजिए।

8.12 पारिभाषिक **शब्दावली**

Nutrition	- पोषण	Mineral Salts	- खनिज लवण
Food	–भोजन	Iodine	- आयोडीन
Proteins	-प्रोटीन	Calcium	- कैलशियम
Carbohydrate	- कार्बोहाइड्रेट	Malnutrition	-कुपोषण
Sugar	-शक्कर	Diet	-आहार
Fat	-वसा	Prevention	–रोकथाम
Disease	– रोग	Haemoglobin	- हिमोग्लोबिन

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. नारायण प्रो0 सुधा, आहार विज्ञान, रिसर्च पब्लिकेसन्स जयपुर।
2. शैरी डा0 जी0पी0, स्वास्थ शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. वर्मा डॉ0 प्रमिता एवं पाण्डेय डॉ0 कान्ति, आहार एवं पोषण विज्ञान बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
4. जी. कौचर एवं इन्द्राजीत, कुरूक्षेत्र, 2002 एसोसिएट पालमपुर, हिमाचल प्रदेश।
5. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ मिशन, जैन स्टूडियोज नि0 नई दिल्ली।

इकाई–9

परिवार नियोजन और परिवार कल्याण
Family Planning & Family Welfare

इकाई की रूपरेखा

9.1 परिचय
9.2 उद्देश्य
9.3 परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण की अवधारणा
9.4 परिवार नियोजन एवं पकिरवार कल्याण की परिभाषा एवं पद्धतियां
9.5 परिवार नियोजन एवं पकिरवार कल्याण का महत्व
9.6 यौन शिक्षा
9.7 स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम।
9.8 विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम
9.9 सार संक्षेप
9.10 पारिभाषिक शब्दावली
9.11 अभ्यास प्रश्न
9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 परिचय

परिवार नियोजन का अर्थ व्यक्ति अथवा दम्पत्तियों द्वारा उनकी इच्छानुसार बालको को प्राप्ति हेतु योजना बनाना है। इसे जिम्मेदारीपूर्ण पितृत्व कहा जाता है। परिवार कल्याण का अर्थ सिर्फ जन्मों के नियन्त्रण तक सीमित न होकर, समस्त परिवार के स्वास्थ की देखभाल करके उसका कल्याण करना है। भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता दी गई है। चूँकि इन कार्यक्रमों की सफलता पर ही नागरिको के जीवन की गुणवत्ता निर्भर है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- परिवार नियोजन और परिवार कल्याण के अवधारणा एवं पद्धतियों के विषय में जान सकेंगे।
- परिवार नियोजन के महत्व एवं उससे सम्बन्धित जानकरियों को ग्रहण कर पायेगें।

- इस ईकाई के माध्यम से लोगो को परिवार कल्याण नियोजन के बारे में जानकारियाँ प्रदान कर सकेंगें।
- यौन शिक्षा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- स्कूल स्वास्थ कार्यकक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- विभिन्न राष्ट्रीय स्वास्थ कार्यक्रम के विषय में अवगत हो सकेंगे।

9.3 परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण की अवधारणा

भारत विश्व में पहला देश है जिसने परिवार नियोजन कार्यक्रम को सरकारी स्तर पर अपनाया है भारत सन् 1951 से जनसंख्या को सीमित करने के लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया जा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित साधनों में नियन्त्रण स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण किया जाए। शाब्दिक रूप से परिवार नियोजन का अर्थ साधारण दो या तीन सन्तानों को जन्म देकर परिवार के आकार को नियोजित रूप से सीमित रखना समझा जाता है। परिवार नियोजन से तात्पर्य एक ऐसी योजना से है, जिसमें परिवार की आय, माता के स्वास्थ, बच्चों के समुचित पालन पोषण तथा शिक्षा को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त समय पर और एक आदर्श संख्या में सन्तानों को जन्म दिया जाए।

9.4 परिवार नियोजन और परिवार कल्याण की परिभाषा एवं पद्धतियाँ

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ''परिवार नियोजन व्यक्ति अथवा शिक्षित दम्पतियों द्वारा उनकी इच्छानुसार बच्चों की प्राप्ति हेतु योजना बनाना है जो जिम्मेदारी पूर्ण और स्थिति के आधार पर परिवार के स्वास्थ एवं राष्ट्र के सर्वागीण उन्नति के लिए लिया गया निर्णय है''।

परिवार नियोजन पद्धतियाँः–

1–अस्थायी पद्वतियां :– अस्थायी पद्वतियाँ का यह लाभ है कि आवश्यकतानुसार उनको सरलतापूर्वक बन्द किया जा सकता है। इनका मुख्य लक्ष्य जन्म में अन्तर बढ़ाना है।

यान्त्रिक गर्भ निरोध

(क) आय.यू.डी (IUD)

(ख) डायफ्राम , (Diaphragm)

(ग) कन्डोम या निरोध

(i) अन्तः गर्भाशयीन साधन (**IUD**)– महिलाओं में यह पद्वति काफी लोकप्रिय है। यह पालिथिलिन का बना दुहरे आकार का साधन होता है जिसे 'लिपीज–लूप' कहा जाता है जबकि कि कापर–T(copper 'T') कापर और पोलिथिलिन की बनी होती है कापर 'T' आसानी से प्रवेशित की जा सकती है और उससे रक्तश्राव भी कम होता

है और से बेहतर कही जा सकती है। I.U.D. के द्वारा, निषेचित ओवम की अपने आपको गर्भाशय की दीवार से जुड़ने की क्रिया की रोकथाम की जाती है।

(ii) डायफ्राम(**Diaphragm**)– यह रबर का गुम्बदाकार साधन होता है जिसे महिला सम्भोग पूर्व सरविक्स को ढँकने और शुक्राणुओं के गर्भाशय में प्रवेश की रोकथाम करने के हेतु, अपने आप योनि (Vagin) में प्रवेशित करती है चिकित्सक या नर्स द्वारा निदान गृहों में महिलाओं को इसे प्रवेशित करने की शिक्षा दी जाती है।

(iii) कन्डोम (निरोध)– इस निरोधक पद्वति का प्रयोग पुरूषों द्वारा किया जाता है। यह महीन रबर का बना पुरूष जननांग को ढ़कने वाला एक साधन होता है। इसे संभोग पूर्व सीधे लिंग पर चढ़ाकर पहना जाता है।

हॉरमोनल पद्धति–

(i) मुख से ली जाने वाली निरोधक गोलियां जो महिलाओं द्वारा प्रयोग में लायी जाती है।

(ii) ऐसी गोलियॉ जो पुरूषों में शुक्राणुओ के उत्पादन की रोकथाम करती है इस पर शोध कार्य किये जा रहे है।

(iii) डेपो प्रोवेरो के इंजेक्शन और अन्य औषधियाँ। ये अभी भारत में अधिक प्रयोग में नहीं लाई जाती है।

प्राकृतिक पद्धतियाँ–

(i) रिदम या सुरक्षित अवधि पद्धतिः– दिनों की गणना पर आधारित, रजोधर्म को उवर्रक अवधि में सम्भोग न करना यह लक्ष्य होता है।

(ii) ओव्यूलेशन पद्धतिः– यह पद्धति रिदम पद्धति से अधिक सही होती है। महिलाओं को यह शिक्षा दी जाती है कि डिम्बक्षरण के समय उनमें होने वाले परिवर्तनों को ध्यान रखें जो कि उर्वरक अवधि होती है। सरवाइकल श्लेष्मा के इस अवधि में परिक्षण से यह पतालगता है कि वह अधिक फिसलनयुक्त रहता है जब कि अन्य अवधि में यह एक पेस्ट की तरह चिपचिपा होता है। योनि का तापक्रम डिम्बक्षरण अवधि से सामान्य से अधिक होता है।

(iii) सम्भोग अन्तर्बाधा :– इस अवधि में वीर्य स्खलित होने के पूर्व ही पुरूष अपने शिशन को बाहर निकाल लेता है।

स्थायी विधियाँः–

(i) महिला नसबन्दीः– यह शल्यक्रिया महिलाओं के लिए होती है। आधुनिक तकनीक के प्रयोग द्वारा जिसमें 'लेप्रोस्कोपी' सम्मिलित है, यह अत्यन्त सरल और सुरक्षित हो

गयी है। यह एक छोटी शल्यक्रिया है, जिसमें फेलापिन ट्यूब के दोनों तरफ का छोटा भाग निकाला जाता है। उदर में सिर्फ 2 से.मी. लम्बा चीरा लगाता है। जिसे एक एक टाँके द्वारा बन्द किया जाता है। इसके लिए सर्वोत्तम समय प्रसब पश्चात् 7 दिन की अवधि में होता है। लेकिन यह किसी भी समय की जा सकती है।

(ii) पुरूष नसबन्दीः– यह पुरूष की सरल और सुरक्षित शल्यक्रिया होती है। जिसमें शुक्रवाह के दोनों तरफ का छोटा टुकड़ा निकाल दिया जाता है। एक छोटा सा चीरा स्कोटम में देने की आवश्यकता होती है। इसमें सिर्फ 10 मिनट का समय लगता है और पुरूष उसी दिन घर जा सकता है।

9.5 महत्त्व

परिवार नियोजन को अब बेहतर जीवन स्तर हेतु मौलिक मानवीय हक माना जाता है।जन्मों में प्रर्याप्त अन्तर होना बेहतर पारिवारिक स्वास्थ के लिए महत्त्वपूर्ण और महिलाओं के लिए अधिक स्वतंत्र और समान अधिकारो की प्राप्ति हेतु सहायक होता है। यदि महिलाओं को परिवार नियोजन अपनाने हेतु स्वतन्त्रता दी जाए तो अधिकांश महिलाएं सिर्फ दो या तीन बच्चों को ही जन्म देना स्वीकार करेगी।

1. सिर्फ दो बच्चो के पर्याप्त अन्तर से जन्म लेने की वजह से माता का स्वास्थ अच्छा रहता है। वह परिवार की देखभाल अच्छी तरह से करती है।
2. माताओ और शिशुओं के स्वास्थ सम्बन्धी खतरे बहुत कम हो जाते है।
3. छोटा परिवार स्वास्थ, सुखी और सतुंष्ट रहता है।
4. अच्छी शिक्षा की वजह से दम्पत्ति स्वतन्त्रता पूर्वक परिवार नियोजन कर सकते हैं।
5. माताओ की आयु 20 वर्ष से अधिक होने से शिशु जन्म के समय किसी का खतरा नहीं रहता है।
6. सिर्फ दो बच्चे होने की वजह से पालक उनकी अच्छी देखभाल कर सकता है। उनके आहार, कपड़े, शिक्षा का व्यय आसानी से वहन कर सकते है। बच्चे बड़े होने पर अक्सर अच्छे उपयोगी नागरिक बनते है।
7. छोटे परिवार में पैसा बढ़ता है और स्तर में सुधार होता है।
8. माता के पास अपनी शिक्षा तथा कार्य में सुधार हेतु पर्याप्त समय रहता है और रूचि बनी रहती है। उसका सामाजिक दर्जा भी बेहतर रहता है।

वैयक्तिक सेवा कार्य पद्वति के माध्यम से परिवार नियोजन की जानकारी देना :–

1. पूर्व–प्रसव करते समय महिला को जन्मो में अन्तर रखने और उसे हेतु प्रसव पश्चात् निरोधको के प्रयोग के बारे में कहाँ। यदि उसे दो से अधिक बच्चों हो तो नसबच्दी के बारे में कहो।

2. सर्वप्रथम गर्भपात के पश्चात निरोधको के उपयोग की सलाह दो।
3. प्रसव पश्चात् की गृह भ्रमण के दौरान परिवार नियोजन के बारे में सलाह दो।
4. प्रसव पश्चात् निदानगृह तथा 5 वर्ष के कम आयु के बच्चो हेतु निदान गृहों में आपको परिवार नियोजन सम्बन्धी शिक्षा देना।
5. परिवार नियोजन विधि के प्रयोग के बारे में पूछताछ करना।
6. परिवार नियोजन केसम्बन्ध में उन्हें कितनी जानकारी है और इसके बारे में उनके विचार क्या है, यह जानकारी प्राप्त करो।
7. परिवार नियोजन के बारे में सलाह देते समय उनके धार्मिक विचारो को आदर करो।
8. परिवार नियोजन के स्वास्थ सम्बन्धी लाभो पर जोर दो।
9. यदि आपके के पास चित्र हो तो विधियो को समझाते समय उनका प्रदर्शन करो।
10. परिवार नियोजन विधि स्वीकार्य होने हेतु काफी गृहभेदों की आवश्यकता हो सकती है।

समूह सेवा कार्य के माध्यम से परिवार नियोजन की जानकारी देना–

1. दृश्य साधनो का प्रयोग नियोजन परिवार से लाभ और परिवार नियोजन विधि के बारे में वास्तविकता समझाने के लिए किया जाना चाहिए। वास्तविक साधन जैसे आय.यू.डी. भी समूहों को दिखाये जा सकते है।
2. संतुष्ट स्वीकारकर्ता का समूह में परिचय कराना चाहिए तथा लोगों के प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए।

मास मीडिया के माध्यम से

- मॉडल्स और पोर्स्टस का प्रदर्शन– मॉडल्स और पोस्टरों के माध्यम से हम लोगो को परिवार नियोजन के बारे में अधिक से अधिक जानकारी दे सकते है।
- सिनेमा/ फिल्म्स या दृश्य साधन– सिनेमा के माध्यम से परिवार नियोजन कल्याण के बारे में जानकारी दे सकते है।
- नुक्कड़ नाटक– गली मोहल्ले में लोगो के बीच नुक्कड़ नाटक करके परिवार नियोजन के महत्व को समझा सकते है।
- पर्चे/पम्पलेट– समूह में पर्चे पम्पलेट छपवाकर हम इन्हें समूह में बाँट कर जानकादी दे सकते हैं।

9.6 यौन शिक्षा

किशोर का व्यवहार बहुत कुछ काम भावना से प्रेरित होता है। वास्तव में उनकी अधिकांश समस्याओं का सम्बन्ध इसी भावना से होता है। इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए मनोवैज्ञानिकों ने यौन शिक्षा पर बल दिया है। किन्तु भारतीय परिवारों में इस ओर

थोड़ा सा भी ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि इस विषय पर बड़ो से बात करने में लज्जा एवं संकोच अनुभव होता है और इस प्रकार यौन शिक्षा के अभाव में किशोर एवं किशोरियों में यौन जीवन के सम्बन्ध में अज्ञानता बनी रहती है। जिसका उन पर बुरा प्रभाव पड़ता है अतः रॉस ने लिखा है ''यौन–शिक्षा की परम आवश्यकता भी अस्वीकार कर नहीं सकता है इस बात की आवश्यकता है कि किशोर को एक ऐसे वयस्क द्वारा गोपनीय शिक्षा दी जाए जिस पर उसे पूर्ण आस्था हो।''

इस सभी कथनों से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति अपने सम्बन्ध में अपने आस पास के समाज के सम्बन्ध में तथा पूरे विश्व के सम्बन्ध में नई धारणाएं बनाता है। वह अपने शरीर में परिवर्तन देखता है। अब उसकी दाढ़ी–मूँछ आ गई है, कद तथा आवाज बढ़ गया है, भूख बढ़ गई है, आवाज भारी हो गई है। इन बातों को देखकर कभी–कभी उसे आश्चर्य भी होने लगता है।

लीविन, लिपिट तथा हाइर ने अपने एक अध्ययन के द्वारा स्पष्ट किया है कि कक्षा के वातावरण का बालक पर प्रभाव पड़ता है। यद्यपि बालक परिवार से मुक्त होना चाहता है फिर भी वह माता पिता से प्रेम करता है उनका आदर करता है और समय–समय पर उनकी आज्ञाओं का पालन भी करता है अमेरिका में एक अध्ययन के आधार पर देखा गया है कि 75 से 84 प्रतिशत किशोर भिन्न–भिन्न पदार्थ के क्रय करते समय अपने माता–पिता से सहमति लिया करते है।

जब किशोर यह अनुभव करता है कि ''प्रौढ़ व्यक्ति उसे समझाने का प्रयास करते है उसे सहायता देते है। तो उनका व्यक्तित्व सुसंगठित बनता है। सुसंगठित व्यक्तित्व वाला किशोर ही आगे जाकर जीवन में सफलता प्राप्त करता है।

9.8 विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम

A- राष्ट्रीय एड्स कार्यक्रमः– भारत सरकार ने अप्रैल 1992 में एक व्यापक 'राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण' कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम का पहला चरण प्रारम्भ में सन् 1992 से 1997 तक के लिए था। लेकिन इसकी अवधि बढ़ाकर इसे 1999 तक कर दिया गया। एन. एसी पी. II अप्रैल 1999 से प्रारम्भ हुआ और अभी तक चल रहा है। इस चरण के दो प्रमुख उद्देश्य थे।

HIV संक्रमण को फैलने से रोकना :– HIV, AIDS से जूझने या लड़ने में केन्द्रीय और राज्य सरकारों की क्षमता को मजबूत करना।

ये उद्देश्य निम्न घटको के द्वारा पूरे किये जाएगें।

घटक– 1: अधिक सम्भावना वाले समुदायो को लक्ष्यो को बनाकर कार्य करना।

घटक– 2: आम नागरिको में HIV संक्रमण रोकना।

घटक– 3: कम लागत की चिकित्सा व्यवस्था करना।
घटक– 4: संस्थागत क्षमता मजबूत करना।
घटक– 5: अंतक्षेत्रीय सहयोग।
देश में HIV, AIDS कट्रोल संगठन (एन.एस.ओ) HIV आकलन को हर साल व्यापक निगरानी के आधार पर अघटन बनाता है। दिसम्बर, 2005 तक 52.06 लाख लोग HIV से संक्रमित हो चुके है। सन् 1992 से ही यौन संक्रमित रोगों पर नियन्त्रण राष्ट्रीय AIDS नियन्त्रण कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है।

B- राष्ट्रीय क्षय रोग कार्यक्रमः– क्षयरोग पर नियन्त्रण के लिए वर्ष 1962 'राष्ट्रीय क्षय रोग कार्यक्रम' (National Tuberculosis Programme) प्रारम्भ किया गया था। लेकिन इसमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली अतः कम से कम 85: रोगियो के इलाज और 70: रोगियो की पहचान करने के उद्देश्य से संशोधित राष्ट्रीय क्षयरोग नियन्त्रण कार्यक्रम 'डाट्स प्रणाली के साथ 26 मार्च, 1997 को प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक 57.5 लाख रोगियो का इलाज किया गया जिससे 10.35 लाख से अधिक लोगो को मौत के मुहँ से बचाया जा सकता है, इस कार्यक्रम के तहत प्रतिमाह क्ण्व्ज्ै के तहत 13 लाख रोगियो का इलाज किया जाता है।

C- राष्ट्रीय कुष्ठ रोग कार्यक्रमः– सन् 1955 में सरकार ने ''राष्ट्रीय कुष्ठ रोग नियन्त्रण कार्यक्रम'' प्रारम्भ किया था। सन् 1983 में इसे राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन कार्यक्रम में बदलाव को सोचा गया। विश्व बैंक की सहायता से राष्ट्रीय कुष्ठ रोग उन्मूलन परियोजना के रूप में इसके पहले चरण का विस्तार 1993–94 से मार्च, 2000 तक किया गया। कुष्ठ रोग उन्मूलन अभियान वर्ष 2003–04 में आठ राज्यों–बिहार झारखण्ड, उड़ीसा, प0 बंगाल, छत्तीसगढ़ उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश में चलाया गया। अभियान के दौरान 58,000 नये रोगियों का पता लगाया गया और उन्हें बहु औषधियों थेरेपी उपलब्ध करायी गई। राष्ट्रीय स्वास्थ नीति ने 2005 तक कुष्ठ रोग के उन्मूलन का लक्ष्य (मरीजो की संख्या प्रति 10,000 की आबादी पर एक करने) निर्धारित किया। देश में राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य की एक समस्या के रूप में कुछ रोग निवारण का लक्ष्य दिसम्बर, 2005 में हासिल कर लिया और 10,000 की आबादी पर मरीजो की संख्या .95 रह गयी।

D- राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रमः– भारत सरकार ने सन् 1953 में ''राष्ट्रीय मलेरिया नियन्त्रण कार्यक्रम'' प्रारम्भ किया गया। इसका उद्देश्य मलेरिया के फैलाव को रोकना और उसे इस स्तर पर लाना था कि यह सार्वजनिक स्वास्थ्य की बड़ी समस्या न रहे। D.D.T के छिड़काव से मलेरिया के मामलों में तेजी से कमी आयी है।

E- राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियन्त्रण कार्यक्रमः– 'दृष्टिहीनता नियन्त्रण का कार्यक्रम' सन् 1976 में शुरू किया गया। इसका उद्देश्य मौजूदा दृष्टिहीन की संख्या घटकर 0.3: करना था दृष्टिहीनता का मुख्य कारण मोतियाबिन्द, भैंगापन, पुतली, अंधता, बाल अन्धता काला मोतिया बिन्द और मधुमेह अन्य दृष्टिहीन पटल दोष है इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जो सेवायें उपलब्ध है जिनमें मोतिया बिन्द का निःशुल्क आपरेशन, बच्चों में दृष्टिदोष का पता लगाकर उसका इलाज और नेत्रदान में मिली आँखों से पुतली प्रतिरोपण करके पुतली के अंधेपन का इलाज शामिल हैं।

F- पल्स पोलियो प्रतिरक्षण कार्यक्रमः– विश्व स्वास्थ सम्मेलन के 1988 के प्रस्ताव के अनुसार पल्स पोलियो प्रतिरक्षण कार्यक्रम 1995–96 में 3 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों के लिए शुरू किया गया है। पोलियो उन्मूलन की शर्त बढ़ाने के लिए 1996–97 में लक्षित आयु 5 वर्ष कर दिया गया। 1998–99 में शीतकालीन सत्र के दौरान राष्ट्रीय प्रतिरक्षण दिवस के अवसर पर दो बार निर्धारित केन्द्रों पर दवा पिलायी है। इसके बावजूद राष्ट्रीय प्रतिरक्षण ऑपरेशन में 5–6 प्रतिशत बच्चे छूट जाते हैं इसलिए 1990–2000 में केन्द्रों के अलावा NID/SNID के द्वारा दो तीन बार घर–घर जाकर दवा पिलायी जा रही है।

9.9 सार–संक्षेप

इस इकाई में हम लोगो ने परिवार नियोजन, परिवार कल्याण की अवधारणा, परिचय, एवं पद्धतियों के विषय में अध्ययन किया है कि परिवार नियोजन और परिवार कल्याण हमारे परिवार एवं देश के लिए कितना जरूरी है। वे दम्पत्ति जो परिवार नियोजन को अपनाते है वे भविषय में वृद्धि एवं विकास जल्दी करते है उनके परिवार का स्वास्थ भी अच्छा होता क्योंकि परिवार छोटा होने के कारण परिवार का मुखिया अपने परिवार का अच्छा पालन पोषण करता है।

इस इकाई में हम लोगों ने कुछ राष्ट्रीय स्वास्थ कार्यक्रम के विषय में अध्ययन किया है कि कुछ घातक एवं जटिल बीमारियों को किस तरह से योजना बनाकर हम उस बिमारी को कुछ हद तक काबू कर सकते हैं।

9.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. परिवार नियोजन की अवधारणा की व्याख्या करें ?
2. परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण का महत्त्व क्या है ?
3. परिवार नियोजन की प्रमुख पद्धतियो का संक्षेप में वर्णन करें ?
4. विभिन्न राष्ट्रीय स्वास्थ कार्यक्रम उन्मूलन का उल्लेख करें ?
5. राष्ट्रीय एड्स कार्यक्रम कब पारित हुआ ?
6. राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम पर संक्षिप्त नोट लिखें ?

9.11 पारिभाषिक शब्दावली

एड्स	– एक्वायड ईमिनो डीफिसियेन्सी सिन्ड्रोम
एच.आई.वी.	– हयूमन इम्यूनो वायरस
नाको	– नेश्नल एड्स कट्रोल आर्गनाइजेशन।
परिवार नियोजन	–व्यक्ति अथवा दम्पत्तियो द्वारा उनकी इच्छानुसार एक या दो संतान की प्राप्ति हेतु योजना।

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परिवार नियोजन और परिवार कल्याण ,ए0एम0 चाकले ,457.486
2. राष्ट्रीय स्वास्थ कार्यक्रम ,हेल्थ वर्कर के लिए पाठ्य पुस्तक –प्रतियोगिता दर्पण
3- National Health Programme of India – J.Kishore (Fifth Edition) Central Publication, New Delhi

इकाई–10

समान्यता और असामान्यता

Normality & Abnormality

इकाई की रूपरेखा

10.1 परिचय

10.2 उद्देश्य

10.3 असामान्य मनोविज्ञान की अवधरणा

10.4 असामान्यता के कारण

10.5 निर्धारण, मूल्यांकन

10.6 वयस्कों में मानसिक असमानता

10.7 सार संक्षेप

10.8 पारिभाषिक शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 परिचय

हम सभी ने अपने जीवन में कभी–न–कभी किसी समस्या का सामना जरूर किया है, लेकिन भिन्न–भिन्न व्यक्ति इनके साथ भिन्न–भिन्न तरीकों से सामंजस्य करते है। तीव्र गति से होने वाले औद्योगीकरण और भौगोलिकरण से कई लोग चिंता और तनाव की समस्या से मुजरते हैं। लेकिन हर कोई व्यक्ति जो इन समस्याओं को झेल रहे होते हैं, उनको व्यवसायिक चिकित्सकीय सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती है। हमने व्यवहारिक ढंग से सोचने और बात करने के कई रास्ते विकसित किये है, जो कि सामान्य है। लेकिन जो वैज्ञानिक अवधारणा हम मानव–व्यवहार के लिए आवश्यक समझते है, वो सभी विषयों के संवेदनशील।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- असामान्यता की व्याख्या करना जान सकेंगें।
- असामान्यता के लक्षणों को समझ सकेंगें।
- वयस्कों में मानसिक असामान्यता की व्याख्या कर सकेंगे।
- और इन असामान्यता के क्या उपचार है इसे जान सकेंगे।

10.3 असामान्य मनोविज्ञान की अवधरणा

आइये अब हम असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित अवधारणा को समझेंगे–

मनोविज्ञान और मनोरोग का एक लम्बा इतिहास है जो सामान्य और असामान्यता के प्रतिवाद के क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। असामान्यता मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की ही एक शाखा है। जिसके अन्तर्गत असामान्य व्यवहार को विवेचित करते हैं। असामान्यता का शाब्दिक अर्थ सामान्यता से विचलन है। आप आश्चर्यचकित होंगे कि इसे ही असामान्य व्यवहार कहते है। असामान्य व्यवहार कि व्याख्या मनुष्य के अन्दर एक अवयव के रूप में नहीं कर सकते है। यह विभिन्न जटिल विशेषताओं से आपस में जुड़ा होता है। आमतौर पर असामान्यता एक समय में उपस्थिति अनेक विशेषताओं को निर्धारित करता है। असामान्य व्यवहार में जिन लेखों की विशेषताओं को परिभाषित किया जाता है, वो हैं, विरल घटना, आदर्श का उल्लंघन, व्यक्तिगत तनाव, विक्रिया और अप्रत्याशित व्यवहार। आइये इन अवधारणाओं को समझते हैं–

1 **विरल घटनाः**–लोगों का बहुमत औसतन उस व्यवहार को दर्शाता है जो कि उनकी जीवन की किसी घटना से सम्बन्धित होता है। जो लोग औसत विचल को दर्शाते हैं वो बहुत प्रवृत्तिशील होते है।। लेकिन आवृति को सुविचारित नहीं किया जा सकता, जैसे एक मात्र मूलतत्व को असामान्य व्यवहार में निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

2 **आदर्श का उल्लंघनः**–यह उपागम सामाजिक आदर्शी और सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित है। जो विशिष्ट स्थितियों में व्यवहार का मार्ग–प्रदर्शक होता है। यदि एक विशिष्ट व्यक्ति सामाजिक आदर्शो को तोड़ता है, धमकाता है, या दूसरों को चिंतित करता है तो यह विचार असामान्य व्यवहार जैसा है। असामान्यता, स्वीकृत आदर्शो से उच्चस्तर पर विचलित करना माना जाता है। लेकिन इसमें ध्यान देने योग्य बात ये है कि आदर्श मूल्य अलग–अलग सांस्कृतियों में अलग–अलग होते है। एक जगह जो नैतिक होता है वो दूसरी जगह अनैतिक भी हो सकता है यह अवधारणा अपने आपमें बहुत व्यापक है जैसे अपराधी और वैश्याएं सामाजिक मूल्य जोड़ते है परन्तु आवश्यक नहीं है कि उन्हें असामान्य मनोविज्ञान में पढ़ा जाये।

3. **व्यक्तिगत तनाव :–** एक व्यवहार, यदि वो सुविचारित असामान्य है, तो यह तनाव उत्पन्न करता है किसी व्यक्ति में जो इसे महसूस करता है। उदाहरण के लिए, एक

लगातार और भारी मात्रा में उपभोक्ता अपनी मद्यसार की आदत को पहचानता है कि यह अस्वास्थ्यकर हे, और इस आदत को रोकना चाहिए। यह व्यवहार असामान्य जैसी पहचान देता हे। व्यक्तिगत तनाव, आत्म–स्व का नमूना नहीं है, परन्तु जो लोग इससे पीड़ित होते है वो ही इसकी सूचना दे सकते और निर्णय करते है। विभिन्न लोगों में तनाव का स्तर भी बदलता रहता है।

4. **विक्रियाः**–विक्रिया या अयोग्य नमूना उसी व्यक्ति की असामान्य मानता है यदि उसके संवेग, क्रियाएं और विचार उसकी सामान्य सामाजिक जीवन जीने में हस्तक्षेप करते है।उदाहरण के लिए असमान तत्वों के दुरूपयोग के कारण एक व्यक्ति के कार्य–निष्पादन, में बाधा आती है।

5. **अप्रत्याशिताः**–इस प्रारूप में अप्रत्याशित व्यवहार की पुनरावृत्ति होने को लिया जाता है।उपर्युक्त सभी निर्धारक असामान्यता को परिभाषित करने में सहायक होते है। असामान्य व्यवहार के अंतरतम भाग का वर्णन किया है, वह है कुसमायोजन।दिन प्रतिदिन के जीवन की अपेक्षाओं से जुझने एवं उनकी पूर्ति के मार्ग में व्यक्ति का असामान्य व्यवहार कठिनाई उत्पन्न करता है। सामान्य और सामान्य के बीच कोई स्पष्ट विभक्तिकरण रेखा नहीं होंती। यह एक मन की स्थिति होती है जिसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति करता है। एक मनोवैज्ञानिक के अनुसार– ''व्यवहार असामान्य है। यह एक मानसिक विकार का द्योतक है, यदि यह दोनों विद्यमान तथा गम्भीर स्तर तक होते है तो व्यक्ति की सामान्य स्थिति की निरन्तरता के विरूद्ध तथा अथवा मानव समुदाय जिसका वह व्यक्ति सदस्य होता है के विपरित होता है। यह भी विचारणीय है कि असामान्यता की परिभाषा किसी सीमा तक संस्कृति पर आधारित होती है। उदाहरणार्थ–अपने आप से बात करना। एक आसान्य व्यवहार के रूप में माना जाता है। परन्तु कुछ निश्चित पोलीनेशियन देशों तथा परीक्षा अमेरिकी समाजों में इसे देवियों द्वारा प्रत्येक विशिष्ट स्तरीय उपहार माना जाता है।

10.3 असामान्य व्यवहार के कारण :–

अब आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि ऊपर विवेचित कठिनाईयों के क्या कारण हैं। वर्तमान दृष्टिकोण से असामान्य व्यवहार के समाकलन के लिए अनेक प्रारूप हैं। ये प्रारूप आधारित होते हैं मानी हुयी बातों पर जो एक साथ मिलकर हैं कि अध्ययन आँकड़ों की व्याख्या करते है इन प्रारूपों के अन्दर चुने हुए परिणाम होते है। जिनके अन्तर्गत असामान्य व्यवहार की व्याख्या की गयी है। आइये इन प्रारूपों का अध्ययन करें:–

1 **जैविकीय प्रारूप** :–इस प्रारूप के अन्तर्गत यह माना जाता है कि मानसिक विकार जैविक या शारीरिक प्रक्रिया के कारण होता है। इस उदाहरण की चिकित्सीय प्रारूप

भी कहा जाता है। इस के प्रारूप में यह मान लिया जाता है। कि आसाधारण व्यवहार का कारण शरीर के अन्दर ही पाया जाता है। आइये–एक उदाहरण लेते हैं–प्रयोग और सिद्धान्त के आधार पर यह कहा गया है कि दुश्चिन्ता विकार के कारण नाड़ी तन्त्र वाले किसी गड़बड़ी प्रारम्भ होती है और किसी व्यक्ति में आसानी से उभारने या वंशुनागत योग्य बनाने जो विकसित करता है है मनोविदलता को पिछले कुछ सालों में जैविक प्रयोगों ने दिमाग के व्यवहार के समन्वयता के क्षेत्र में बहुत विकास किया है। लेकिन इतना कहना पर्याप्त नहीं है कि जैविक उदाहरण सभी असामान्य मनोविज्ञान के प्रश्नों का उत्तर दे सकता है।

2. **आत्मविश्लेषण का उदाहरण** :–सबसे पहले सिगमण्ड फ्रायड द्वारा विकसित किया गया यह उदाहरण यह मानता है कि अचेतन विवाद है असाधारण व्यवहार का कारण होता सुना है। फ्रायड ने व्यक्तिगत रूप ये यह जोर दिया कि लैंगिग प्रेरणा को रोकने के कारण ज्यादातर चिंता होता है। फ्रायडियव (के दृष्टि से अ दोषों को भी महत्व दिया जाता है जो उत्पन्न किया जाता सुपगों के द्वारा जो कि इस प्रेरणाओं के बदले में होता हैं)इदम् जब इदम् और पराज्यहम् के बीच फंस जाता है और एक आदमी पर दबाव डालता है ठोस बचाव करने वाला रास्ता और कठोर व्यवहार को अपनाये।

3. **व्यवहारिक प्रारूपः**–व्यवहारिक प्रारूप समाहित करता हे। कुसमायोजित व्यवहार की जिसके कारण व्यक्ति समायोजित व्यवहार के लिए सीखने में विफल हो जाता और ये अप्रभावित सीखने की प्रवृत्ति असामान्य व्यवहार को जन्म देते है।

4 **बोधात्मक प्रारूप** :–यह प्रारूप समाहित करता कि जो लोगों के द्वारा जो अर्थ असाधारण व्यवहार को समझने के लिए बनाया गया है वह यह अर्थ आधारित है। लोगों द्वारा प्राप्त अनुभवों पर और साजिशों पर।ऊपर चर्चा किये गए उदाहरणों को ध्यान में रखते हुए हम असाधारण व्यवहार के कारण इस ढंग से वर्गीकृत किये जा सकते है–

1. **जैविक तथ्य** :–विभिन्न जैविक तत्व मनक गड़बड़ी तंत्र का सुचारू रूप से कार्य न करना, दिमाग का ठीक ढंग से काम न करना, एक साथ या व्यक्तिगत रूप से कारण बन सकते है असाधारण व्यवहार खोजो द्वारा यह पाया गया है। मनोविदिलता अधिकतर अनुवांशिकता में मिलते है। इस तरह के बहुत सारे तत्व जैसे वाह्य शारीरिक वंचित है, के कारण भी असामान्य व्यवहार हो सकता है।

2. **मनोवैज्ञानिक कारकः**–असामान्य व्यवहारों में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका अप्रत्यक्ष है इसलिए इसे मापना कठिन है। लेकिन अनेक मनोवैज्ञानिक कारक

जैसे–बचपन में माता–पिता के साथ सम्बन्ध सामाजिकता की ओर उनका व्यवहार, बराबर के व्यक्तियों का समूह आदि एक व्यक्ति में विकसित करते है त्रुटिपूर्ण पहचान, अधिक निराशवाद, अधिक आसक्ति या अधिक संरक्षण को।

3. **सामाजिक–सांस्कृतिक कारकः**–इन कारणों में कुछ विशिष्ट अभी नहीं पाया गया है। इसलिए अभी खोजा जा रहा है। लेकिन तीव्र नगरीकरण, सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक कार्यो में परिवर्तन इत्यादि व्यक्तियों में चिंता, प्रवृत्तियुक्त दबाव, तनाव आदि देते है। इस प्रकार ये कारक असामान्य व्यवहार को प्रबलता से सहायक बना देते है।

10.4 मनोवैज्ञानिक विकारों का निर्धारण

मनोवैज्ञानिको द्वारा कई कारकों एक व्यक्ति का समस्या का सही ढंग निर्धारण से निर्धारण करने में प्रयोग होता है। निर्धारण के दो मुख्य उपागम है, मनोवैज्ञानिक और जैविकीय निर्धारण।

1. **मनोवैज्ञानिक निर्धारणः**मनोवैज्ञानिक निर्धारण के अन्तर्गत साक्षात्कार आता है जो संरचना और स्वभाव दोनों में खुला हो। मनोवैज्ञानिक परीक्षण जैसे–स्वलेख व्यक्तित्व खोज, बुद्धिमत्ता परीक्षण आदि रचनात्मक परीक्षण है, जबकि (इनके अलावा निरीक्षण पद्धति भी किसी व्यक्ति को आंकने में उपयोगी तरीका है) विस्तार सम्बन्धी परीक्षण जैसे– रोरशाक इन ब्लाक टेस्ट, प्रकरण सम्बन्धी परीक्षण खुले परीक्षण में है। इन परीक्षणों के अतिरिक्त निरीक्षण पद्धति भी किसी व्यक्ति को आंकने में उपयोगी है।

जैविकीय परीक्षणः– इस प्रकार के निर्धारण में नई तकनीकियाँ जैसे–सी0टी0 स्केन पीइ.टी. स्केन (Pasitron Emision Tomography) आदि। जो कि दिमाग की विभिन्न संरचनाओं को देखने में मदद करता है। तन्त्रिका मनोविज्ञान परीक्षण भी दिमाग की कमियों को ज्ञात करने में सहायक होता है। उत्तर में परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक परीक्षण के द्वारा जैसे–स्पर्श ज्ञान सम्बन्धी परीक्षण, समय सम्बन्धी परीक्षण इत्यादि। जैविक निर्धारण में मनोशारीरिक नाप भी सम्मिलित है जैसे–नब्ज गति, हृदय गति, चर्म संचालन आदि।

असामान्य व्यवहारों का वर्गीकरण :–अमेरिकन साइकेट्रिक एसोसियेशन के द्वारा तैयार किया गया डाइग्नोस्टिक एण्ड स्टेटिक्ट्रकल्स (Diagnositic & Statistical Manual of Mental Disorder) में असामान्य व्यवहारों का वर्गीकरण उनके लक्षणों के आधार पर किया गया है, जो निम्नलिखित हैं–

डीएसएम–IV वर्गीकरण–असामान्य व्यवहार जो बाल्यावस्था और किशोरों में

मानसिक मन्दन या दुर्बलताः–मानसिक क्षमताओं का विकास जब किसी की उम्र के अनुसार कम होता हैं।

- सीखने की विकृत्ति
- गत्यात्मकता सम्बन्धी विकार–ऐसे विकार जिसमें शारीरिक गतियों में परेशानी हो, जैसे– आँखों और हाथों का सही उपयोग नहीं और अन्य गत्यात्मक क्रिया में।
- संचार विकृति–यह विकार सूचना अथवा संचार को आदान–प्रदान में होने वाले विकार से है।
- ध्यानहीनता एवं विदारक विकार–यह विकार ध्यान न केन्द्रित होने या करने को कहते है।
- बाल्यकाल की खानें और पीनें सम्बन्धी विकार–
- बाल्यकाल एवं किशोरावस्था की अन्य विकृत्तियाँ– इस श्रेणी में आने वाली विकृत्तियां सम्बन्धित हैं, कम मानसिक विकास होना, सीखने में अवरूद्ध होना। जैसे असामान्य मानसिक विकास और कम सीखना, आँखों और हाथों का गलत ढंग से समन्वय, बोलने का विकार, खाने में विकृति आदि प्रमाद, चिन्तविक्षिप्त और उपेक्षा की विकृति और अन्य संज्ञानात्मक विकृति।
- प्रमाद का अर्थ है गलत ढंग से बोलना।
- चिन्त विक्षिप्त या भूलना।
- उपेक्षा की विकृत्ति या नींद की समस्या और अन्य संज्ञानात्मक विकृत्तियाँ।
- सामान्य मानसिक अवस्था के कारण, सामान्य मानसिक विकृत्ति जिसका वर्गीकरण कहीं और नहीं है।
- मद्यपान और औषधि सेवन सम्बन्धी विकार–
- मद्यनिषेध और पदार्थ का दुरूपयोग–जो व्यक्ति मद्य का सेवन अपने दिमाग पर सुखद प्रभाव के लिए प्रयोग करते है, जैसे–गंजा सम्बन्धी विकृत्ति, कोकिन सम्बन्धित विकृत्ति, श्रुतुश्रम से सम्बन्धी विकृत्ति, भांग सम्बन्धित, अफीम सम्बन्धित आदि।

मनोविदलता और अन्य मनोविक्षिप्त विकार : मनोविदलता का अर्थ, कि जब कोई व्यक्ति को सोचने में परेशानी होती है या फिर उसके दिमाग का विभाजन हो जाता है। इस बिमारी में व्यक्ति किसी भी कार्य में पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दे पाता है और उससे उसकी कार्य निष्पादन में कमी आती है।

भावात्मक विकार :–इस प्रकार की मनोविक्षिप्रता में अनुपयुक्त संवेगात्मक अनुक्रियाएँ पायी जाती है। ये संवेगात्मक क्रियाएं या तो बढ़ी हुयी अवस्था में पायी जाती है या फिर घटी हुयी अवस्था में होती है। इनमें तुरन्त चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

विषाद विकृत्ति :–ये विषाद चितवृत्रि से अलग होता है। इसके लक्षण निम्नलिखित होते हैं–

1. असन्तोषजनक एवं चिंता।
2. अपने को दोषी समझता हें
3. पूरी दुनिया मनोरंजक रहित लगती है।
4. एकाग्रता में कमी आदि जिसकी वजह से कई बीमारियाँ जैसे विचार–प्रक्रिया में कमी, खालीपन एवं अपने को किसी योग्य न समझना, थकान आदि।

वृत्तिय प्रतिक्रियाओं की विकृत्ति : यह वह अवस्था है, जिसमें रोगी में उत्साह और विषाद के मिले–जुले लक्षण पाये जाते हैं। कभी–कभी इस अवस्था में रोगी में उत्साह और विषाद की अवस्थाएं एक–दूसरे के बाद बदलती रहती हैं।

दुश्चिन्ता विकार :–कोई भी असमानता जिसमें अस्पष्ट दिशाहीन चिंता का अनुभव होता है और उसका स्रोत पता नहीं होता।

- असंगत विकृत्ति बिना खुले स्थान के भय के अगोराफोबिया (Agoraphobia)
- असंगत विकृत्ति खुले स्थान के भय के अगोराफोबिया (Agoraphobia)
- वह मनःस्ताय किसी वस्तु, परिस्थिति या प्राणी के प्रति असंगत भय है और किसी भी समय हो सकता है, जैसे विशेष चीज के प्रति भय या सामाजिक भय।
- मनोग्रस्तता–बाह्मता विकृत्ति,
- साधारण चिन्ता विकृत्ति,
- **स्वास्थ्य अतिचिन्ता विकृत्ति**–इस बीमारी का रोगी अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तथा शरीर के विभिन्न अंगों के कथित रोगों और विकारों से सम्बन्धित विचार हर समय उसके मस्तिष्क में घिरे रहते है।
- **रूपान्तरण विकृत्ति**– जो रोगी इस रोग से पीड़ित होते है, उसमें दैहिक रोग निदान–शास्त्र के अभाव में कुछ शारीरिक लक्षण उत्पन्न होते हैं जैसे–गत्यात्मक लक्षण, संवेदनशून्यता लकवा इत्यादि।
- **दैहिक विक्रन्ति**– इसमें वह शिकार आते है, जिसमें शारीरिक समस्याएं होती है, परन्तु कोई दैहिक कारण नहीं होता।
- मनोदैहिक विकृत्ति– इस विकार में प्रमुख समस्याएं होती है–सिरदर्द, थकावट, मिचली, पेढू में दर्द और शरीर के विभिन्न भागों में दर्द। व्यक्ति सोचता है कि वह बीमार है और इसको सहारा देने के लिए लम्बा इतिहास बताते हैं, और खूब दवाईयाँ खाता है।
- पश्यघाव दबाव विकार
- तीव्र दबाव सम्बन्ध विकार

➢ बाडी डिसमोरफिक डिसआर्डर–

बनावटी या कृत्रिम विकृत्रि :– पृथक्करण की विकृत्ति, इसके अन्तर्गत अलग करने की भावना, स्मृति त्रुटि आदि आता है। कृत्रिम स्मृतिहीनता में बिना किसी इन्द्रिय सम्बन्धी परिवर्तन के स्मृति खत्म हो जाती और पृथक्करण असिथरता में अप्रत्याशित घर से दूर यात्रा और अपनी नयी पहचान बनाना। इसमें रोगकी कई बार सुबह जागने पर अपने को नयी जगह पाता है। बहुखमी व्यक्तितत्व विकार–इसके अन्तर्गत एक ही व्यक्ति में दो या अधिक प्रकार के व्यक्तित्व मौजूद रहते है। जिसका स्वयं उस व्यक्ति को भी पता नहीं होता है। कामुक एवं लिंग पहचान सम्बन्ध विकार–ये विकार किसी व्यक्ति के असामान्य कामुक कार्यों से सम्बन्धित हे, जिसके अन्तर्गत कामुक उद्दोलन इच्छा विकृति, कामुक पीड़ा विकार।

लिंग पहचान सम्बन्धीः–ये विकार जो अक्सर रोगी के लिए बचपन के किसी कटु अनुभव के कारण हो जाते है, व्यक्ति के सामान्य कामुक कार्य में बाधा बनते हैं।

खाने सम्बन्धी विकार :–ये विकार अधिक या कम खाने से सम्बन्धित हैं। अनोरेक्सिय नरवोस जिसके अन्तर्गत व्यक्ति एक लम्बी अवधि तक कम मात्रा में खाना खाता है। Bulimia Nervosa- जिसके अन्तर्गत व्यक्ति खाना खाने के बाद उल्टी कर देता है।

निद्रा–सम्बन्धी विकार :–प्रारम्भिक नींद में विकार, डिस्सोमनिया, पारासोमनिया पैरोमानिया (आग से बिना कारण भय) या विस्फोटक सम्बद्धी विकृत्ति, पैथोलाजिक गैम्बलिंग आदि।

प्रवृत्ति नियंत्रण विकृत्ति :–जिसका कहीं वर्गीकरण नहीं किया गया है। क्लिपटोमानिया (अनजाने में चुराना) सामंजस्य विकृति व्यक्तित्व विकृति, मानसिक उन्माद (व्यापक, भ्रमित विचार, अप्रत्यय, ईर्ष्या, जल) मानस रोग सम्बन्धी मनोविद्यंसतां, असामाजिक, मध्यवर्ती अभिनय कला, आत्मशक्ति सम्बन्धीं (जो व्यक्ति अपने रूप से प्यार करता है।) आश्रित को त्यागना, मनोग्रसितता बाध्यता (अनुलम्बन, अनचाहा और अविचलित विचार, अनिवार्य स्वाभाविक क्रिया को दोहराना)।

10.5 वयस्कों में मानसिक असमानताः–

श्रीमान् X ऐसी फर्म में कार्य करते हैं, जिनमें उनका कार्य लोगों के साथ विवेचन करना हे। वह शर्मीले व्यक्ति हैं और वे विशेषकर स्त्रियों से बात करते समय विक्षुप्त हो जाते हैं। जिस समय वह महिलाओं से संचार करते हैं, वह इन लक्षणों से ग्रसित होते हैं जैसे– हथेलियों में पसीना आना, गला, सूखना, पेट में सूजन। जब वह स्त्रियों को देखते हैं तो क्रमशः इन लक्षणों से ग्रसित होते हैं। अपनी दुश्चिन्ता से बचने के लिए वह आानतावश निम्नलिखित कठिनाईयों जैसे–सिर में तेज दर्द या पेट में दर्द से पीड़ित हो जाते है। उन्हें

सलाह दी जाती है कि वह आराम करे और अपने मनोचिकित्सक से विचार करता है। कि उसे कोई मनोरोग नहीं है।

यह एक विशिष्ट चिन्ता का विषय है। लेकिन चिन्ता को यदि पहचाना न जाए और सही इलाज न किया जाए तोयह गंभीर रूप धारण कर लेती है। इस पाठ के इस क्रम में हमने कुछ मनोवैज्ञानिक विक्रियाओं को पढ़ा जो विक्रियाओं के क्षेत्र में है। आपने इस वर्गीकरण को अवश्य पढ़ा होगा जो DSM-IV के अनुसार पिछले पृष्ठ की सूची में दिया गया। इन विवेचनाओं का अध्यन करना आसान नहीं है, अतः हम इन पर प्रकाश डालेंगे।

- दृश्चिन्ता प्रक्रिया
- व्यक्तित्व असमानता
- मनोविदिलिता

चिन्ता असामान्यता:—दुश्चिन्ता की व्याख्या इस प्रकार कर सकते है कि वह एक साधारण डर और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझता (महसूस करता है जैसे हृदय गति का बढ़ना, भुजाओं में तनाव आना आदि) भय और दुश्चिन्ता में यह अन्तर है कि भय का कोई कारण होता है जब कि दुश्चिन्ता का कारण नहीं होता। भय के कारण का पता लगाने के बाद इसे दूर किया जा सकता है और दुश्चिन्ता बिना कारणा के होने के कारण वातावरण में परिवर्तन करने से जल्दी दूर नहीं होती और दुश्चिन्ता लम्बे समय से ग्रस्ति व्यक्ति में ही पहचाना जा सकता है। DSM-IV के अनुसार छः प्रकार की चिन्ताएं हैं जो दुर्भीत, भय, विकार, आनुवंशिक चिन्ता विकार, मनोग्रसिता बाध्यता विकार। चिन्ता के विकार के अन्तर्गत अनेक प्रकार के लक्षण आते हैं जैसे चिन्ता का कई बार अनुभव करना चिन्ता, डर इत्यादि। कई बार कई लक्षण कई विकारों मे पाए जाते हैं। सबसे पहले हम दुर्भति को पढ़ते हैं।

1. **दुर्भीति** :—दुर्भीति की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं कि दुर्भीति किसी वस्तु या परिस्थिति के प्रति सतत् भय है।' जो रोगी के लिए वास्तविक खतरा उपस्थित नहीं करता है। इस रोग में खतरा वास्तविक स्थिति से अत्यधिक बढ़े—चढ़े अनुपात में अभिव्यक्त होता है। जैसे— ऊँचाई से अत्यधिक डर, जनवरों से डर इत्यादि। दुर्भीति को भी श्रेणीबद्ध किया गया है जैसे क्लोस्ट्रोबिया सामान्य बन्द स्थानों से भय की कोटी में आता है। इसमें बन्द स्थानों से भय शब्द इस बात को दर्शाता है जिसमें एक व्यक्ति तनाव से गुजरता है, और सामाजिक/व्यावसायिक क्षति होती है।
2. **भय—विकार** :—आपने कभी महसूस किया हो बिना किसी स्पष्ट कारण के आपको अचानक तीव्र भय का अहसास हुआ हो, जिसके कारण आपका हृदय लगातार धड़कता और हथेलियों में पसीना, या काँपना ? यदि आपका उत्तर 'हाँ' है, तो आप प्रायः भय का अनुभव करते हैं। भय विकार की विशेषताओं में बिना किसी न्यायिक

स्थिति के बहुत ज्यादा डर और आंतक आता है। इन हमलों द्वारा कुछ शारीरिक लक्षण को जैसे हृदय की धड़कन बढ़ाना, आलसीपन, काँपना, साँसों का फूलना आदि इसके द्वारा वैज्ञानिक लक्षण भी दिखाई पड़ते है जैसे– मरने का डर या पागलपन।

4. **मनोग्रस्तता–बाध्यता विकार** :–इस के अन्तर्गत किसी व्यक्ति में बाध्यता और मनोग्रस्तता की होती है और जिसके कारण– एक व्यक्ति के जीवन में तनाव और गम्भीर तनाव को पैदा होता है। उदाहरणार्थ–बार–बार हाथों को धोना। इस प्रकार के विकार एक व्यक्ति में चिन्ता के भाव पैदा करते है जो कि अनापेक्षित आदतों की क्रिया को बार–बार दोहराता हे। मनोग्रस्तता सतत् विचार या उपाय है। बाध्यता इच्छित विचार या मानसिक क्रियाओं के निष्पादन में मनोग्रस्तता जिम्मेदार है। कुछ सामान्य मनोग्रस्त–बाध्यताएँ हैं, जैसे–हाथों को धोना, छूना, गिनना आदि।

5. **पश्य–घाव दबाव विकार** :–जो लोग कष्टदायी घटनाओं का अनुभव करते है। या कष्ट देने वाले लक्षणों का जो बार–बार इस विकार के अन्तर्गत दिखायी देते है या आते है। इस विकार में रोगी उस कष्टदायी घटना का पुनरावलोकन होता हे। इस विकृति के बहुत से लक्षण है, जैसे–रात्रि दुस्वप्न, अपने विचारों से भागना, चीखना–चिल्लाना आदि। ये समस्यांए जीवन–पर्यन्त भी रह सकती है।

6. **सामान्य–दुश्चिन्ता विकार** :–दुश्चिन्ता, चिन्ता की बढ़ी हुयी अवस्था है और इसमें व्यक्ति अस्पष्ट दिशाहीन चिन्ता का अनुभव करता है जिसका स्रोत वह नहीं बता पाता। इसके मनोसामाजिक लक्षण होते हैं, किसी खतरे के बारे में चिन्ता करना, ध्यान केन्द्रित न कर पाना, निर्णय न ले पाना, हल्का तनाव अनुभव करना और थकावट महसूस करना आदि। वे लोग जो प्रतिदिन एक सा कार्य करते हैं या रात्रि में कार्य करते हैं जैसे– पुलिसकर्मी, सुरक्षाकर्मी, अक्सर इस बीमारी से ग्रसित रहते हैं।

7. **व्यक्तित्व विकार** :–इसमें जब कोई व्यक्ति लगातार कुसामायोजित विचार में सोचता है, वैसा ही कार्य करता है जिससे उसकी सामान्य जीवन का कार्य प्रभावित होता है या खराब होता है उदाहरणार्थ, कोई आश्रित व्यक्तित्व वाला व्यक्ति हमेशा आज्ञाकारी रहेगा, और अपना व्यवहार, असन्तुलित रखता हे, ये व्यक्ति अपना निर्णय खुद नहीं ले सकता और उनको बहुत ध्यान की आवश्यकता होती है। जो नाटकीय व्यक्तित्व विकार से ग्रसित है वो हमेशा बहुत संवेगात्मक व्यवहार दिखायेगा और हमेशा दूसरों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करेगा। एक और समाजविरोधी व्यक्तित्व विकार–इस प्रकार के व्यक्ति लापरवाह होते है और उनका व्यवहार

असंगठित होता हे, ये सम्पत्ति को चुराने या नुकसान पहुँचाने का कार्य करते हैं, और इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कभी स्वयं के उपचार के लिए पहल नहीं करते हैं।

8. **मनोविदलता:**—यह भयंकर असाध्य रोग हें यह रोग सभी समाजों में पाया जाता है यह एक अति गम्भीर रोग है जो व्यक्ति को प्रत्यक्षीकरण, संवेगो, विचारों और व्यवहार को अत्याधिक बाधित्त कर देता है। मनोविक्षिपता के अन्य रोग मनोविदलता के समान गम्भीर नहीं होते है। मनोविदलता के रोगी की विचार—प्रक्रिया, व्यवहार आदि रोग की गम्भीरता बढ़ने के साथ—साथ विघटित होती चली जाती है। सामान्य अवस्था में विघटन कम मात्रा में और तीव्र अवस्था में विचारों का विघटन अधिक मात्रा में होता है। इस अवस्था में मनुष्य अपने आप से कोई निर्णय नहीं ले पाता हे। उसकी विचार—प्रक्रिया कभी—कभी पूर्णतः अवरूद्ध सी हो जाती है। आत्मा व्यक्ति का केन्द्र—बिन्दू है, जिसका कार्य व्यक्ति का समन्वय करना है। यह आत्म विश्रंखलित, विसरित और अव्यवस्थित हो जाता है। व्यक्ति में आतंक, विशेष रूप से उस समय उत्पन्न होता है, जब उसमें निम्न लक्षण होते है। इसमें व्यक्ति भ्रमित हो जाता है और गलत धारणा बना लेता है और बिना प्रेरक के उत्प्रेरित होगा इसके अन्तर्गत व्यक्ति की सोचने की शक्ति खत्म हो जाती है जैसे व्यक्ति अभी अपने करीबी रिश्तेदार की बात कर रहा है। तुरन्त दूसरी बात करने लगता है। उन बातों का आपस में कोई सम्बन्ध न हो।ज्यादातर मरीज अपने विचार को एक नियम पूर्णता के रूप में दर्शाते हैं जैसे भ्रमित होना विचारों में असम्बद्धता।

9. **अनुभव में रूकावट** :—अनुभवों में रूकावट में व्यक्ति अपने शरीर से अलग महसूस करता है (अव्यक्तिकरण)।

10. **संवेगात्मक भाव में रूकावट** :—मनोविदिलता के रोगी की संवेगात्मक अभिव्यक्ति में रूखापन और दिखायी देता है, जब यह लक्षण सामान्य अवस्था में होता है। इस संवेगात्मक भाव में अनेक परिणाम आते हैं, मरे हुए पर हँसना, शोक समाचार पर रोना आदि। मनोविदितता में व्यक्ति के चेहरे पर कोई भाव नहीं होतें।

11. **बोलने में रूकावट** :—बोलचाल में असमानता और बात करने में हकलाना और कुछ दिनों अथवा घण्टों तक में बोलना आदि।

12. **सामाजिक वास्तविकता से पलायन** :—मनोविदिलता का रोगी वास्तविकता से पलायन करता है। वे अपने आप को परिवार से अलग हटकर भावानात्मक रूप में महसूस करता है।

13. **प्रेरणात्मक :**—मनोविदिलता से ग्रस्त व्यक्ति में कम प्रेरणा के लक्षण देखने को मिलते हैं।

मनोविदलता के तीन प्रमुख प्रकार होते है— पैरानाइड मनोविदलता, कैटाटोनिक मनोविदलता और असंघटित मनोविदलता। पैरानाइड मनोविदलता के प्रमुख लक्षण हैं— व्यामोह और विभिन्न प्रकार के विभ्रम। यह रोगी मंदेह और चिंतित रहते हैं। इन रोगियों को आशंका रहती है कि उसके रिश्तेदार और सम्बन्धी उस पर निगरानी रख रहे हैं, उसका पीछा कर रहे हैं या उसे मारना चाहते हैं आदि। Catatonic मनोविदलता और गत्यात्मकता से सम्बन्धित हैं— इस रोग की दो अवस्थाएं होती है, मूर्च्छित अवस्था, उत्तेजित अवस्था जिसमें व्यक्ति घंटों तक एक ही वाक्य को रटना हैं या फिर कुछ क्रिया लगातार करते रहना। इसके अलावा एक ही अवस्था में लगातार कई घण्टें बैठना।असंघटित मनोविदिलता के प्रमुख लक्षण है—असंघटित बोलना, विचित्र व्यवहार करना और किसी भी चीज का प्रभाव न होना। वास्तविकता से कोई मतलब नहीं होना और गंदा या बिखरा हुआ रख—रखाव इसके अतिरिक्त गलत समय पर हँसना।

14. **उपचारः—** मनोवैज्ञानिक विकारों के लिए कई प्रकार के उपचार उपलब्ध है। मनोवैज्ञानिक विकारों के लिये मनः चिकित्सा सबसे सफल और जानी मानी चिकित्सा है। इस चिकित्सा पद्धति के अन्तर्गत रोगी और चिकित्सक के सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें मौखिक और अमौखिक दोनों प्रकार का सम्प्रेषण होता है। यह चिकित्सा केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा ही अभ्यास करनी चाहिये जिसने इसमें प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। चिकित्सा रोगी और चिकित्सक के मध्य गोपनीय सम्बन्धों पर आधारित होनी चाहिये। यह उपचार विधि रोगी के कुसमायोजित व्यवहारों को बदलने में उपयोगी होती है और रोगी को सामाजिक वातावरण में सामायोजित करने में मदद करती है। चिकित्सा के तीन रूप होते हैं वे हैं— प्रारम्भिक चरण, मध्यचरण और अन्तिम चरण। प्रथम चरण में रोगी से साक्षात्कार और उससे अच्छा सम्बन्ध बनाया जाता है। मध्य चरणउस स्वरूप का पालन करता है जिसमें उपचारिक उपक्रम होता है। इसमें दूबारा, अनुभवों को सीखना, मनोचिकित्सीय सम्बन्ध और प्रेरणा तथा आशा को सम्मिलित किया जाता है। ये चिकित्सा एक सफल और आगे चलने वाली मांग के अन्तराल पे समाप्त हो जाती है।

अब हम विभिन्न प्रकार के चिकित्सा का अध्ययन करते है—

1. **जीव चिकित्सा उपचारः**—जिल लोगों को स्वास्थ्य प्रशिक्षण दिया जाता है वो मानसिक बीमारी को शारीरिक बीमारी से जोड़ते है। अतः वो उनका चिकित्सीय

इलाज करते है। जो चिकित्सा मनोवैज्ञानिक विकार के लिये प्रयोग की जाती है वो हैं :– Insulin coma उपचार मनोविदिलित से ग्रसित व्यक्तियों के लिए विद्युत धारा को दौड़ाया जाता है जिससे की उथल–पुथल की स्थिति पैदा हो। मनोविकार, तनाव और चिन्ता का इलाज दवाइयों से भी किया जाता है। इन दवाओं को हम psychotropic या antipsychotic दवाये भी कह सकते है।

2. **मनस् चिकित्सा** :–मनस् चिकित्सा मनोगाहनीय संदर्श पर आधारित है। इस संदर्श के पीछे मुख्य विचार ये है कि मनोवैज्ञानिक समस्यायें बाह्मजीवन अनुभाव का परिणाम होता है। मनोचिकित्सक विभिन्न प्रक्रियाओं का इस्तेमाल करता है जो संस्था मुक्त होती है जहाँ मरीज को वो बात बोलने को कहा जाता है। जो उसके दिमाग में होती है तथा संक्रमण विश्लेक्षण किया जाता है। उसके सपनों का विश्लेषण तथा संक्रमण विश्लेषण जिसका अर्थ है कि मरीज चिकितसक से उसी तरह बरताव करता है जिस तरीके का बरताव उसने अपने जीवन में अन्य लोगों से किया था।

3. **व्यवहारिय चिकित्सा** :–ये चिकित्सा सीखने के सिद्धान्त पर आधारित है। व्यवहारिय चिकित्सा में जिन प्रक्रियायों का इस्तेमाल किया जाता है वो हैः क्रमबद्ध तरीके से असम्वेदनशील बनाना, द्वेषचिकित्सा घुणतीय चिकित्सा, आधुनिक प्रक्रिया तथा जैवकीय कारण।

4. **संज्ञानात्मक चिकित्सा** :– ये चिकित्सा मान्यता प्रदति, नकारात्मक विचार में बदलाव और मानवग्रहण विश्वास पर ज्यादा दबाव देती है। इनमें से पहली चिकित्सा है– Beck's चिकित्सा वो चिकित्सा है जिसमें एक व्यक्ति को मदद मिलती है कि वो अपने नकारात्मक विचार को मान्यता प्रदान करें तथा उसकी व्याख्या करे। दूसरी चिकित्सा है Rational Emotive चिकित्सा है जो कि मानवग्रहण विचारों की पुनः संरचना, स्व0–मूल्यांकन और विश्वास प्रणाली को बदलने की कोषिष करता है।

10.6 सार संक्षेप

हमने इस अध्याय में असमान्य व्यवहार के अनेक प्रकार तथा अवधारणाओं का अध्ययन किया है। असमानता एक समय में उपस्थित अनेक विशेषताओं को निर्धारित करता है। असामान्य व्यवहार में इन लेखों की विशेषतओं को विरल घटना, आदर्श का उल्लंघन व्यक्तिगत तनाव, विक्रया और अप्रत्याशित व्यवहार। हमने असामान्य व्यवहार के कारण और जो तरीके सामान्य व्यवहार को अपनाने के लिये दिये गये हें उनका अनेक उदाहरणों सहित अध्ययन किया है। इस अध्याय के अन्त में हमने वयस्कों के उपस्थित अनेक असामान्य विकृतियों को पढ़ा जैसे–दुश्चिन्ता विकृति, व्यक्तित्व विकृति एवं मनोविदिलता। हमने

मनोविदिलता के प्रारम्भिक लक्षणों पढ़ा एवं मनोविदिलता के विभिन्न प्रकार भी जाने। विभिन्न प्रकार की उपचार पद्धतियाँ भी मनोवैज्ञानिक विकृति लिये उपलब्ध है। मनोवैज्ञानिक विकृति के उपचार के लिये मनोचिकित्सा एक सफल और जानी मानी विधि है। जिसमें रोगी और चिकित्सक के बीच का सम्बन्ध बहुत महत्वपूर्ण है। मनोचिकित्सा के प्रमुख पाँच प्रकार है– वह लोग जो औषधिय प्रकार से मानसिक बीमारी का इलाज शारीरिक बीमारी की तरह करते हैं। कुछ और उपचार पद्धतियाँ जो कि मनोवैज्ञानिक विकृतियों के लिए उपयोग की जाती हैं वह है–इन्सुलिन आघात चिकित्सा, विद्युत आघात चिकित्सा मनोविक्षिप्त विरोधी औषधियाँ। मनोगत्यात्मकता उपचार–मनोविश्लेषण पर आधारित है। विभिन्न तकनीकियाँ जो मनोवैज्ञानिक उपचार में प्रयोग होती है वह हैं–स्थान्तरण, साहचर्य, स्वप्न विश्लेषण और व्यवहार उपचार पद्धति में व्यवस्थित विसुग्रहीकरण, धनात्मक पुनर्बलन क्रमबद्ध प्रयोग, विभुखी उपचार पद्धति का उपयोग किया जाता है।

संज्ञानात्मक उपाचार नाकारात्मक विचारों और कुसमायोजन के कारण जानने में मदद करता है और दबाव देता है।

10.7 पारिभाषिक शब्द

1. **असामान्यताः–** असमान्यता शब्द के सम्मिलित रूप से एक शब्द का बोध होने लगा, जिसका अर्थ मानक से दूर, अथवा वह जोकि मानक से विचलित रहता है।
2. **मानसिक विकृति–**मस्तिक में गम्भीर चोट में भी व्यवहार असामन्यतायें कम मात्रा में उत्पन्न होती है। दूसरी और मस्तिष्क कि छोटी–छोटी चोटे भी व्यक्ति के व्यवहार में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर देती है उसे मानसिक विकृति कहते है।
3. **कुसमायोजन–** जब हम आसपास के वातावरणा में सही से समायोजित नहीं हो पाते।
4. **जैविकीय :–** इस उपचार को मेडिकल चिकित्सा भी कह सकते है। इसके अन्तर्गत जीवों की बीमारी का पता लगाना मांसिक रोगियों का आपात कालिन उपचार भी इन्हीं उपचार पद्धतियों द्वारा प्रारम्भ किया जाता है।
5. **संज्ञानत्मकता–** किसी व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक उपचार जब बिना दवाइयों या द्वारा होता है।
6. **मनोविश्लेषण–** इस सिद्धान्त और तरीका है जिसके द्वारा मानसिक एवं भावात्मक समस्याओं का इलाज किया जाता और हमारे के

विलक्षणता का मूल आधार तथा शक्तिशाली तर्क यह है कि इस सिद्धान्त के विभिन्न आधार भूत से प्रत्ययों तथा जीवन के व्यवहारिक तथ्यों का घनिष्ठ, ...सम्बन्ध स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

10.8 अभ्यास प्रश्न

अपनी प्रगति को जॉचे–1

1. **असत्त वृत्तान्त** :–व्यक्तियों का समूह एक सामान्य व्यवहार को प्रदर्शित करता है जो व्यक्ति अपने को सामान्य दर्शाते है उनमें उच्चतम गुण होते है। लेकिन गत्यात्मकता को आत्मा के रूप में नहीं समझा जा सकता है असामनता व्यवहार को पहचानने के रूप में।

आदर्शो का उल्लंघन या नैतिक दृष्टिकोण :–इस दृष्टिकोण के अनुसार सामान्य व्यक्ति का व्यवहार उसकी संस्कृति, धर्म और नैतिक नियमों के अनुसार होता है और असामान्य व्यक्ति का व्यवहार उसकी संस्कृति, धर्म और नैतिक नियमों के अनुसार नहीं होता हे। संक्षेप में अनैतिक व्यवहार ही असामान्य व्यवहार है। नैतिक एवं अनैतिक की परिभाषा करना कठिन होता है क्योंकि एक समाज में जो नैतिक हे, वहीं दूसरे समाज में अनैतिक समझा जाता है। यह अवधारणा अपने आपमें बहुत व्यापक है जैसे अपराधी और वेश्याएँ भी समाज का नैतिक दृष्टिकोण तोड़ती है परन्तु असामान्य मनोवैज्ञानिक में नहीं पढ़ें जाते है।

व्यक्तिगत दृष्टिकोण तनाव :–एक व्यवहार, जो सुविचारित असमान्य है यदि यह किसी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करता है जो इसे महसूस करता है। उदाहरण के लिए–एक नियमित और भारी मात्रा में उपभोक्ता अपनी मधसार आदत को समझता है कि यह अस्वस्थ और वो अपनी इच्छा से इस आदत को रोकना चाहता है, इस व्यवहार को असमान्य कहा जा सकता है। व्यक्तिगत तनाव आतम–स्व का नमूना नहीं है, क्योंकि विभिन्न लोगो जो इस मद्यसेवन से पीड़ा महसूस करते है वो ही यह निर्णय ले सकते है कि यह आसान्य व्यवहार है या नहीं।

विक्रिया :–विकिक्रया या अयोग्यता रूप एक व्यक्ति को असमान्य समझता है जब तक कि उसके भाव क्रिया या सोच उसके लक्षण को नहीं दर्शाते है कि वो इस समाज में एक सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे है। उदाहरण के लिए असमान तत्वों के उपयोग से किसी व्यक्ति के कार्य निष्पादन में बाधा आती है।

अनपिक्षण प्रारूप :–इस प्रारूप में अप्रत्याशित व्यवहार की पुनरावृत्ति होने को लिया जाता है।

अपनी प्रगति को जॉचे–2

1. यह विचार ये बताते है कि मानसिक विकार मनोवैज्ञानिक या शारीरिक प्रक्रिया के कारण होता है। इस प्रारूप को हम चिकितसा रूप भी कह सकते है। प्रत्ये व्यक्ति जो इन नमूनों पर कार्य करते है। वो ये सोचते है कि असामान्य व्यवहार के उत्तर शरीर के अन्दर ही छीपे होते है। उदाहरण के लिए–प्रयोग और सिद्धान्त के आधार पर यह कहा गया है कि चिंता विकट पंत नाड़ी तन में होने वाली किसी गड़बड़ी को रोकता है और जो किसी व्यक्ति में आसानी से उभारने या वंशानुगत योग्य बनाने का कारण बनता है ताकि मनोविदलता उत्पन्न हो सके। पिछले कुछ वर्षो में जैवकिय प्रयोगों ने छली दिमाग के व्यवहार के समन्वयता के क्षेत्र में बहुत विकास किया हैं। लेकिन इतना कहना पर्याप्त नहीं है कि जैविक उदाहरण सभी असाधारण आत्मविकास के प्रश्नों का उत्तर दे सकता है।

2. जाँचने के दो प्रमुख उपागम होते है– मनोवैज्ञानिक और जैवकिय जाँच।

मनोवैज्ञानिक जाँच :मनोवैज्ञानिक जाँच के अन्दर साक्षात्कार का समावेश होता है। जो कि संरचनात्मक तथा खुली प्रकृति का होता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण जैसे संयम जाँच व्यकितत्व खोज बुद्धिमत्ता परीक्षण रचनात्मक परीक्षण है और विस्तार सम्बन्धी परीक्षण जैसे शेरशाम इन ब्लाक टेस्ट, प्रकरण सम्बन्धित टेस्ट खुले परीक्षण है। इन परीक्षणों के अतिरिक्त निरीक्षण पद्धति भी किसी व्यक्ति के आंकलन में उपयोगी है।

जैवकिय निर्धारण :जैवकिय निर्धारण अपने कलात्मक तरिकों का प्रयोग करता है जैसे– (T– स्केन, PET– स्केन (Positron Emission Tomogrophy) आदि जैसे दिमाक के विभिन्न संरचनाओं को देखा जाता है।

अपनी प्रगति को जॉचे : 3

1. दुशचिन्ता कि व्याख्या हम इस तरह हम व्याख्या कर सकते है कि वह कि यह भय और चिन्ता की भावना होती है और रोगी में कुछ शारीरिक लक्षण पाये जाते है, जैसे–दिल की धड़कन बढ़ना, मांसपेशियों में खिचॉव और पसीना आना आदि। भय और दुश्चिन्ता में यह अन्तर है कि भय का कोई कारण होता है, और एक बार यह कारण पता चल जाये तो भय दूर होने लगता है जबकि दुश्चिन्ता किसी एक विशिष्ट कारण से नहीं जुड़ी होती और वातावरण में परिवर्तन से जल्दी दूर नहीं होती। दुश्चिन्ता विकार लम्बे समय से ग्रसित दुश्चिन्ता के समय ही पहचाना जा सकता है।

2. मनोविदिलता के तीन प्रमुख प्रकार होते है–कैटाटोनिक मनोविदिलता पैरानाइड एवं असंघतिटत मनोविदिलता। पैरानाइड मनोविदिलता के प्रमुख लक्षण हैं– व्यामोह

और विभिन्न प्रकार के विभ्रम (जैसे कुछ सुनाई देना आदि। यह रोगी– आशंकित और चिन्तित रहते है एवं इन्हें शक रहता है कि कोई उनका पीछा कर रहा है या उन्हें नुकसान पहुचाना चाहता है। कैटाटोनिक मनोविदिलता गतयात्मकता सम्बन्धी विकोरों से है। इसमें रोगी की दो अवस्थायें होती है। मूर्च्छित अवस्था एवं उत्तेजित अवस्था में रोगी लगातार एक ही वाक्य दोहराता है या एक ही क्रिया करता है और पूर्च्छित अवस्था में लगातार एक ही प्रकार से कई घण्टों बैठना।)

अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण तंत्र (International Classification System)

अमसान्य व्यवहारों को वगीकृत करने का प्रयास काफी पुराना है और इसका उल्लेख हमें ग्रीक, रोमन तथा मिस्र देशवासियों (Egyptians) द्वारा प्रदत्त व्याख्याओं से स्पष्ट रूप से मिलता है। सचमुच में एक स्पष्ट एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र की ओर ध्यान 19वीं शताब्दी में गया जब अमेरिका तथा यूरोप के कई देशों में मानसिक रोगियों के उपचार के लिए विभिन्न तरह के मानसिक अस्पताल खोलने का सार्थक प्रयास किया गया। पेरिस में 1889 में कॉंग्रेस ऑफ मेन्टल सायंस (Conrgress of Mental Science) ने एक एकांकी वर्गीकरण तंत्र (single classification system) का प्रतिपादन किया परंतु इसका उपयोग कई कारणों से बहुत लोकप्रिय नहीं हो पाया। इसके पहले ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain) ने 1882 में स्टेटीस्टीकल कमेटी ऑफ दी रायल मेडिको साइकोलॉजिकल एशोसियेशन (Statistical Committee of the Rolay medico Psychological Association) ने कुसमायोजी व्यवहार के वर्गीकरण का एक तंत्र का प्रतिपादन किया। अमेरिका में 1886 में 'एशोसिएशन ऑफ मेडिकल सुपरीन्डिन्टेस ऑफ अमेरिकन इन्स्टीच्यूशन फॉर दी इनसेन' Assocation for Medical Superitendents of American Institutions for the Insane) ने उक्त ब्रिटिश तंत्र के संशोधित प्रारूप को स्वीकार किया। यह एशोसिएशन आज के अमेरिकन मनश्चिकित्सीय सं (American Psychiatric Association) का अग्रदूत (forerunner) माना गया है। तब 1913 में एशोसिएशन ने एक नया वर्गीकरण तंत्र को स्वीकार किये जिसमें इमिल क्रेपलिन (Emil Kraeplin) के विचारों को भी सम्मिलित किया गया। सचमुच में क्रेनलिन जो एक जर्मन मनश्चिकित्सक थे, को श्रेणीबद्ध वर्गीकरण तंत्र (Categorical classification system) का जनक माना जाता है।

1948 में वर्ल्ड हेल्थ ऑरगनाइजेशन (World Health Organisation or WHO) ने 'इंटरनेशनल स्टेटीस्टीकल क्लासिफिकेसन ऑफ डिजेज, इनजुरिज एण्ड काऊजेज ऑफ डेथ' (International Statistical Classification of Diseases, Injuries and Causes of Death, or ICD) के छठा संस्करण (Sixth edition) का प्रकाशन किया जिसमें मानसिक रोगों का एक औपचारिक वर्गीकरण (formal classification) का प्रकाशन

किया गया जिसकी मान्यता न केवल ब्रिटेन बल्कि अन्य कई देशों में काफी रही। इसके तुरंत बाद अर्थात् ICD–6 के प्रकाशन के तुरंत बाद अमेरिकन मनश्चिकित्सक संघ (American Psychitric Association) ने एक तुलनातमक रूप से अधिक प्रभावकारी वर्गीकरण तंत्र का प्रकाशन किया जिसे 'डायग्नोस्टिक एण्ड स्टेटीस्टिकल मैनुअल ऑफ मेंटल डिसऑर्डर' (Diagnositic and Statistical Manual of Mental Disorder या DSM कहा गया। इसे DSM-I कहा गया जिसका प्रकाशन 1952 इसका संशोधित प्रारूप 1968 में प्रकाशित किया गया जिसे DSM-II कहा गया। 1960 वाले दशक में इसके द्वारा असामान्य व्यवहार DSM-II का पुनः संशोधित प्रारूप का प्रकाशन अमेरिकन मनश्चिकितसा संघ द्वारा 1980 में किया गया जिसे DSM-III कहा गया। ICD का नौवा संस्करण जिसे ICD-9 कहा गया, का भी प्रकाशन 1979 में हुआ जिसमें एक ऐसा वर्गीकरण तंत्र पर बल डाला गया जिससे सभी तरह के दैहिक एवं मानसिक रोगों के श्रेणियों को सम्मिलित किया गया था। DSM-III तथा ICD-9 दोनों ने वर्गीकरण DSM-III की पुनर्समीक्षा की गयी जिसका प्रकाशन 1987 में किया गया और इसे 'DSM-III R' (Revised) कहा गया। पुनः कुछ कमियों को दूर करने के ख्याल से DSM-III-R' में संशोधन करके एक नया प्रारूप तैयार किया गया जिसे DSM-IV कहा गया है और इसका प्रकाशन 1994 में हुआ। फिर 2000 में DSM-IV के मूल–पाठ (text) में कुछ संशोधन किया गया जिसे DSM-IV (Text revision) कहा गया। DSM-IV TR की विशेषता यह हे कि इसमें DSM-IV द्वारा प्रस्तावित मानसिक रोगों के श्रेणियों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया परन्तु इन श्रेणियों में नये मूल–पाठ सामग्रियों (text materials) को अवश्य जोड़ा गया। DSM-IV TR में।

DSM-IV TR वर्गीकरण (DSM-IV TR Classification)– DSM-IV TR मानसिक रोगों के वर्गीकरण का एक नवीनतम एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र हैं।

(असामान्यता) मानसिक रोगो का वर्गीकृत करने के लिए एक बहुआयामीय वर्गीकरण तंत्र (multiaxial classification system) का उपयोग किया गया है। इस तंत्र में व्यक्ति का पाँच अलग विमाओ (five separate axes) पर रेट किया जाता है।

आयाम– I : नैदानिक संलक्षण (Axis-I : Clinical Syndromes)– इस आयाम में व्यक्तित्व विकृतियों (personality disorders) तथा मानसिक मंदता (mental retardation) को छोड़कर सोलह मानसिक रोगों को रखा गया है। दुश्चिंता विकृतियाँ (anxiety disorder), मनेविदालिता (schizophrenia) प्रमुख विषाद (major frptrddion), द्विध्रुवीय मनस्थिति विकृतियाँ (bipolar mood disorders) आदि प्रमुख हैं। इस आयाम में उन अवस्थाओं (conditions) को भी रखा गया है जिन्हें मानसिक रोग तो नहीं कहा जा सकता है परन्तु फिर भी उनके लिए व्यक्ति को उपचार (treatment) की जरूरत होती है। इसमें

स्कूल, वैवाहिक तथा व्यवसायिक समस्याएँ जो मनोवैज्ञानिक स्रातों से तो उत्पन्न नहीं होते हैं, को भी रखा जाता है।

आयाम– II : व्यक्तित्व विकृतियाँ तथा मानसिक मंदता (Axis-II : Personality disorders and Mental conditions)– इस श्रेणी में उन विकृतियों को रखा गया है जो वाल्यावस्था या किशोरावस्था में सामान्यतः प्रारम्भ होकर होते हैं और वयस्कावस्था में स्थायी रूप ले लेते हैं। इसमें दस तरह के व्यक्तित्व विकृतियाँ (personality disorders) तथा मानसिक मंदता (mental retardation) को रखा गया। प्रायः ऐसे विकृतियों की उपेक्षा मनश्चिकितसकों द्वारा की जाती थी। अतः इन्हें DSM-IV में एक अलग आयाम में रख दिया गया है ताकि उनकी उपेक्षा न हो सके।

आयाम– III : सामान्य चिकित्सीय अवस्था (Axis-III : General Medical conditions)– इस आयाम में उन सभी चिकित्सकीय समस्याओं को रखा गया है जो कि मनोवैज्ञानिक रोग उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं।

आयाम– IV : मनोसामाजिक एवं पर्यावरणी समस्याएँ (Axis-IV : Psychosocial and Environmental Problems)– इस आयाम के तहत उन कारकों पर विचार किया गया है जो गत कुछ वर्षो से व्यक्ति के लिए समस्या का स्रोत रहा है या भविष्य में होने वाली प्रतयाशित समस्याएँ जैसे सेवा–निवृत्ति (retirement) जिससे व्यक्ति का वर्तमान कठिनाई बढ़ जाती है, पर विचार किया जाता हे। अतः यह आयाम वैसे मनोसामाजिक एवं पर्यावरणी आसेधकों (stressors) जो मानसिक विकृति के निदान एवं उपचार को प्रभावित कर सकते हैं, को अभिलेखित करने का एक चेकलिस्ट (checklist) है।

आयाम– V : कार्यो का सम्पूर्ण मूल्यांकन

(Axis-V : Global assessment of Functioning)– इस आयाम के तहत व्यक्ति के समायोजी कार्यो (adaptive functions) के स्तर का मापन होता है। इस तरह के मूल्यांकन में तीन कारकों पर अधिक बल डाला जाता है– परिवार एवं दोस्तों के साथ सामाजिक सम्बन्ध (social relation) पेशेवर कार्यवाही (occupational functioning) तथा खाली समय का उपयोग। इस आयाम के तहत इन तीनों क्षेत्रों का मापन एक 100–बिन्दु मापनी पर होता है जिसमें 1 बहुत निम्न (low) तथा 100 बहुत उच्च का संकेत करता है।

प्रश्न

1. असामान्य व्यवहार के किन्हीं दो निर्धारक को बताइये और उनमें से किसी एक की उदाहरण की सहायता से व्याख्या करें–

.....

.....

2. क्या जैविकीय कारण असामान्य व्यवहार का कारण हो सकता है। व्याख्या करें?

.....

.....

3. क्या हम व्यक्तित्व विकार को जाँच सकते है?

.....

.....

4. दुश्चिन्ता विकृति की व्याख्या कीजिये?

.....

.....

5. विभिन्न प्रकार की मनोविदलता को बताई। किसी एक को उदाहरण सहित समझाइए।

10.9 सन्दर्भ सूची

1. जी0 सी0 स्टेन (1998) एबनार्मल साइक्लोजी
2. राबर्ट एज0 कुक्स एण्ड जीन स्टेन (1988)साइक्लाजी साइंस बिहेवियर एण्ड लाईफ
3. इण्ट्रोडक्शन टू, साइक्लाजी– II–ए –टेक्स्टबुक फार क्लास VI एन0 सी0आर0टी0

इकाई–11

मद्यपान तथा औषधि व्यसन

Alcoholism & Drug Addiction

इकाई की रूपरेखा

11.1 परिचय

11.2 उद्देश्य

11.3 परिभाषा व विशेषता

11.4 मद्यपान का नैदानिक स्वरुप

11.5 मद्यपान व औषधि व्यसनः कारण व प्रभाव

11.6 मद्यपान व औषधि व्यसनः उपचार व रोकथाम

11.7 मद्यपान व औषधि व्यसन के उन्मूलन व पूनर्वास में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

11.8 सार संक्षेप

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.10 पारिभाषिक शब्दावली

11.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.1 परिचय

आज के विकासशील युग में विकास की गति में जैसे–2 वृद्धि हो रही है, वैसे–2 समाज में असामाजिक कृत्यों में भी उल्लेखनीय वृद्धि हो रही। इधर कुछ दशकों से समाज में मद्यपान तथा नशीले पदार्थों का सेवन बड़ी तेजी से बढ़ता चला जा रहा है। जिन मादक द्रव्यों से समस्या उत्पन्न होती है उनमें प्रमुख हैं– एल्कोहल (शराब), अफीम, हीरोइन, मैरीजुवाना, भॉग, चरस, गाँजा तथा एम्फीटमिन्स आदि है। वास्तव में जिनका जीवन मादक द्रव्यों पर आश्रित होता है वे किसी न किसी आंतरिक संकट, प्रतिबल एवं तनावपूर्ण स्थितियों से ग्रस्त रहते हैं। इन मादक द्रव्यों पर निर्भरता व्यक्ति के व्यक्तित्व को विकृत बना देती है। मादक द्रव्य में शराब व औषधि दोनों सम्मिलित होते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः–

- मद्यपानता व औषधि व्यसन व उसके लक्षणों को समझ सकेंगे।
- मद्यपानता व औषधि वयसन के कारणों व उनके परिणामों के प्रभावों को जान सकेगें।
- मद्यपानता व औषधि व्यसन के रोकथाम के उपायों को समझ सकेंगें।
- इसके उन्मूलन में सामाजिक कार्यकर्ता की भागीदारी समझ सकेगें।
- मद्यपानता से संबंधित अधिनियम के बारे में जान सकेगें।

11.3 परिभाषा व विशेषता

डॉ0 डरफी ने लिखा है कि मद्यपान शराब पीने की उस आदत का द्योतक है जो कि व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए खतरा उत्पन्न करता है उसके हार के आनंदमय जीवन का हनन करता है तथा उसे सामाजिक समस्या का एक अंग बना देता है।

कारसन तथा बुचर के अनुसार ''मद्यपानता एक ऐसी अवस्था है जिसमें एल्कोहल पर इतनी अधिक निर्भरता बढ़ जाती है कि इससे जिंदगी के समायोजन में बाधा पहुँचती है।''

सारासन के अनुसार ''मद्यपानता एक ऐसी चिरकालिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति शारीरिक या दैहिक कारणों से अपने आप को इतनी अधिक मात्रा में अल्कोहल पीने से रोक नहीं पाता है कि उसमें उन्माद उत्पन्न न हो जाए और अंततः उनका स्वास्थ्य खराब न हो जाए एवं सामाजिक व व्यवसायिक क्षत्रि न हो जाए।''

''W.H.O.'' ने औषधि व औषधि निर्भरता या व्यसन को अग्र प्रकार परिभाषित किया है–''औषधि वह पदार्थ है जिसके लेने पर प्राणी के प्रकार्यो में एक या एक से अधिक परिवर्तन होते है।'' औषधि की मुख्य विशेषता है कि एक बार इसके सेवन की आदत निर्मित हो जाए तो प्राणी इसके अभाव में विचलित रहता है तथा इसका सेवन करने के लिए बाध्य हो जाता है। उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मद्यपानता की अवस्था में निम्नांकित विशेषताएं होती है–

1. इसमें व्यक्ति अधिक मात्रा में अल्कोहल पीता है।
2. पीने की लत से व्यक्ति में मनोवैज्ञानिक क्षुब्धता उत्पन्न हो जाती है। उसमें समायोजन सम्बंधी तरह–तरह की कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती है।
3. अल्कोहल–व्यसनी के सामाजिक एवं आर्थिक क्रिया–कलापों में काफी शुब्धता उत्पन्न हो जाती है।
4. ऐसे लोगो का पीने पर कोई नियंत्रण नहीं होता।

5. मद्यपानता की एक विशेषता यह भी है कि यह सभी तरह के उम्र एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के लोगों में पाया जाता है। इनकी न कोई शैक्षिक सीमा है न कोई व्यवसायिक सीमा है।उपर्युक्त समस्त विशेषताएं औषधि निर्भरता या व्यसन के संदर्भ में भी लागू होती है।

11.4 मद्यपानता का नैदानिक स्वरूप

मद्यपानता के नैदानिक स्वरूप की व्याख्या उसके पड़ने वाले बुरे परिणामों के रूप में की गयी है। इस सम्बन्ध में जापान की एक मशहूर लोकोक्ति है, ''पहले व्यक्ति शराब को पीता है, फिर शराब ही शराब को पीता है और तब अंत में शराब आदमी को ही पी जाता है।'' मद्यपानता के कुछ ऐसे विशेष लक्षण देखने को मिले हैं। जिनसे इनकी पहचान आसानी से कर ली जाती है। अध्ययनों सेयह स्पष्ट हुआ कि मद्यपान–व्यसनी का उच्च मष्तिष्कीय केंद्र अल्कोहल से इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि इनका चिंतन एवं सही निर्णय लगभग समाप्त हो जाती है। इनका आत्म नियंत्रण समाप्त हो जाता है। इनका क्रियात्मक समन्वय ढीला पड़ जाता है और उनमें दर्द सर्द तथा अन्य इसी तरह की अनुभूतियों के प्रत्यक्षण में विभेद करने की क्षमता कम हो जाती है। मद्यपान–व्यवसनी को पीने के बाद कुछ देर तक अतिरिक्त शक्ति, फुर्तीलापन, खुशी, संतोष आदि का अनुभव होने लगता है। वह आवास्तविकता को दुनिया में पहुँच जाता है जहाँ न तो उसे किसी भी प्रकार की चिंता और नही किसी प्रकार का भय होता है। मनश्चिकित्सकों ने अध्ययन कर यह बतलाया है कि जब ऐसे व्यक्तियों के खून में अल्कोहल की मात्रा 0.1% हो जाती है, तो उस व्यक्ति को मदहोश समझा जाता है। इन लोगों के खून में अल्कोहल की भिन्न–2 मात्राओं तथा उससे सम्बंधित लक्षण का विशेष वर्णन किया है। जिससे उसके नैदानिक स्वरूप की स्पष्ट झलक मिलता है। जैसे ऐसे व्यसनी जिसके खून में एल्कोहल की मात्रा .03% होता है उनके चिंतन एवं भावनाओं में हल्का परिवर्तन होता है। जब वह मात्रा .06% हो जाता है तो उसमें मानसिक सुख एवं जोश का अनुभव होता है, .07% होने पर व्यसनी बातूनी हो जाता है तथा उसमें अतिरंजित संवेग उत्पन्न होने लगता है। 1.12% हो जाने पर व्यक्ति की चाल बेढ़गा हो जाता है तथा चलने में उसके पैर लड़खड़ाने लगते है। 1.15% हो जाने पर व्यसनी मोटी–मोटा मदहोशी की अवस्था में प्रवेश कर जाता है।

मद्यपान–व्यसनी में लैंगिक उत्तेजन अधिक पाया जाता है परन्तु लैंगिक निष्पादन में कमी पायी जाती है। ऐसे व्यक्तियों में 'ब्लैक आउट' अर्थात् स्मृति का ह्रास पाया जाता है। जो लोग अत्यधिक अल्कोहल पीते है, उनमें शराब की हल्की–फुल्की मात्र से तीव्र स्मृति ह्रास पाया जाता है। पौलिक एवं उनके सहयोगियों 1981 ने एक अध्ययन कर बतलाया है

कि मद्यपान व्यसनी में कम्पल, सुबह–2 पीने की आदत, नियंत्रण की कमी, स्मृति ह्रास, भोजन समय पर न करना, दिन में कई बार पीने की आदत प्रधान हैं।

उपर्युक्त लक्षण औषधि व्यसन के संदर्भ में भी लागू हो जाती है। मादक द्रव्य की एक बार आदत पड़ जाने पर भी मद्यपानता जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

11.5 मद्यपानता और औषधि व्यसन : कारण और प्रभाव

मद्यपान व औषधि व्यसन दोनों ही माद्रक द्रव्य के अर्न्तगत आते हैं मद्यपान में एल्कोहल या शराब सम्मिलित होता है तथा औषधि व्यसन में जिन मनोक्रियात्मक औषधियों का अधिकतम उपयोग होता है वे निम्नांकित है–

1. संवेदन मेदक (Narcotics) अफीम तथा उनसे बनी औषधियों।
2. उत्तेजना प्रदान करने वाली औषधियाँ– एम्फेटामाइन्स
3. शमक औषधियाँ (Scdatives) –बारबिचुरेट्स
4. हल्के प्रशान्तक– मेप्रोवेमेट्स
5. विभ्रम उत्पादक।
6. मारीजुआना।

उपर्युक्त समस्त द्रव्यों का प्रयोग अनेक कारणों से किया जाता है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इनके प्रयोग को उकसाते हैं। इन मादक द्रव्यों के उपयोग से शरीर व समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिनका वर्णन आगे के बिन्दुओं में किया जाएगा।

11.5.1 मद्यपानता व औषधि व्यसन के कारण

मद्यपान व औषधि व्यसन के लिए किसी एक कारण को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है बल्कि मद्यपान मनोवैज्ञानिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों की अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। इसके विकास में निम्न कारकों का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

1. जैविक कारण (Bilogical factor)

एक अध्ययन (G. Winokur et. at. 1970) में यह देखा गया है कि मद्यपानकी आदत उन व्यक्तियों को पड़ती है जिनके परिवारों में मद्यपान चला आ रहा है। इस अध्ययन में यह देखा गया कि मद्यपान करने वाले लोगो के 40% पिता लोग भी पहले से मद्यपान के आदमियों कॉटन (1979) तथा गोल्डमैन (1998) ने अपने अध्ययन में पाया कि मद्यपानी माता–पिता के बच्चों, भाई–बहनों में सामान्य लोगो की तुलना में तीन से चार गुणा मद्यपानता अधिक होती है। गुडविन तथा उनके सहयोगियों ने अध्ययन किया जिसमें मद्यपान व्यसनी के बच्चों का पालन पोषण जब दूसरों के घर में रखकर किया गया तो 30

साल की आयु में इन व्यक्तियों में से 18% ने मद्यपानता की ओर झुकाव दिखलाया जबकि नियंत्रित प्रयोज्यों जिन्हें भी दूसरों के घर में रखकर पाला–पोसा गया था में से मात्र 5% ने मद्यपानता की ओर उन्मुखता दिखलायी। कैडोरेट (1996) ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन पुरूष व्यस्कों के पिता मद्यपानी थे, इनके संतानों में अन्य सामान्य पुरूष व्यस्कों की तुलना में मद्यपानता की दर दुगुणा अधिक था।उपर्युक्त सभी अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जात है कि मद्यपानता का आधार आनुवांशिकता होता है।

2. **मनोसामाजिक कारण** : मद्यपानता की स्थिति में न केवल दैहिक निर्भरता बल्कि रोगी मनोवैज्ञानिक निर्भरता भी विकसित कर लेता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा कई तरह के मनोसामाजिक कारकों का उल्लेख किया गया है जिसका उल्लेख अग्रोकित है।

(i) व्यक्तित्व कारक– कुछ अध्ययनों में पाया गया कि अवसाद और समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले लोग मद्यपान करते है। कुछ अन्य अध्ययनों में पाया गया कि कुसमायोजित व्यक्तियों के मद्यपान करने की संभावना अधिक होती है। मोरे, स्कीनर तथा ब्लासफिल्ड वे अपने अध्ययन में यह पाया कि जिन व्यक्तियों में मद्यपानता होने का उच्च जोखिम होता है, उनका व्यक्तित्व विशेषकर आक्रामकता तथा आवेगशीलता के गुणों में उन व्यक्तियों की तुलना में भिन्न होता है जिनमें मद्यपानता होने का निम्न जोखिम होता है। ग्रैंड तथा अल्टरमैन ने इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों की समीक्षा के आधार पर बतलाया है कि करीब 75 से 80% अध्ययनों में समाज–विरोधी व्यक्तित्व तथा मद्यपानता को सम्बन्ध पाया गया है।

(ii) प्रतिबल, तनाव ह्रास तथा पुर्नबलन– मनोवैज्ञानिकों के एक समूह की प्राकल्पना यह है कि कुछ लोग इसलिए मद्यपानता को अपना लेते है क्योंकि मद्यपान करने से उनकी जिंदगी के तनाव, चिंता आदि में कमी आ जाती है। मद्यपान करके अपनी जिंदगी के तनावपूर्ण परिस्थितियों में बिना किसी तरह के चिंता दिखलाएं वे स्वयं को उत्तम व निष्पादन बनाए रखने में सक्षम हो जाते हैं। इस प्राक्कल्पना के अनुसार मद्यपानता एक सीखा गया कुसमायोजी व्यवहार है जो तनाव ह्रास की प्रक्रिया से पुर्नबलित एवं संपोषित होता है। लेभेनसन एवं उनके सहयोगियों तथा मूलानी द्वारा किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि मद्यपानता व्यक्ति के तात्कालिक तनाव की स्थिति को कम कर देता है और व्यक्ति थोड़े देर के लिए अच्छा महसूस करने लगता है। हालॉकि वह यह जानते है कि बाद में इसका परिणाम बुरा हो सकता है।

(iii) वैवाहिक व अन्य घनिष्ट सम्बन्ध भी मद्यपान करने के लिए प्रेरित करते हैं। व्यक्ति स्वयं ही अचेतन व चेतन रूप से मद्यपान का निर्णय करता है क्योंकि इससे उसमें भावनात्मक परिवर्तन अर्थात उसके मनोदशा में परिवर्तन आ जाता है।

3.सामाजिक –सांस्कृतिक कारण–मद्यपानता के क्षेत्र में किए गए अध्ययनों से स्पष्ट है कि मद्यपान व्यसनी बनने में समाज के संस्कृति का भी योगदान होता है। वेल्स, हार्टोन, सुलकुनेन द्वारा किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि तीन ऐसे कारक हैं जो मद्यपानता की ओर व्यक्ति को उन्मुख करता है–

(i) समाज की संस्कृति में प्रतिबल या तनाव का स्तर कितना है। कुछ सामाजिक संस्कृतियाँ ऐसी होती है जिनमें स्वभावतः तनाव अधिक उत्पन्न होता है। हार्टोन ने पाया कि जिस सामाजिक संस्कृतियों में असुरक्षा का स्तर अधिक होता है, उनमें एल्कोहल या महासार पीने की उन्मुखता अधिक देखी गयी है।

(ii) कुछ अध्ययनों में देखा गया कि द्रुत सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक विघटन से भी महासार के प्रति लोगों की उन्मुखता में वृद्धि होती है। मैककार्ड, मैककार्ड तथा गुडेमैन द्वारा किए गए अध्ययन से पता चला कि शैक्षिक स्तर तथा सामाजिक स्तर गंदा होने से व्यक्तियों में मद्यपानता की प्रबलता अधिक होती है।

(iii) सामाजिक संस्कृति द्वारा मद्यपानता के प्रति लोगों में उत्पन्न मनोवृत्ति पर भी मद्यपानता की आवृत्ति तथा प्रबलता निर्भर करती है। सुलकुनेन ने एक अध्ययन में पाया कि मुस्लिम तथा मोरमोन में मद्यपानता की प्रबलता बहुत कम पायी जाती है क्योंकि इनके संस्कृति में इसके प्रति एक तरह की नकारात्मक प्रवृत्ति होती है। क्रॉस में मद्यपानता का सबसे ऊँचा दर पाया गया है क्योंकि इस संस्कृति में महासार को उत्तम परोस्य वस्तु माना गया है।

औषधि व्यसन के कारण–

प्रायः व्यसनों का प्रयोग व्यक्ति वातावरण से समायोजन के लिए करता है किन्तु कभी दोस्ती या संगत के प्रभाव के कारण भी व्यसनों का शिकार हो जाता है–

(i) पीड़ा से राहत पाने के लिए।

(ii) तनावों एवं कुष्ठाओं के प्रति सहनशीलता कम होने पर।

(iii) सांस्कृतिक कारण

(iv) उत्सुकता एवं आनंद की तलाश

(v) वास्तविकता से पलायन

(vi) मिल मण्डली का दबाव

(vii) आत्म सुधार के लिए

(viii) अपराधी मनोवृत्ति

(ix) असफलताएँ

(x) अकेलापन

(xi) अड़ियल एवं अपरिपक्व व्यक्तित्व

(xii) निराशाएँ

(xiii) नैतिक मूल्यों की कमी।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि औषधि व्यसनी अधिकतर विकृत व्यक्तित्व से होता है। विपरीत परिस्थितियों में अगर सुदृढ़ व संगठित व्यक्तित्व रहता है तो व्यक्ति इन व्यसनों का आदी नहीं हो पाता।

11.5.2 मद्यपान व औषधि व्यसन के प्रभाव

इनके कारणों की भाँति इनका प्रभाव भी कई रूपों में परिलक्षित होता है जो अग्रांकित हैः

(i) व्यवहारात्मक प्रभाव– व्यक्ति के व्यवहार पर मद्यसार पीने का प्रभाव तरह–तरह के होते है। यह प्रभाव किस तरह का होगा, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कितनी मात्रा में पीता है। जब मद्यसार कम मात्रा में पीया जाता है, तो अधिकतर लोागों में इससे खुशी एवं तनाव में कमी का अनुभव होता है निम्न मात्रा में लेने पर व्यक्ति अधिक बातूनी हो जाता है, अधिक र्निगामी हो जाता है तथा वह सामाजिक अवरोधें से कम प्रतिबंधित होता है। तर्क एवं निर्णय की क्षमता कम हो जाती है। व्यक्ति का संतुलन शनैः–शनैः कम होने लगता है। व्यवहार आवेगपूर्ण हो जाता है। इसलिए हत्या, आत्महत्या, बलात्कार तथा अपराधी व्यवहार प्रकट होते है। संवेदना एवं प्रत्यक्षीकरण भी धुधँले पड़ने लगते है। व्यवहार असामान्यता तब बढ़ जाती है जब रक्त में एल्कोहल की मात्रा 0.5% बढ़ जाती है। इस अवस्था में पहुँचने पर व्यक्ति का सम्पूर्ण तंत्रकीय संतुलन बिगड़ जाता है। मदिरापान करने के पश्चात् व्यवहारिक अभिव्यक्ति अलग–2 प्रकार की दिखायी पड़ती है कुछ अधिक झगड़ालू उग्र, आक्रामक तथा शोर मचाने वाले हो जाते है। तो कुछ अपनी दगित संवेगात्मक अवस्थाओं को अभिव्यक्त करते हैं – रोते है, अपना दर्द बताते है, अधिक संवेगी उग्रता दिखाते हैं।

(ii) जैविक प्रभाव– मद्यपानता का प्रभाव मष्तिष्क तथा शरीर के अन्य अंगों पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। जब व्यक्ति मद्यसार अधिक मात्रा में लेता है तो उसका शामक प्रभाव पड़ता है तथा उसका संवेदी एवं पेशीय कार्यो में स्पष्ट दोष नजर आता है। उसकी दृष्टि वरिणता में कमी आ जाती है तथा गंध एवं स्वाद की संवेदनशीलता भी कम हो जाती है। उसकी गति एवं संभाषण मंदित हो जाता है। मद्यपान से कुछ मष्तिष्कीय कोशिकाएँ विशेषकर अग्रपालि की कोशिकाएँ काफी क्षत्रिग्रस्त हो जाती है जिनसे उसमें कुछ असामान्यता उत्पन्न हो जाती है। मद्यसार से प्रतिरक्षक तंत्र की प्रभावशीलता कम हो जाती

है जिससे संक्रामकता का खतरा बढ़ जाता है। मष्तिष्क पर ही नहीं बल्कि शरीर के अन्य अंगो पर भी मद्यसार का काफी प्रभाव पड़ता है। मद्यसार से भूख में कमी आ जाती है क्योंकि इसमें कैलोरी होती है परन्तु इसमें आवश्यक पोषक तत्व की कमी होती है। मद्यसार से कुपोषण बढ़ता है क्योंकि इससे भोजन पचने की क्रिया तथा उससे विटामिन अलग होने की प्रक्रिया दोनों ही प्रभावित होता है। जो व्यक्ति अधिक मात्रा में, बहुत दिनों से मद्यसार करता है, उसमें बी कम्पलेक्स विटामिन की कमी हो जाती है। जिससे उसमें स्मृति लोप के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

मद्यसार से प्रोटीन की कमी हो जाती है। यह यकृत के कार्यो को बाधित करता है, यकृत कोशिकाओं को क्षत्रि पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त कुछ दैहिक प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे गए है, जैसे–अंतः स्त्रावी ग्रंथियों को क्षति पहुँचता है, उच्च रक्तचाप उत्पन्न होता है, हदय गति बाधित होती हे। निद्रा की अनियमितता, प्लीहा में विकृति, अल्सर तथा कोशिका नली फट जाती है। जिससे मद्यसार पीने वाले व्यक्ति का चेहरा लाल एवं फूला हुआ दिखता है आदि।

(iii) दैहिक निर्भरता– मद्यसार पीने वालों में दैहिक निर्भरता तेजी से होता है। दैहिक निर्भरता व्यक्ति में तभी विकसित होता है जल मद्यसार का उपयोग लम्बे समय तक व्यक्ति करता है तथा पीने की अवधि तथा स्तर के अनुसार प्रत्याहार संलक्षण परिवर्तित होते है। प्रत्याहार संलक्षण के लक्षण पिछली बार पीने के बाद से करीब 12 घंटा बीत जाने पर प्रारंभ होता है। प्रारंभ में कमजोरी, जी मिचलाना, चिंता, कम्पन, तीव्र हृदय गति तथा नींद में कमी आदि लक्षण देखे जाते हैं। गंभीर केसेज में इन संलक्षणों में इनके अतिरिक्त विभ्रम, दिशाविहीनता, संभ्रांति तथा घवड़ाहट आदि तीव्र होता है। मामला अधिक गंभीर होने पर कम्पन, बेहोशी तथा गंभीर उन्माद आदि जिससे कम्पनोमाद विकसित हो जाता है।

(iv) सामाजिक प्रभाव– मद्यपान व औषधि व्यसन के परिणामस्वरूप वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन व सामाजिक विघटन होता है। नैतिकता का ह्रास होता है। आर्थिक जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अपराध दर में वृद्धि होती है। स्वास्थ्य स्तर निम्न होने लगता है।इस प्रकार स्पष्ट है कि मद्यसार जीवन के सम्पूर्ण पक्ष को प्रभावित करता है तथा यह गंभीर सामाजिक, वैयक्तिक व मनोवैज्ञानिक समस्या है।

11.6 मद्यपान व औषधि व्यसन : उपचार व रोकथाम

तीव्र व दीर्घकालीन मद्यपान का उपचार आवश्यक है। मद्यसार के उपचार कई महत्वपूर्ण विधियाँ है जो अग्रांकित है–

1– जैविक उपचार

2– मनोसामाजिक उपचार,

3– सूझ चिकित्सा

4– व्यवहारपरक व संज्ञानात्मक चिकित्सा

5– आत्म मदद कार्यक्रम

6– सामाजिक सांस्कृतिक उपचार कार्यक्रम

1. **जैविक उपचार–** ऐसी चिकित्सा द्रव्य से व्यसनी को दूर रहने में मदद कर सकता है या फिर नजदीक रहते हुए भी परहेज बनाए रखने में मदद कर सकता है या फिर व्यसनी को जितना द्रव्य का वह उपयोग करता है, उससे आगे न बढ़ने देकर उतना ही पर उसे संपोषित करने में मदद कर सकता है। ऐसे जैविक चिकित्सा के तीन मुख्य उद्देश्य है–

(i) डीटॉक्सिीफीकेशन

(ii) प्रतिरोधी औषध

(iii) औषध संपोषण चिकित्सा

(i) डीटॉक्सिीफीकेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यसनी के शरीर से मद्यसार को कम किया जाता है या हटाया जाता है। यह अस्पताल में मेडिकल पर्यवेक्षण के तहत किया जाता है। इसके लिए प्रायः क्लोरडियाजेपौक्साईड नामक औषध का उपयोग किया जाता है।

(ii) प्रतिरोधी औषधि द्वारा मद्यपानता को दूर करने का प्रयास किया जाता है। डिसुलफियारम एक ऐसा ही औषध है। यह एक तरह का एंटाएव्युज है जो उन एंजाइम को प्रतिरोधित करता है जो मद्यसार के चयापचम को सहायता देता है। यह औषध खाने के बाद यदि व्यक्ति मद्यसार का सेवन करता है तो इससे शरीर में एसिटालडेहिड का निर्माण होता है और व्यक्ति बीमार महसूस करने लगता है। इसके प्रयोग का तर्क यह है कि इस औषध के कटु अनुभव से व्यक्ति मद्यसार का सेवन करना छोड़ देगा।

(iii) औषध संपोषण चिकित्सा में व्यक्ति को एक तरह के औषध निर्भरता को दूर करने के लिए उससे कम गंभीर औषण को लेने की सलाह दी जाती है और उसे कम गंभीर औषध पर ही संपोषित करके रखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति में पहले वाले औषधि पर निर्भरता समाप्त हो जाती है। जैसे, हेरोइन व्यसन की गंभीरता को कम करने के लिए 1960 वाले दशक में व्यक्तियों को उसके जगह पर मेशाडोन लेने की सलाह दी जाती है। जो तुलनात्मक रूप से कम गंभीर है तथा जिसका पार्श्व प्रभाव भी नहीं होता है।

2. **मनोसामाजिक उपचार–** मद्यपानता के उपचार के लिए कुछ मनोवैज्ञानिक विधियाँ भी उपलब्ध है। मनोसामाजिक उपचार में निम्नांकित तीन तरह की प्रतिधियाँ तुलनात्मक रूप से

अधिक लोकप्रिय है– सामूहिक चिकित्सा, पर्यावरणीय हस्तक्षेप, ऐल्कोहलिक एनोनियम। इन प्रविधियों द्वारा व्यसनी के मानसिक व व्यवहारिक मनोवृति में परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है।

3. **सूझ चिकित्सा–** इस तरह की चिकित्सा प्रविधि में चिकित्सक औषध दुरूपयोग करने वाले व्यक्तियों को उन मनोवैज्ञानिकों कारकों से अवगत कराने की कोशिश करते है, जो उनकी समस्याओं से सम्बद्ध होते है। गालेंटर व विडमैन (1985) द्वारा किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ कि सूझ चिकित्सा उस परिस्थिति में अधिक लाभकारी एवं प्रभावकारी सिद्ध होता है जब उसका उपयोग अन्य किसी चिकित्सकीय कार्यक्रम के साथ किया जाता है जैसे– सूझ चिकित्सा का उपयोग व्यवहारपरक एवं जैविक चिकित्साओं के साथ किया जाता है, तो वे काफी लाभकारी सिद्ध होते है।

4. **व्यवहारपरक व संज्ञानात्मक चिकित्सा–** द्रव्य सम्बद्ध विकृति व मद्यपानता के उपचार में कई तरह के व्यवहार चिकित्सा का उपयोग सफलतापूर्वक किया गया है जिनमें निम्नांकित प्रमुख है–

(i) विरूचि अनुबंधन– इस प्रविधि में जब व्यक्ति औषध व मद्यसार ले रहा होता है, ठीक उसी समय कुछ दुखद उद्दीपक जैसे बिजली का आघात आदि बार–2 उपस्थित किया जाता है। इस ढंग से बारम्बार मुग्मित होने पर उस औषध के प्रति व्यक्ति नकारात्मक ढंग से प्रतिक्रिया करने लगता है और औषध के प्रति उसकी लालसा कम हो जाती है, परंतु अब इसका उपयोग कम किया जाता है और अब मद्यपानता व्यवहार को औषध–उत्पन्न मतली तथा उल्टी से सम्बन्धित करके उपचार किया जाता है।

(ii) अंतः संवेदीकरण– इस प्रतिधि में इम्मेल काम्प (1994) तथा काऊटेला (1977) ने कहा है, मद्यपान व्यसनी को मद्यपान करते समय काफी डरावना, घबड़ा देने वाला, विकर्षण उत्पन्न करने वाला दृश्य मन में सोचने के लिए कहा जाता है। पूर्व कल्पना यह होती है कि ऐसे काल्पनिक दृश्य का मद्यपानता व्यवहार केसाथ युग्मित हो जाने पर स्वभवतः व्यक्ति में मद्यसार के प्रति एक नकारात्मक मनोवृत्ति उत्पन्न होगा और वह ऐसा व्यवहार कम कर देगा या समाप्त कर देगा।

(iii) वैकल्पिक प्रशिक्षण– स्मोश एवं जॉवसन ने अपने अध्ययन के आधार पर बतलाया कि शराब पीने वाले जो प्रायः अपना तनाव कम करने के लिए पीते है, को शिथिलीकरण मनन या चिंतन या बायोफिड बैक का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। एंगुलियर तथा मुनसन के अनुसार द्रव्य दुरूपयोग करने वाले व्यक्तियों को अवकाश

शिक्षण कार्यक्रम में लगाया जा सकता है ताकि वह औषध दुरूपयोग के विकल्प में 'धनात्मक हँसी मजाक' करना सीख सकें।

(iv) प्रसंभाव्यता प्रशिक्षण– यह प्रशिक्षण विधि साधनात्मक अनुबंधन के नियमों पर आधृत है। इसके द्वारा कोकेन दुरूपयोग करने वाले व्यक्तियों का उपचार किया जाता है। हिग्गिन्स तथा उनके सहयोगियों द्वारा एक अध्ययन किया गया जिसमें कोकेन दुरूपयोग करने वाले व्यकितयों को संभाव्यता प्रशिक्षण दिया गया जिसमें 58% ऐसे व्यसनियों द्वारा छः महीना तक उपचार करवाया गया जिसमें 68% व्यसनियों द्वारा करीब लगातार आठ सप्ताहों तक परहेज दिखलाया गया।

अधिकतर व्यवहार चिकित्सा अपने आप में अधिक सफलीभूत नहीं हो पाता है तथा अन्य संज्ञानात्मक प्रविधियों के साथ संयोजित कर यदि उसका उपयोग किया जाता है, तो वह काफी प्रभावी सिद्ध होता है। इसे **'संज्ञानात्मक व्यवहारपरक चिकित्सा'** कहा जाता है। एक ऐसी ही चिकित्सा है व्यवहारपरक आत्म–नियंत्रित प्रशिक्षण। इस प्रशिक्षण में चिकित्सक क्लायंट को पहले मद्यपानता के अपने व्यवहार को मॉनीटर करने के लिए कहता है जब वह अत्यधिक मद्यपानता से साहचर्यित होने लगता है व संकेतो के पहचान के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है। इसके बाद क्लायंट को अपने मद्यपानता की सीमा को पहचानने की प्रशिक्षण दी जाती है तथा अन्य समायोजी विकल्पी व्यवहार जैसे शिथिलीकरण प्रविधि का उपयोग करने के लिए कहा जाता है। कि मद्यपानता पर परोक्ष रूप से नियंत्रण रखा जाए।

5. **आत्म मदद कार्यक्रम**– नैदानिक हस्तक्षेपों के बढ़ते हुए दर एवं सीमित सफलता के कारण कुछ औषध व्यसनियों द्वारा आपस में ही एक–दूसरे को मदद करने के ख्याल से तथा बिना किसी पेशेवर मदद के ही विशेष संगठन का निर्माण किया गया है। इस तरह का प्रयास 1935 में ओहियो राज्य में किया गया। **पहला ऐसा संगठन ऐल्कोहलिक्स एनोनियस , एलएनोन एक दूसरा आत्म–मदद संगठन है। नारकोटिक्स एनोनियस तथा कोकेन एनोनियस दो प्रमुख आत्म मदद कार्यक्रम है।**

6. **सामाजिक–सांस्कृतिक उपचार कार्यक्रम**– कई अध्ययनों से यह पता चलता है कि द्रव्य दुरूपयोग विकृति से सम्बद्ध अधिकतर लोग ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते है जिनमें निर्धनता आक्रोश, हिंसा आदि की प्रधनता होती है। अतः ऐसे लोगो को चिकित्सक द्वारा चिकित्सा उपलब्ध कराए जाते समय इन सब तथ्यों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है और उसी के संदर्भ में उन्हें प्रशिक्षित एवं पुर्नशिक्षित करने की कोशिश की जाती है।

रोकथाम–मादक द्रव्यों की रोकथाम के लिए सरकारी व गैर–सरकारी अभिकरणों द्वारा अनेक प्रयास किए गए। 1883 में मादक द्रव्यों की रोकथाम के लिए रायल कमेटी का निर्माण हुआ था। मादक द्रव्यों के प्रयोग एवं व्यापार पर कड़ा नियंत्रण रखने के लिए सरकार ने नारकोटिक्स इन्टेलीजेन्स ब्यूरो की स्थापना की। इस संस्था ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

मादक औषधियों के दुरूपयोग को रोकने के लिए सर्वप्रथम गैर कानूनी ढंग से इसके वितरण को अपराध माना जाए, शिक्षा एवं प्रचार के द्वारा इसके वितरण को अपराध माना जाए।रोगी अपने नशे की आदत छोड़ दे तथा पुनः उसमें लिप्त न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि चिकित्सा के बाद उसके प्रति समाज तथा परिवार वालों का दृष्टिकोण सकारात्मक हो। उसके प्रति घृणा तथा हेय दृष्टि न रखी जाए, उन्हें सहज भाव से अन्य सामान्य व्यक्तियों की तरह अपना कर पुर्नस्थापन का प्रयास करना चाहिए। आज के आधुनिक जीवन की देन है चिंता, तनाव, प्रतिबल तथा कुसमायोजन। अतः समाज व देश में मदव्यसन फैले इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का पारिवारिक, सामाजिक वातावरण स्वस्थ तथा सौम्य हो। व्यक्ति का जीवन उद्देश्य सकारात्मक तथा दिशानिर्देशित हो।

11.7 मद्यपान व औषधि व्यसन के उन्मूलन पुनर्वास में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका

सामाजिक कार्यकर्ता को नशे से होने वाली हानि के बारे में बताना चाहिए। इसके लिए व्यापक स्तर पर जागरूकता कार्यक्रम चलाना चाहिए। नशे से ग्रस्त व्यक्ति में आत्म विश्वास उत्पन्न करे तथा बिखरे व्यक्तित्व को सवांरने का प्रयास करना चाहिए। रोगी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने का प्रयास करना चाहिए। उनका आत्म–संयम आत्मविश्वास तथा आत्मशक्ति बढ़ानी चाहिए। मद्यपान व्यसनी को वैयक्तिक रूप से सहायता प्रदान की जानी चाहिए, वैयक्तिक परामर्श व परिवार जनों को भी व्यसनी के प्रति व्यवहार परिवर्तन के लिए परामर्श देना चाहिए। नशे में रत व्यक्तियों के लिए अलग व्यवायिक केंद्र खुलवाने चाहिए ताकि उनका समय उचित कार्य में व्यतीत हो तथा आर्थिक कुसमायोजन की समस्या से बच सके। इस प्रकार रोगियों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, स्वस्थ विचारों का आदान–प्रदान, नैतिकता का बढ़ावा देकर स्वस्थ समायोजन के लिए प्रेरित करना चाहिए।

11.8 सार संक्षेप

द्रव्य सम्बंधी कई विकृतियाँ है जिनमें महापानता सम्बद्ध विकृति, उत्तेजक सम्बंध विकृति, स्वापक, भ्रामात्मकता सम्बद्ध विकृति, शमक–निद्राजनक तथा प्रशांतक सम्बन्ध विकृति प्रधान है। मद्यपानता एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें एल्कोहल पर इतनी अधिक निर्भरता बढ़ जाती है कि इससे जिंदगी के समायोजन में बाधा पहुँचती है। इसके मुख्य

तीन कारक– जैविक, मनोसामाजिक, सामाजिक–सांस्कृतिक प्रमुख है। इसके नकारात्मक प्रभाव सामाजिक, शारीरिक पक्षों पर पड़ते हैं। द्रव्य सम्बद्ध विकृतियों के उपचार के लिए कई तरह की चिकित्सा प्रविधियों एवं कार्यक्रम को महत्वपूर्ण बतलाया गया है। इनमें सूझ चिकित्सा, व्यवहारपक एवं संज्ञान–व्यवहारात्मक चिकित्सा, जैविक चिकित्सा, आत्म–मदद कार्यक्रम सामाजिक–सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा रोकथाम आदि मुख्य है। इसके निराकरण के लिए सामाजिक कार्यकर्ता तथा अधिनियम क्रियान्वयन द्वारा प्रयास किया जाता है।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. मद्यपानता क्या है? इसके नैदानिक स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. मद्यपानता व औषधि व्यसन के कारणों की विस्तार से व्याख्या करें।
3. मद्यपान व मादक द्रव्य व्यसन के प्रभावों की व्याख्या करें।
4. मादक–द्रव्य व्यसन के उपचार व रोकथाम पर प्रकाश डालिए।

11.10 पारिभाषिक शब्दावली

1. **नशाखोरी**– नशा करने वाले केवल शराब पीकर (DrugAddiction) ही नशा नहीं करते हैं। नशाखोरी के अनेक साधन हो सकते है जैसे गॉजा, चरस, भॉग, अफीम, कोकीन, माखून, मारफीन, एस्पिरीन आदि।
2. **नशा–निषेध**(Drug Prohibition) – नशा–निषेध का तात्पर्य शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों जैसे अफीम, गांजा, भांग, चरस तथा नशीली औषधियों के उपयोग, बिक्री तथा निर्माण को औषधीय प्रयोजनों के अतिरिक्त, कानून द्वारा निषिद्ध करना।
3. **उत्तेजक** – उत्तेजक(Stimulant) ऐसे तत्वों को कहा जाताहै जो केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की क्रिया को बढ़ाता है जिससे व्यक्ति का हदय गति तथा रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है तथा व्यक्ति की चिंतन प्रक्रिया, क्रियाएँ एवं सर्तकता में वृद्धि हो जाती है।
4. **व्यसन**(Addiction) – जब व्यक्ति अत्यधिक तथा बार–2 द्रव्य को लेता है जिससे उसमें सहनशीलता या प्रत्याहार संलक्षण विकसित हो जाते हैं तो इसे दैहिक निर्भरता की संज्ञा दी जाती है। उसी अवस्था को व्यसन भी कहा जाता है।

11.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, ए0के0 : आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास (संपादक)
2. सिंह लाभ व तिवारी डॉ0 गोविंद : असामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर; आगरा।
3. दुबे, सरला : सामाजिक विघटन, विवेक प्रकाशन; जवाहर नगर दिल्ली।
4. आहूजा राम : सामाजिक समस्याए

इकाई–12

बाल्यावस्था की व्यवहारगत् मनोविकृतिया

Behavioural Disorder & Childhood

इकाई का परिचय

12.1 परिचय

12.2 उद्येश्य

12.3 प्रकार, लक्षण, कारण

12.4 रोकथाम एवं चिकित्सा

12.5 सामुदायिक मनोचिकित्सा

12.6 सार– संक्षेप

12.7 अभ्यास प्रश्न

12.8 पारिभाषिक शब्दावली

12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 परिचय

बाल्यावस्था की मनोविकृतियों के अन्तर्गत मुख्य रूप से उन मनोशारीरिक अथवा व्यवहारगत् विकृतियों या समस्याओं को शामिल किया जाता है जो व्यक्ति में जन्म के समय से लेकर उसके किशोरावस्था में पहुँचने के पूर्व तक विद्यमान रहती है; ये विकृतियाँ बच्चे के स्वयं के व्यक्तित्व एवं उसके अस्तित्व के लिए तो चुनौतियाँ पैदा करती ही है; वरन् उसके परिवार मित्रों एवं पड़ोसियों के लिए भी कालांतर में चिंता का सबब बनती है। कुछ मनोविकृतियाँ विकास के अगले चरण के आते–आते स्वतःसमाप्त हो जाती है, जैसे–''अधिगम विकृतियाँ'' (पठन विकृति, लेखन अभिव्यक्ति विकृति आदि) तथा ''संचार विकृतियाँ (ग्रहणशील अभिव्यंजक भाषा विकृति ध्वनिक भाषा विकृति हकलाना इत्यादि)''। इसके अलावा ''आचरण संबंधी विकृतियाँ'' भी परिपक्वता के स्तर तक पहुँचते– पहुँचते स्वाभाव अथवा पारिवारिक प्रभाव से दूर हो जाती है। परन्तु कुछ मनोविकृतियाँ (पेशीय कौशल विकृतियाँ यथा मानसिक दुर्बलता औटिज्म इत्यादि), जन्म के साथ ही शुरू होती हैं तथा जीवन पर्यन्त ग्रस्त बच्चे के जीवन को स्याह करती रहती हैं।

आमतौर पर DSM-IV TR ने बाल्यावस्था की मनोविकृतियों को निम्नलिखित भागों में वर्गीकृत किया है–

1. मानसिक दुर्बलता,
2. विकास के क्रम में होने वाली विशिष्ट विकृतियाँ,
3. अवधान अभाव एवं अतिसक्रियता विकृति,
4. आचरण संबंधी विकृतियाँ,
5. टिक विकृतियाँ,
6. भाषा संबंधी विकृतियाँ,
7. आदतजन्य विकृतियाँ तथा,
8. अन्य विकृतियाँ।

यहाँ मुख्य रूप हम '' मानसिक दुर्बलता, भोजन के प्रति बच्चे की अस्वीकृति, एनोरेक्सियाँ नरवोसा अंगूठा चूसना ,नाखुन कुतरना, हकलाना, भगोड़ापन की प्रवृति, ऑटिज्म'' इत्यादि की चर्चा करेंगे। साथ ही साथ इनके कारणों एवं रोकथाम में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका पर चर्चा करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

- बाल्यावस्था में दृष्टिगोचर होने वाली प्रमुख मनोविकृतियों के बारे में जान सकेंगें;
- इन मनोविकृतियों के लक्षणों एवं कारणों को जान सकेंगे;
- बाल्या वस्था की मनोविकृतियों की रोकथाम एवं उपचार के कारगर उपायों को जान सकेंगे; तथा
- इनके रोकथाम एवं पुर्नव्यवस्थापन में सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका के बारे में जान सकेंगे।

12.3 प्रकार, लक्षण, कारण

(i) भोजन के प्रति बच्चे की अस्वीकृतिः–आमतौर पर यह प्रवृत्ति लगभग सभी परिवार के बच्चे में पायी जाती है। जो वस्तुएँ उनके पसंद की नहीं होती उसे बच्चे खाने से मना कर देते है। सह अस्वीकारोक्ती की भावना किसी एक खाद्य वस्तु या एक से अधिक के प्रति भी पायी जाती है। यह स्थिति तब चिंता का सबब बन जाती है जब इसका विपरीत प्रभाव बच्चे की शारीरिक एवं मानसिक विकास पर पड़ने लगता है। जैसे, हरी साग–सब्जियों के सेवन न करने के कारण एनिमिया, रतौंधी इत्यादि बीमारियाँ उत्पन्न होने लगते है, वही दूध एवं अन्य खनिज लवणों का सेवन न करने से शरीर में प्रोटिन, कैल्शियम एवं अन्य जरूरी

तत्वों की कमी न सिर्फ शारीरिक वरन् मानसिक विकास हेतु आवश्यक क्रियाविधि कों प्रभावित करते है।

इससे बचाव हेतु बच्चों को शुरूआती क्षणों से ही सही खाद्य पद्धार्थो के सेवन की आदत डालनी चाहिए। साथ ही भोजन के प्रति बच्चों का ध्यान आकर्षित करने हेतु भोजन को लजीज एवं आकर्षक ढंग से सजा कर पेश करन चाहिए। यही नहीं बच्चों में बाहर के खाने के ज्यादा सेवन से बचने की सलाह देनी चाहिए। स्थिति बेकाबू होने पर बाल रोग परामर्शदाता से संपर्क करना चाहिए।

(ii) एनोरेक्सिया नरवोसा :यह विकृति आमतौर पर किशोरावस्था की दहलीज पर पहुँच रहे लड़के एवं लड़किया में दृष्टिगत होती है। DSM-IV TR में इसे ''भोजन संबंधी मनोविकृति'' के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। किशोरावस्था की ओर अग्रसर लड़के या लड़कियाँ अपनी काया एवं शारीरिक बनावट, वजन उँचाई तथा दुबले–पतले दिखने के प्रति ज्यादा संवेदनशील हो जाते है। इस कारण वे कम भोजन की मात्रा लेने लगते है। अथवा ऐसे भोजन से परहेज करते हैं जिससे वजन एवं मोटापा बढ़ता है। यह प्रवृत्ति जब सामान्य की तुलना में अधिक आवृत्ति की होने लगती है तब इसे 'विकृति' माना जाता है। यह विकृति लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में अधिक मात्रा में पायी जाती है। वे हरहरी एवं आकर्षक दिखना चाहती हैं। इसके लिए वे भूखे रहने पर भी भोजन एवं स्वादिष्ट वस्तुओं से परहेज करती है।

यह स्थिति तब और भी गंभीर हो जाती है जब वे लगभग हर समय इसी चिंता में खोये रहते हैं कि कहीं वे मोटे तो नहीं हो रहे है, उनका वजन तो नहीं बढ रहा है अथवा बुरे तो नहीं दीखते है; ये स्थिति उन्हें गंभीर रूप से बीमार एवं कमजोर बना देती है। वे कुपोषण एवं अस्क्तता जैसी बीमारियों के शिकार हो जाते है। प्रायः इस मनोविकृति को ''स्लीमर्स मनोविकृति'' भी कहते हैं।इसकी रोकथाम का एक ही उपाय है और वह है, कि माता–पिता बढ़ते बच्चों की असामान्य हरकतों को नजरअंदाज न करे तथा उसे कालांतर में उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं वास्तविकताओं से परिचित करायें। स्थिति गंभीर होने पर परामर्श दाता या मनोचिकित्सक से संपर्क करें।

(iii) अंगूठा चूसना :यह विकृति बच्चों में सामान्य रूप से पायी जाती है। कुछ बच्चों में यह एक आदत जन्य विकृति के रूप में पायी जाती है। वे लगातार (यहाँ तक कि सोते समय भी), और नियमित रूप से अंगुठा चूसते रहते है। यह न तो सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप ही होती है और न स्वास्था की दृष्टि से ही उत्तम है। अंगूठा चूसने से कई तरह की संक्रामक बीमारियाँ एवं उदर विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस विकृति के मूल में बच्चे के भीतर मौजूद असुरक्षा एवं हताशा की भावना को जिम्मेवार माना है। वही

'' फ्रायड'' का मानना है कि जिन शिशुओं को उनकी माँ स्तनपान नहीं कराती है; उनमें आगे चलकर अंगूठा चूसने एवं सिगरेट पीने की आदत पैदा हो जाती है। इसके द्वारा बच्चा अचेतन रूप से अंगूठा चूसकर, स्तन चूसने के सुख की ही भरपाई करता है।

(iv) नाखून कुतरना :–यह विकृति बच्चों एवं बड़ो में एक समान रूप से पायी जाती है। प्रायः यह देखा जाता है कि बच्चे या बड़े दाँतों से उँगलियों के नाखून कुतरते रहते हैं, मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार निराशा, चिंता, हताशा एवं दूसरों के सामने स्वयं को कमतर आंकने के कारण करता है। 'एडलर' ने इसे हीनता एवं निराशा का परिचालक माना है। कभी–कभी नाखून कुतरना व्यक्ति की आदत बन जाती है तथा वह चाहकर भी इस आदत को नहीं छोड़ पाता। अपनी इस आदत के कारण व्यक्ति कई संक्रामक बीमारियों को नाखूनों में जमा मैल के द्वारा ग्रहण करता है। जो उसे उदर–विकारों, एवं दॉतों की समस्या से ग्रस्त करते हैं। इस विकृति को दूर करने हेतु सामाजिक कार्य–कर्ता को इससे होने वाले नुकसान से अवगत कराना चाहिए तथा व्यक्ति चिंता एवं हताशा के कारणों का पता लगाकर दूर करना चाहिए।

(v) हकलाना :– इस विकृति से ग्रसित बच्चे अपने संभाषण के सामान्य प्रवाह तथा समय पैटर्निंग में क्षुब्धता का अनुभव करते हैं। वे किसी अक्षर या शब्दों को कभी–कभी दोहरा देते हैं। कभी उसे लंबे समय तक बोलते हैं या कभी शब्दों को बीच में बोल देते हैं; एक शब्द के भीतर एक अक्षर बोलकर रूक जाते हैं और फिर बोलते हैं, आवाज को अवरूद्व कर देते हैं तथा अन्य शब्द जो कठिन होते हैं, को अन्य शब्दों से प्रतिस्थापित कर देते हैं या फिर इन शब्दों को बोलते समय काफी दैहिक तनाव महसूस करते हैं, एक ही अक्षर (syllable) में पूरा शब्द बोल देते हैं, आदि– आदि। करीब एक प्रतिशत बच्चें में हकलाने की विकृति पायी जाती है और इनमें से 75% संख्या लड़कों की होती है। यह समस्या 2 से 7 वर्ष की आयु में औसतन अधिक होती है और इनमें से 80% बच्चे अपने आप बिना उपचार के ही 16 वर्ष की आयु तक आते–आते ठीक हो जाते हैं।

(vi) भगोड़ापन :–प्रायः भगोड़ापन बच्चों में पायी जाने वाली एक सामान्य प्रवृत्ति है। अकसर ऐसा पाया जाता है कि कार्यो या स्थानों के प्रति बच्चों के मन में एक नाकारात्मक छवि एवं अनिच्छा की भावना किन्हीं कारणों से जन्म ले लेती है तथा परिवार द्वारा या किसी अन्य के द्वारा वहाँ जाने अथवा उन्हीं कार्यों को करने हेतु कहे जाने पर प्रत्यक्ष रूप से बच्चे मना तो नहीं करते पर प्रतिक्रिया स्वरूप उस परिस्थिति से बचने की कोशिश करते हैं। यही उनमें ''भगोड़ेपन की प्रतिक्रिया'' को जन्म देता है।

बच्चों में भागने की प्रवृत्ति परिवार की दोषपूर्ण स्थितियों को दर्शातो हैं, जिन परिवारों में नशे की आदत होती है, माता–पिता बच्चों को अत्याधिक अनुशासन में रखते है,

मारते–पीटते हैं, आपस में लड़ाई झगड़ा करते हैं, उन परिवारों में बच्चों में भागने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। ''एडलिर'' भगोड़ेपन की इस प्रतिक्रिया को भविष्य में बच्चे के 'व्यक्तित्व की असफलता' एवं विषम परिस्थितियों के प्रति अचेतन रूप से प्रतिकार के रूप में देखते हैं। यह प्रवृत्ति प्रायः विद्यालयी आयु में बच्चों के मध्य अधिक पायी जाती है।

(vii) ऑटिज्म :–यह छोटे बच्चों प्रकट होने वाली एक मनोविकृति है। ''ऑटिज्म'' शब्द का प्रयोग पहली बार 1943 में '' डा0 कैनर '' ने किया था। उन्होंने इसके प्रति विश्व के मनोवैज्ञानिकों का ध्यान स्वतंत्र रूप से पहली बार आकृष्ट किया। उससे पहले ऐसे बच्चों को ''मंद–बुद्धि'' बच्चों के साथ ही शामिल कर दिया जाता था।''ऑटिज्म'' अंग्रेजी का एक शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है, ''आत्मकेन्द्रितता''। यह मस्तिष्क के विकास के क्रम में आयी विकृति से उत्पन्न एक मनःस्थिति है। इससे ग्रस्त बच्चों का संपर्क बाहरी दुनिया से लगभग कट जाता है तथा वह अपनी ही दुनिया में खोया रहता है। यह इस विकृति का प्राथमिक लक्षण है।''आटिज्म'' के रोगियों की एक खास बात यह है कि उनमें हर कोई बिल्कुल अनूठा और अलग प्रकार का दीखता है। कई बार एक ही रोगी में अलग–अलग समय पर लक्षण बदल जाते हैं। इन्ही कारणों से 'आटिज्म' की पहचान में कठिनाई होती है।

लक्षण :– ऑटिज्म के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:–

(i) भाषा एवं संवाद संबंधी कठिनाईयाँ ;

(ii) सामाजिक पारस्परिकता का अभाव, तथा

(iii) व्यवहार एवं अभिरूचियों में सर्कीणता एवं बारंबारिता।

उपरोक्त तीन श्रेणी के मूल–लक्षणों के प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि ''ऑटिज्म'' के रोगियों में उन आधार भूत मानसिक क्षमताओं में त्रुटि पायी जाती है जिसके आधार पर किसी भी व्यक्ति का अपने समाज में एकीकरण होता है। ऑटिज्म के करीब पच्चीस प्रतिशत रोगियों में ''मिर्गी'' के समान बेहोशी के दौरे पड़ते है; करीब 70% रोगियों में ''मंद–बुद्धि'' होने के लक्षण विद्यमान होते हैं। कुछ रोगियोंमें 'अत्यधिक अक्रामकता' दुर्दम्य चंचलता तथा ध्यान की एकाग्रता में कभी पायी हैं, तथा कभी–कभी घबराहट तथा बेचैनी के लक्षण भी पाये जाते हैं। भाषा, संवाद और पारस्परिकता में विरूपता के कारण ऐसे बच्चे समूह से अलग रहते हैं। अक्सर वे एकाकी भाव से निर्जीव खिलौनों में उलझे हुए आसक्त दिखाई पड़ते हैं। कई खिलौनों से उन्हें विशेष लगाव भी हो जाता है, जिसमें कोई परिवर्तन वे बिल्कुल बदोश्त नहीं करते है। ''ऑटिज्म'' का कारण अभी अज्ञात है। वर्तमान में इसके होने की संभावना प्रति दस हजार की जनसंख्या में 10–30 व्यक्तियों में होती है। इसके उपचार हेतु शैक्षणिक या मनोवैज्ञानिक तरीके अपनाये जाते हैं तथा दवायें भी प्रयोग में

लायी जाती हैं। अंत में यथेष्ट सुधार होने पर रोगी के व्यवसायिक पुर्नवास की व्यवस्था की जाती है।

(viii) मानसिक दुर्बलता :– मानसिक दुर्बलता अथवा मन्दता एक ऐसा विकार है जिसमें विकास के किसी स्तर पर उत्पन्न अवरोध स्थायी रूप ग्रहण कर लेता है। इस अवरोध एवं विलम्बना के कारण शरीर , बुद्धि एवं मन में मंदता, उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति में सोचने, विचारने, ध्यान देने, निर्णय करने, याद करने तथा याद रखने, समझने तथा समायोजन की दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है ''दी अमेरिकन एशोसिएशन ऑन मेन्टल रिटार्डेशन, 1922'' के अनुसार , ''मानसिक दुर्बलता का संबंध वर्तमान क्रियावाही में पर्याप्त परिसीमाओं से होता है। इसमें सार्थक रूप से अधोऔसत बौद्धिक क्रिया होती है तथा निम्नांकित उपयुक्त समायोजी कौशल क्षेत्रों में से दो या दो से अधिक में संबंधित परिसीमाएँ साथ–साथ होतीं है।– संचार,आत्म देखभाल, घरेलू जिंदगी, सामाजिक कौशल, सामुदायिक अनुप्रयोग, आत्म–दिशा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, कार्यात्मक शिक्षा, अवकाश एवं कार्य। मानसिक दुर्बलता 18 वर्ष की आयु के पहले ही अभिलक्षित होती है।''

DSM -IV ने भी इसी से मिलती जुलती परिभाषा दी है।

लक्षण :– मानसिक दुर्बलता के लक्षण निम्नलिखित हैं:–

(i) मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त व्यक्तियों में बुद्धिलब्धि का स्तर 70के नीचे होता है।

(ii) शिक्षात्मक अयोग्यता पायी जाती है।

(iii) शारीरिक न्यूनता पायी जाती है तथा समायोजन की योग्यता का अभाव होता है।

(iv) सामाजिक अयोग्यता एवं अविकसित संवेग पाये जाते हैं।

(v) गत्यात्मक चालकों में समन्वय का सर्वथा अभाव होता है, तथा

(vi) अवधान एवं स्मरण शक्ति की अयोग्यता पायी जाती है।

मानसिक दुर्बलता के प्रकार:– नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने तीन कसौटियों पर ''मानसिक–दुर्बलता'' को वर्गीकृत किया है। ये वर्गीकरण निम्नलिखित हैं:–

1. **बुद्धि की कसौटी के आधार पर :–**

(i) साधारण मानसिक दुर्बलता – इस श्रेणी के व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 52–69 के मध्य होती है।

(ii) मध्यमवर्गीय मानसिक दुर्बलता – इस श्रेणी के व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 35–52 के बीच होती है।

(iii) गंभीर मानसिक दुर्बलता – इस श्रेणी के व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 20–35 के मध्य होती है।

(iv) अतिगंभीर मानसिक दुर्बलता – 20 से नीचे की बुद्धिलब्धि वाले व्यक्तियों के इसके अंतर्गत रखा जाता है।

2. समायोजन योग्य व्यवहार की कसौटी के आधार पर :–

(i) अप्रशिक्षण योग्य

(ii) प्रशिक्षण योग्य

(iii) शिक्षण ग्रहण करने योग्य;

3. नैदानिक वर्गीकरण के आधार पर :–

(i) मंगोलिज्म (20–50 बुद्धिलब्धि)

(ii) बौनापन (25 बुद्धिलब्धि के आसपास के व्यक्ति);

(iii) लधुशीर्षता एवं बृहदशीर्षता (बुद्धिलब्धि 25 से भी कम होती है);

(iv) जलशीर्षता

(v) फेनिलकेटोन्यूरिया (PKU)

(vi) टर्नर संलक्षण तथा

(vii) विलियम्स संलक्षण इत्यादि।

कारणः–''क्रोमोजोम्स का विसंतुलन, मस्तिष्क का क्षतिग्रस्त होना, संक्रामक रोग या सिफलिस, शरीर द्रव्य–रसायन में अंसतुलन, थॉयरायड की निष्क्रियता एवं विकासात्मक विसंगतियाँ'' मानसिक मंदता हेतु जिम्मेदार है।

12.4 रोकथाम एवं चिकित्साः–

(i) उपचारात्मक :–मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण द्वारा पुर्नव्यवस्थापन का प्रयास किया जाता है।

(ii) निरोधात्मक :– इसके तहत पीड़ित गर्भवती महिला का गर्भपात एवं बंध्याकरण करा दिया जाता है। अभी तक कोई कारगर इलाज विकसित नहीं हो जाता है।

12.5 सामुदायिक मनोचिकित्सा

अवधारणाः–सामुदायिक मनोचिकित्सा की अवधारणा ''सामुदायिक मानसिक आंदोलन'' पर आधारित है। इस आंदोलन का उद्देश्य जनसंख्या के सभी हिस्सों में यथासंभव जल्द से जल्द सामाजिक हालातों को मद्देनजर रखते हुए मानसिक रोगों के रोकथाम एवं उपचार करना होता है, ताकि मानसिक स्वास्थ्य का आम स्तर उन्नत बन

सके। सामुदायिक मनोचिकित्सा की अवधारणा में रोग का उपचार एवं निदान का केन्द्र केन्रुव्यक्ति विशेष से हटकर उसकी सामाजिक परिस्थिति हो जाती है।

इस अवधारणा के अन्तर्गत दो प्रकार के प्रारूप बनाये गये हैः–

(i) **नैदानिक ध्रुव मॉडल** :– इस प्रारूप में मानसिक रोगों की उत्पत्ति में सामाजिक कारणों को महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें इस बात पर बल डाला जाता है कि जो व्यक्ति मानसिक रूप से क्षुब्ध हैं। वह अन्य लोगों की सहानुभूति, स्नेह व मदद पाने के योग्य भी है। यहाँ रोगी की देख–रेख समुदाय के मूल्यों के अनुरूप होता है। तथा नैदानिक सेवाओं को समाज के सभी लोगों तक विशेषकर गरीब एवं अलाभान्वित लोगों तक जल्द से जल्द पहुँचाने पर बल डाला जाता है। यहाँ चिकित्सा समुदाय की विशेष आवश्यकताओं एवं जीवन शैली के अनुरूप होती है। इस तरह के समुदायोन्मुख चिकित्सा में चिकित्सक रोगी के दिन प्रतिदिन की जिदगी एवं सामाजिक समस्याओं को अधिक महत्व देता है। दूसरे शब्दों में, चिकित्सक रोगी की वर्तमान समस्याओं एवं उसके तात्कालिक सामाजिक व्यवहार पर न कि उसकी जिंदगी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों, व्यक्तित्व संगठन, मूल्यों तथा मनोवृत्तियों पर अधिक बल डालता है।

(ii) **जन स्वास्थ्य ध्रुव मॉडल** :– इस प्रारूप में किसी व्यक्ति की समस्या से ध्यान हटाकर कुछ विशेष सामाजिक अवस्थाओं की ओर ध्यान दिया जाता है जिससे सम्पूर्ण समुदाय प्रभावित होता है। इसमें पूरे समुदाय या समाज के उन कारकों को लक्ष्य किया जाता है जिनसे व्यक्ति में तनाव एवं चिंता बढ़ती है और जो कारक उसके मानसिक स्वास्थ्य को कमजोर करते है। इसमें जो मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेप होता है वह '' सामाजिक–तंत्र क्रेन्द्रित हस्तक्षेप '' होता है। इस सामाजिक तंत्र के तनावपूर्ण गुणों को कम करने के लिए समाज के लोगों हेतु कल्याणकारी कार्य करने पर बल डाला जाता हैं तथा मानसिक रूग्णता से ग्रस्त व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस प्रारूप के तहत सामुदायिक मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप प्रायः उन संस्थाओं में होता है जिनका संबंध समुदायों के सदस्यों से सीधा होता है। तथा जिनमें आसानी से परिवर्तन लाया जा सकता है।

सामुदायिक मनोचिकित्सा की विशेषताएँ

(1) सामुदायिक मनोचिकित्सा 1963 से शुरू ''सामुदायिक मनोचिकित्सा आंदोलन'' का परिणाम है, जिसके अन्तर्गत जनता के लिए मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता उसके गाँव, समुदाय, जिले एवं प्रखंड स्तर पर सुनिश्चित करने की बात की गयी है।

(2) इस प्रकार की चिकित्सा में प्रशिक्षित चिकित्सकों की उपलब्धता को बढ़ाने के साथ–साथ समुदाय के स्त्रोतों का उपयोग प्रभावित व्यक्तियों के कल्याण हेतु करने की बात कही जा रही है।

(3) इसके अन्तर्गत इस बात के प्रयास किये जा रहे हैं कि व्यक्ति के अपने परिवेश में ही मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को इस प्रकार संचालित किया जाये कि प्रभावित व्यक्ति कम खर्च में बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त कर सकें।

(4) सामुदायिक मनोचिकित्सा में व्यक्ति के सामाजिक एवं परिवेशगत कारणों को ध्यान में रखते हुए पहले उन्हे उन्नत बनाने का प्रयास किया जाता है ताकि व्यक्ति जल्द स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सके।

(5) सामुदायिक मनोचिकित्सा का संचालन उस समुदाय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है।

(6) सामुदायिक मनोचिकित्सा के द्वारा अधिक से अधिक जनसहभागिता को बढ़ावा दिया जाता है ताकि मानसिक रोगों को प्रारंभिक अवस्था में ही रोका जा सके।

(7) सामुदायिक मनोचिकित्सा के तहत मुख्य रूप से तीन तरह के कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं–उपचारात्मक, निरोधात्मक तथा पुर्नव्यवस्थापन संबंधी कार्यक्रमों का संचालन।

12.6 सार संक्षेप

बाल्यावस्था की मनोविकृतियों के अन्तर्गत मुख्य रूप से ''अधिगम विकृतियों (पठन विकृति, गणीतिया विकृति, लेखन अभिव्यक्ति विकृति आदि)'', तथा ''संचार विकृतियों (ग्रहणशील अभिव्यंजक भाषा विकृति, ध्वनिक भाषा विकृति, हकलाना आदि)'' को शामिल करते हैं। इसके अलावा पेशील कौशल विकृतियों यथा मानसिक दुर्बलता, ऑटिज्म एवं आचरण–संबंधी विकृतियों को भी बचपनावस्था की विकृतियों के ही अन्तर्गत रखते हैं।

- DSM-IV ने इन विकृतियों को मुख्य भागों में वर्गीकृत किया है, जैसे– ''मानसिक दुर्बलता, विकास क्रम की विशिष्ट विकृतियाँ, अवधान विमन्सकता एवं अतिसक्रियता विकृति, आचरण संबंधी विकृतियाँ, टिक विकृतियाँ, भाषा संबंधी विकृतियाँ, आदतजन्य विकृतियाँ तथा अन्य विकृतियाँ।''
- यहाँ मुख्य रूप से जिन विकृतियों की चर्चा की गयी, वे है; भोजन के प्रति अस्वीकृति, एनोरेक्सिया नरभोषा, अंगूठा चूसन, नाखून कुतरना, हकलाहअ, भगोड़ापन, ऑटिज्म तथा मानसिक दुर्बलता।
- सामुदायिक मनोचिकित्सा– सत्तर के दशक में चलाये गये ''सामुदायिक मानसिक आंदोलन'' पर आधृत इस चिकित्सा प्रविधि को एक वृहत् कार्यक्रम का रूप देते हुए

यह प्रयास किया जा रहा है कि व्यक्ति को उसके अपने समुदाय एवं परिवेश में, जहाँ वह रहता है, मैं समस्त मानसिक स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ उपलब्ध करायी जायें। जिससे लोक स्वास्थ्य को बढ़ावा मिले तथा व्यक्ति कम खर्च में जल्दी ठीक हो सके। इसके अन्तर्गत दो तरह के प्रारूपों की चर्चा की गयी है– प्रथम– नैदानिक ध्रुव मॉडल तथा द्वितीयतः– जनस्वास्थ्य ध्रुव मॉडल।

12.7 अभ्यास

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. बचपनावस्था की मनोविकृति से आप क्या समझते है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।
2. सामुदायिक मनोचिकित्सा की अवधारणा स्पष्ट करें, तथा इसकी वर्तमान उपयोगिता का वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. ''भोजन अस्वीकृति विकृति'' से आप क्या समझते हैं? सोदाहरण स्पष्ट करें।
2. ''ऑटिज्म'' से आप क्या समझते हैं? इसके विभिन्न लक्षणों का वर्णन करें।
3. ''मानसिक दुर्बलता'' क्या है? इसके प्रकारों एवं उपचार के विभिन्न तरीकों को स्पष्ट करें।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें :–
   (i) एनोरेक्सिया नरवोसा
   (ii) भगोड़ापन
   (iii) हकलाहट विकृति।

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(i) Dictionary of Psychology (2006); Oxford University Press, New Work; P-42

(ii) Ebid P-734

(iii) Ebid P- 69

(iv) DSM-IV TR (2005) Jaypee Brothers Medical Publishers (P) LTD, New Delhi; PP-39-46, 67-68;

(v) Dr. Ahuja, Niraj, "A Short book of Psychiatry (2002) Jaypee Brothers Medical Publishers, New Delhi, PP- 169-178; 242-246;

(vi) Abnormal Psychology (A Community Mental Health Perspective); Harry Gotterfield; PP-126, 150-151;

(vii) डॉ0 तिवारी, आर0सी0, मनोचिकित्सकीय समाज कार्य, (2010) PP-111-112;

(viii) www.Psychology. com

(ix) www.wikipedia.com